

BAPA(N)- 301

# कार्मिक प्रशासन

## PERSONNEL ADMINISTRATION



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

फोन नं. 05946 – 261122, 261123

टॉल फ्री नं.18001804025

ई – मेल [info@uou.ac.in](mailto:info@uou.ac.in)

<http://uou.ac.in>

## अध्ययन मंडल

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर अल्का धमेजा, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रोफेसर उमा मैदुरी, लोक प्रशासन विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्रोफेसर बी0 अरूण कुमार, लोक प्रशासन विभाग वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान
डॉ0 घनश्याम जोशी, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री सुमित सिंह, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
श्री शुभांकर शुक्ला, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्री प्रमोद चन्याल, लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
<b>पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन</b> <b>डॉ0 घनश्याम जोशी(असिस्टेंट प्रोफेसर)</b> कार्यक्रम समन्वयक, लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	
इकाई- 1 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप और क्षेत्र इकाई- 2 प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उसकी भूमिका इकाई- 3 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं इकाई-4 कार्मिक प्रशासन के कार्य और महत्व इकाई- 5 आधुनिक नौकरशाही के संदर्भ में लोक सेवा इकाई- 6 नौकरशाही के आधार इकाई- 7 सेवाओं का वर्गीकरण इकाई- 8 भारत में लोक सेवाओं का वर्गीकरण इकाई- 9 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ इकाई- 10 कार्मिक नीति इकाई- 11 भर्ती (सेवाओं में आरक्षण) इकाई- 12 पदोन्नति इकाई- 13 प्रशिक्षण का अर्थ, तहत्व एवं प्रकार इकाई- 14 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रणाली एवं संस्थाएं इकाई-15 निष्पादन मूल्यांकन	<b>कार्मिक प्रशासन (MAPA- 602) से साभार</b>
	लेखक- श्री सुमित सिंह, लोक प्रशासन विभाग, यू0 ओ0 यू0, हल्द्वानी

**प्रकाशन वर्ष- 2025**

**कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**

**प्रकाशन-** निदेशालय अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

**BAPA(N)- 301 कार्मिक प्रशासन  
अनुक्रम**

<b>खण्ड 1 -कार्मिक प्रशासन</b>		
<b>1</b>	कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप और क्षेत्र	1 – 13
<b>2</b>	प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका	14 – 27
<b>3</b>	भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं	28 – 38
<b>4</b>	कार्मिक प्रशासन के कार्य और महत्व	39 – 48
<b>खण्ड 2 -भारत में लोक सेवा</b>		
<b>5</b>	आधुनिक नौकरशाही के सन्दर्भ में लोक सेवा	49 – 61
<b>6</b>	नौकरशाही के आधार	62 – 71
<b>7</b>	सेवाओं का वर्गीकरण	72 – 83
<b>8</b>	भारत में लोक सेवा का विकास	84 – 96
<b>9</b>	सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ	97 – 108
<b>खण्ड 3 -कार्मिक प्रबन्धन: नीति और व्यवहार</b>		
<b>10</b>	कार्मिक नीति	109 – 122
<b>11</b>	भर्ती (सेवाओं में आरक्षण)	123 – 139
<b>12</b>	पदोन्नति	140 – 155
<b>13</b>	प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं प्रकार	156 – 166
<b>14</b>	लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रणाली एवं संस्थाएं	167 – 177
<b>15</b>	निष्पादन मूल्यांकन (Performance appraisal)	178 – 188

## इकाई- 1 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा, स्वरूप एवं क्षेत्र

### इकाई की संरचना

- 1.0 प्रस्तावना
- 1.1 उद्देश्य
- 1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा
  - 1.2.1 कार्मिक प्रशासन: परिभाषा एवं अर्थ
- 1.3 कार्मिक प्रशासन: विकास के चरण
- 1.4 कार्मिक प्रशासन: स्वरूप
- 1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र
- 1.6 निष्कर्ष
- 1.7 सारांश
- 1.8 शब्दावली
- 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

### 1.0 प्रस्तावना

किसी भी देश के उद्देश्यों की प्राप्ति में सबसे महत्वपूर्ण इकाई संगठन ही होता है एक सफल संगठन ही देश की सफलता की सबसे प्रथम आवश्यकता होती है। किसी भी संगठन को सफल बनाने हेतु दो बातें आवश्यक होती हैं। प्रथम, उसमें उपलब्ध मानव शक्ति की गुणवत्ता, द्वितीय नेतृत्व की गुणवत्ता। अर्थात्, शक्ति संगठन को सफल नहीं बना सकती सफलता के लिये मानव शक्ति की आवश्यकता होती है। यद्यपि, संगठन के सफलतापूर्वक संचालन में वित्तीय, तकनीकी एवं अन्य प्रकार के साधनों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता है, परन्तु सबसे श्रेष्ठ स्थान या भूमिका उसमें उपस्थित मानव संसाधन की होती है। कार्मिक प्रशासन मानव साधनों के उचित प्रबंधन से जुड़ा होता है। इस इकाई में हम कार्मिक प्रशासन के इन्हीं पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

### 1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझ पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर उसके अर्थ को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के स्वरूप की विवेचन कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र को विस्तार पूर्वक समझ पाएंगे।

### 1.2 कार्मिक प्रशासन की अवधारणा

आधुनिक युगलोक कल्याणकारी राज्यों का युग है, जहां विकास एवं कल्याण से संबंधित सभी कार्य प्रशासन का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। सरकार का यही उत्तरदायित्व संगठनों के कार्य, उत्तरदायित्व, गतिविधियों आदि में

सीमित वृद्धि करता है इसके परिणाम स्वरूप संगठनों की मांग तो बढ़ती ही है साथ ही साथ उनसे कार्यकुशलता की अपेक्षाएं भी बढ़ती जाती हैं, क्योंकि संगठन की सफलता इस बात पर ही निर्भर करती है कि उस में कार्यरत कर्मचारी विकास की बढ़ती गति एवं मांग के साथ किस प्रकार से सामंजस्य बिठाता है एवं संगठन के हितों के लिए कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को समझने के लिए हम इसके विकास के चरणों इसकी परिभाषा अर्थ एवं प्रकृति के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं।

### 1.2.1 कार्मिक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

आदि काल से लेकर अब तक मानव सभ्यताओं तथा संस्कृति का अत्यधिक विकास हुआ है। विश्व इतिहास के पन्नों में वर्णित तथा अवर्णित शासन व्यवस्थाओं ने भी विकास की इस प्रक्रिया में व्यापक भूमिका निभायी है।

विकास की ये सदियों पुरानी प्रक्रिया संगठनात्मक प्रयासों तथा संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर करती रही है। विकास के लिए आवश्यक संसाधनों में मशीन, प्राकृतिक सामग्री, तकनीक, वित्त तथा श्रम शक्ति की उपलब्धता प्राथमिक शर्त है। समस्त प्रकारके संसाधनों में मानव श्रम शक्ति अर्थात् कर्मचारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शेष संसाधनों का सदुपयोग मानवीय कुशलता तथा प्रतिबद्धता पर ही निर्भर करता है। अतः वर्तमान प्रशासनिक परिदृश्य में सर्वाधिक ध्यान मानव संसाधन विकास (Human Resource Development) पर दिया जा रहा है। प्रशासन तथा प्रबंध से संबद्ध इकाइयों में कार्मिक प्रशासन को अब एच. आर. डी. (H.R.D.) भी कहते हैं, क्योंकि संगठनात्मक लक्ष्यों की संपूर्ति तथा उस संगठन की छवि उसमें कार्यरत कार्मिकों पर ही निर्भर करती है। इसलिए ई. एन. ग्लैडेन कहते हैं- “लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।” है परंतु वास्तविक रूप में वह अकेला कुछ नहीं कर सकता। वास्तविक रूप में उसमें काम करने वाले स्त्री-पुरुष जो विभिन्न उच्च और निम्न पदों पर नियुक्त होते हैं वो बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यदि संगठन में से कार्मिक को निकाल दें तो वह एक अमूर्त वस्तु बन जाता है, अर्थात् वह पारस्परिक संबंधों की एक ऐसी व्यवस्था मात्र रह जाता है जो संगठन के मस्तिष्क में अथवा कागज़ पर ही होती है। संगठन के भीतर विविध पदों पर कार्य करने वाले कार्यकर्ता, अधिकारी अथवा सेवक सामूहिक रूप से कार्मिक अथवा सेवकों के नाम से पुकारे जाते हैं।

किसी भी देश का प्रशासन वास्तविक रूप में सेवीवर्ग अथवा कार्मिक वर्ग द्वारा ही किया जाता है। शासन में नीति-निर्माण का कार्य राजनीतिक नेतृत्व द्वारा किया जाता है, लेकिन उन नीतियों को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व सेवीवर्ग पर है। राज्य की कल्याणकारी स्वरूप के विस्तार के साथ-साथ सेवीवर्ग अथवा कार्मिक प्रशासन का महत्व बढ़ता जा रहा है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सफल सेवीवर्ग प्रशासन जहाँ एक ओर प्रशासन की सफलता के लिए परमावश्यक है, वहीं दूसरी ओर लोक-कल्याण की अभिवृद्धि का भी आधार-स्तंभ है। अतः प्रशासन-यन्त्र को संचालित करने वाले इन लोगों का ध्यान रखें बिना सम्पूर्ण प्रशासकीय ढांचा चरमरा जाएगा और प्रशासकीय प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाएगी। अर्थात् प्रशासन के मानवीय पहलू की अपेक्षा अधिक घातक होगी। व्यवहार में, वहीं प्रशासन सफल हो सकता है जो मानव-स्वभाव और मानवीय आकांक्षाओं के अनुरूप हो। सेवीवर्ग प्रशासन अथवा कार्मिक प्रबंध वह केन्द्र बिन्दु है जिसके इर्द-गिर्द प्रशासन की विविध समस्याएं छापी रहती हैं। सुयोग्य और कुशल कर्मचारी प्रशासकीय ढांचे और प्रशासकीय प्रक्रिया की निर्बलताओं को दूर करके प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति को संभव बनाते हैं, जबकि अयोग्य और अकुशल कर्मचारी श्रेष्ठ प्रशासनिक ढांचे और प्रक्रिया को निर्बल और अस्त-व्यस्त बना देते हैं। इस संबंध में हरमन फ़ाइनर का कहना है, “लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।” इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सुगठित तथा सुविचारित सेवीवर्ग प्रशासन ही किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता का मुख्य आधार है। नीग्रो का मानना है कि, कार्मिकों की कुशलता तथा योग्यता ही संगठन की सफलता को निर्धारित करती है। योग्य तथा

प्रतिबद्ध कर्मचारी, कमजोर प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर कर उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रहते हैं जबकि अयोग्य तथा निकृष्ट कर्मचारी सर्वोत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को भी असफल सिद्ध कर सकते हैं।”

उपरोक्त वर्णित अवधारणा की विवेचना के उपरान्त अब कार्मिक प्रशासन के अर्थ को विस्तार से समझते हैं। कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है, इसके लिए पूर्व विचारित नियमों, परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। सरल शब्दों में कार्मिक प्रशासन कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन, भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवा निवृत्ति आदि आयामों को समाहित किया जाता है।

कार्मिक प्रशासन को सेवीवर्गीय या स्टाफ़ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। औद्योगिक संस्थानों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित प्रकरण “कर्मचारी प्रबन्ध”, मानव संसाधन प्रबन्ध या “श्रम सम्बन्ध” या “औद्योगिक सम्बन्ध” के नाम से भी समझे जाते हैं। कार्मिक प्रशासन के प्रति गम्भीर चिन्तन उत्पन्न कराने में एफ. डब्लू. टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान है।

कार्मिक प्रशासन के अर्थ को और स्पष्टता से समझने के लिए आइए इसकी कुछ परिभाषाओं को देखा जाए-

नैशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ़ पर्सोनेल मैनेजमेंट (National Institute of Personnel Management) ने कार्मिक प्रशासन को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है, “कार्मिक प्रबन्ध प्रबन्धन कार्य का वह भाग है जिसका सम्बन्ध प्रमुखतया संगठन के भीतर मानवीय रिश्तों से होता है। इसका उद्देश्य इन रिश्तों को ऐसे आधार पर बनाए रखना है जो व्यक्ति की भलाई को ध्यान में रखते हुए उन सभी को जो उस संगठन में कार्य करते हैं, इस योग्य बनाता है कि वे संगठन के प्रभावकारी रूप से चलने में अपना योगदान दें।”

पीयर्स और मायर्स का कथन है कि “कार्मिक प्रबन्ध, कर्मचारियों की समर्थता को विकसित करने का एक तरीका है ताकि वे अपने कार्य से अधिकतम संतोष प्राप्ति करें और संगठन के लिए अपने उत्तम प्रयास करें।”

मार्शल ई. डिमॉक के अनुसार, “कार्मिक प्रशासन ऐसी प्रशासनिक प्रक्रियाओं का नाम है जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार लक्ष्यों का नियम तथा परिवर्तन किया जाता है।”

एडविन फ़िलपो के विचारानुसार, “सेवीवर्ग प्रबन्ध, कार्य करने वालों लोगों अर्थात् कर्मचारियों की कार्य सम्पन्नता को नियोजित, संगठित, निर्देशित तथा नियंत्रित करता है।”

इस प्रकार विभिन्न परिभाषाओं के द्वारा कार्मिक प्रशासन का अर्थ विस्तार से जान लेने के बाद ये भी जान लें कि सरकारी कार्यालयों एवं निजी संगठनों में कार्मिक प्रशासन से सम्बंधित व्यवस्था भी अलग अलग प्रकार से देखी जा सकती है या उपस्थित होती है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में चूँकि कार्यों की प्रकृति, उत्पादन, वितरण, विनियोजन, कार्मिक प्रकरणों के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, अतः वहाँ कार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए एक पृथक से इकाई, शाखा या विभाग होता है, जो एक वरिष्ठ प्रबन्धक के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके विपरीत सरकारी विभागों या कार्यालयों में प्रायः अलग से कार्मिक प्रशासन की कोई इकाई नहीं होती है, बल्कि सम्बन्धित कार्यालय या विभाग में कार्मिकों के लिए दी जाने वाली प्रक्रियाएं ही सामूहिक रूप से कार्मिक प्रशासन कहलाती हैं। संबंधित कार्यालय का अधिकारी ही कार्मिक अधिकारी होता है। सरकारी कार्यालयों में सामान्य रूप से दो शाखाएं अवश्य होती हैं- संस्थापना शाखा (Establishment branch) और लेखा शाखा (Accounts branch)। इन दो शाखाओं के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक शाखाएं भी संबंधित कार्यालय की कार्य प्रकृति के अनुसार गठित की जाती हैं।

संस्थापना शाखा को कार्मिक प्रशासन का लघु रूप माना जाता है। कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतनवृद्धि, पदोन्नति इत्यादि का कार्य इसी शाखा के द्वारा देखा जाता है। सरकारी पैसे को राजकोष से निकालने, व्यय करने, बिल तैयार करने तथा वेतन इत्यादि का समस्त कार्य लेखा शाखा द्वारा सम्पादित होता है। कार्मिक

प्रकरणों के सभी वित्तीय मामले इसी शाखा के द्वारा निपटाए जाते हैं। अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि, कार्मिकों से सम्बंधित विभिन्न कार्य एवं उनका कार्यान्वयन कार्मिक प्रशासन कहला सकता है, फिर चाहे वह किसी भी शाखा से संपादित किया जाए।

उपरोक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के माध्यम से कार्मिक प्रशासन की कुछ विशेषताओं को इंगित किया जा सकता है-

- कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात् मानवीय तत्वों से सम्बंधित होता है।
- संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक होता है।
- कर्मचारियों को संगठनमें लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बंधित कार्य करता है।
- कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है।
- कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।
- संगठनात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।
- समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से सम्बंधित है।

### 1.3 कार्मिक प्रशासन के विकास के चरण

राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास के चरणों को देखने से पहले आइए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्मिक प्रशासन के विकास को समझते हैं। ब्रिटेन में कुछ उद्यमियों ने कल्याणकारी विचारधारा को अपनाया, जिसके कारण वहां पर स्वतः ही आधुनिक कार्मिक प्रशासन की स्थापना हो गई। जबकि दूसरी तरफ अमेरिका की बात करें तो कार्मिक प्रबंध की धारणा का विकास वास्तव में यही पर हुआ माना जाता है। इस तथ्य को समझने के लिए निकोलस हेनरी द्वारा अमेरिका में सरकारी तंत्र के कार्मिक प्रशासन अर्थात् लोक कार्मिक प्रशासन द्वारा विश्लेषित 7 चरणों को देखते हैं- प्रथम चरण(1789-1829), द्वितीय चरण(1829-1883), तृतीय चरण(1883-1906), चतुर्थ चरण(1906-1937), पंचम चरण (1937-1955), षष्ठम चरण(1955-1970 ), सप्तम चरण (1970-till date)

प्रथम काल को एल0 डी0 व्हाइट ने भद्रजनों द्वारा शासन माना, क्योंकि इस समय अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज वॉशिंगटन ने संघीय नौकरशाही में योग्य तथा प्रतिभावान लोगों को नियुक्त करने को प्राथमिकता दी। 1832 में अमरीकी सीनेटर विलियम एल. आर. मर्की ने 'लूट प्रणाली' का नाम दिया था, क्योंकि उस समय एंड्रयू जैक्सन के काल में नौकरशाही लूट प्रणाली से भरी थी। चतुर्थ काल एफ0 डब्लू0 टेलर के वैज्ञानिक प्रबंधन का दौर था। वैज्ञानिक प्रबंधन का यह सिद्धांत ही वास्तव में कार्मिक प्रशासन की आधारशिला था।

टेलर ने कार्मिकों के वैज्ञानिक आधार पर चयन या भर्ती, व्यवस्थित प्रशिक्षण व्यवस्था तथा कार्मिकों के व्यक्तिगत विकास पर अत्यधिक बल दिया था और उनके ही सहयोगी एच0 एल0 गेंट ने कहा था कि इस वैज्ञानिक प्रबंध आंदोलन को सफल बनाने में कार्मिकों की भागीदारी होना अति आवश्यक है। गेंट ने कहा कि कार्मिकों को केवल यह बताना ही काफी नहीं होगा कि उन्हें कैसे काम करना चाहिए बल्कि उन्हें इस बात के लिए भी तैयार करना होगा कि वे अपना काम अपनी पूरी काबिलियत के साथ निभा सके। इसी के साथ मेरी पार्कर फ्रौलेट ने भी प्रबंध

के प्रशिक्षण तथा विकास आयामों पर जोर दिया। अर्थात् इस दौर में वैज्ञानिक प्रबंधन का समर्थन करने वाले सभी लोगों ने कार्मिकों में कार्यकुशलता बढ़ाने तथा उनमें से अपने कार्य के प्रति उदासीनता को रोकने का प्रयास किया। इसके बाद कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में करीब करीब इसी काल में भारी हलचल एल्टन मेयो के हाथों प्रयोगों के द्वारा मची पा। इन प्रयोगों के द्वारा मानव संबंधों के अध्ययन का आंदोलन प्रारंभ हुआ। आगे जाकर इसी के कारण कार्मिक प्रबंध के सिद्धांत तथा व्यवहार विकसित होने लगे।

पंचम चरण में ब्राउन्लो समिति की प्रशासनिक प्रबंधन पर एक रिपोर्ट आई जिसने लोक प्रशासन को प्रबंध की ओर झुकाया। षष्ठम् चरण में लोक सेवाओं में पेशेवर अंदाज को बढ़ावा मिला। सप्तम चरण में राजनीति और प्रशासन में आपस में समीपता बहुत बढ़ी।

इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि भारत में सरकार के अथक प्रयासों के कारण ही कार्मिक प्रशासन की उन्नति हुई है। भारत में कार्मिक प्रबंधन के क्षेत्र में सरकार की रुचि ऐसे ही नहीं बनी थी। इसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे, जैसे उत्पादन के स्तर में कमी श्रमिकों का असंतोष एवं भर्ती के अव्यवस्थित तरीके आदि। वास्तव में तो कार में प्रबंध की धारणा का विकास तो संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। हमारे देश भारत में कार्मिक प्रबंध के विकास का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। 1920 के दशक में पैदा हुए औद्योगिक विवादों ने सरकार व उद्योगपतियों का ध्यान श्रमिक समस्याओं का उचित कार्मिक प्रबंधन व्यवस्था के द्वारा समझाने की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। यही कारण रहा कि 1920 में ही कई बड़े औद्योगिक संस्थानों व कल कारखानों में श्रमिक कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इन अधिकारियों ने श्रमिकों की शिकायतों को निपटाने के साथ-साथ औद्योगिक भाईचारे को भी बढ़ाने का काम किया। इसके पश्चात वर्ष 1937 में बंगाल सरकार के सुझाव पर भारतीय जूट मिल परिषद ने पहले तो एक श्रमिक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की एवं इसके द्वारा श्रमिकों की शिकायतों का सफल रूप से सुलझाये जाना देख, बाद में 1939 में पांच अन्य अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई। इसके बाद भारतीय चाय परिषद तथा भारतीय इंजीनियरिंग परिषद ने भी इस व्यवस्था का अनुसरण अपने अपने संस्थानों में किया। वर्ष 1941 में भारत सरकार ने एक त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन बुलाया जिसमें सरकार, श्रमिकों तथा कर्मचारियों के प्रवक्ता शामिल हुए। इस सम्मेलन का उद्देश्य एक समान विधान के काम को बढ़ावा देना, औद्योगिक विवादों को सुलझाने की एक निश्चित कार्य विधि सुझाना तथा औद्योगिक मामलों के संदर्भ में सलाह मशवरे को बढ़ावा देना था। वर्ष 1948 में जो कारखानों का अधिनियम बनाया गया, उसके तहत हर उद्योग में एक कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गई और साथ ही इनके नियुक्ति की प्रणाली, कर्तव्य और योग्यताओं के बारे में भी बताया गया इसी प्रकार से बाद के वर्षों में भी और इसी प्रकार के एक और अधिकारी की नियुक्ति की गई और उसे 'कार्मिक अधिकारी' का नाम दिया गया। यह अधिकारी श्रमिक कल्याण, औद्योगिक संबंधों तथा कार्मिक प्रशासन की समस्याओं को निपटाता है। यही कारण है कि अब भारत की लगभग हर कंपनी में ना केवल विशेषीकृत कार्मिक विभाग पाए जाते हैं, बल्कि इनमें पूर्णकालिक कार्मिक अधिकारी भी नियुक्त किए जाते हैं।

#### 1.4 कार्मिक प्रशासन का स्वरूप

अब तक आप यह तो समझ ही गए होंगे कि, संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात् निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। इसको और स्पष्ट तौर पर ऐसे भी समझा जा सकता है कि, हर संगठन के कुछ निश्चित उद्देश्य तथा लक्षण होते हैं एवं उन लक्षण एवं उद्देश्यों की प्राप्ति का एकमात्र साधन कार्मिक प्रशासन ही होता है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है अर्थात् यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन

भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है।

आपको ज्ञात होगा कि किसी भी संगठन में कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली गतिविधियों को दो श्रेणियों में बांटा जाता है- लाइन एवं स्टाफ।

किसी भी संगठन की ऐसी गतिविधियां जो उस संगठन के आधारभूत या बुनियादी लक्ष्यों से संबंधित होती हैं वह लाइन गतिविधियों की श्रेणी में आती हैं एवं स्टाफ गतिविधियां वह होती हैं जो कि कार्य क्षेत्र से संबंधित भूमिकाओं के निष्पादन में सहायक होती हैं। अर्थात् किसी भी संगठन के सफल संचालन में, लाइन तथा स्टाफ कार्मिकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है या यूँ कहें कि इनके बिना संगठन कार्य नहीं कर सकता तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कार्मिकों द्वारा संपादित की जाने वाली यह गतिविधियां ही प्रशासनिक गतिविधियां हैं।

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। जैसे- देश की सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक परिस्थितियों परिवर्तित होती है तदनु रूप कार्मिक प्रशासन के कार्य, प्राथमिकताएं एवं गतिविधियां भी परिवर्तित होती हैं एवं प्रशासन की प्रकृति के अनुरूप ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भी परिवर्तित होती है। भारत के संदर्भ में यदि भारतीय प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर वर्तमान काल तक यदि प्रकाश डाला जाए तो हम पाते हैं कि भारतीय प्रशासन का स्वरूप ब्रिटिश काल से लेकर वर्तमान कल्याणकारी राज्य एवं लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों की उत्पत्ति एवं प्रसार के पश्चात् अत्यधिक परिवर्तित हो चुकी हैं। इसी कारण कारण प्रशासन में लोक कल्याणकारी, संकल्पना, आकार में विस्तार, जन-सहभागिता, अपेक्षा, लोकतांत्रिकता में विश्वास जैसी विशेषताओं का समागम किया। कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं के आधार पर ही कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को अग्रलिखित बिंदुओं में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. **कार्मिकों की संख्या में बढ़ोतरी-** आधुनिक युग में शासन के समस्त कार्यकलाप प्रशासन के माध्यम से ही संचालित होते हैं। लोक कल्याणकारी प्रकृति को अपनाने के कारण ये कार्य दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। इन सब कार्यों के संपादन का उत्तरदायित्व प्रशासन अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिक प्रशासन का ही है, क्योंकि प्रशासन तो अपने कार्यों का संपादन कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही करता है। इन बढ़ते कार्यों का निष्पादन करने के लिए बड़ी संख्या में कार्मिकों की आवश्यकता महसूस की जाती है और यह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। कहा जा सकता है कि बहुत बड़ी संख्या में कार्मिकों का होना भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति के तौर पर ही देखा जाता है।
2. **गंभीर प्रकृति के दायित्व-** कार्मिक वर्ग प्रशासन के संगठन में मानव शक्ति के साथ व्यवहार करता है, जिसका अर्थ है इसका संबंध उन प्रक्रियाओं से है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, पद ग्रहण तथा पदोन्नति निश्चित की जाती है। परंतु अब कार्मिक प्रशासन के दायित्व गंभीर प्रकृति के हो गए हैं। अब कार्मिक प्रशासन को जनता की संतुष्टि, कार्मिकों की संतुष्टि का स्तर बनाए रखना, संगठन के लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त करना तथा कार्मिकों का विकास करना भी होता है। अतः अब गंभीर प्रकृति के दायित्वों का निर्वहन भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही मानी जाती है।
3. **मानवीय संबंधों तथा व्यवहारों के अनुरूप-** जैसा कि आपने जाना कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से संबंधित है। कार्मिक स्वयं मनुष्य है, अतः कार्मिक प्रशासन का स्वरूप पूरी तरह से मानवीय संबंधों, व्यवहार तथा इसकी जटिलताओं से जुड़ी है। अलग-अलग स्थानों पर कार्मिकों का व्यवहार अलग-अलग मिल सकता है। परंतु अधिकांश कार्मिकों का चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, देश, भाषा से संबंधित हो मूल स्वभाव तो समान ही होता है। बदलती हुई दुनिया में मानवीय अपेक्षाओं तथा चेतना में भी परिवर्तन आता रहता है अतः कार्मिक प्रशासन को भी उसके अनुरूप स्वयं को ढालना होता होता है।

4. **उच्च योग्यताधारी कार्मिक-** आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान के युग में ज्ञान अर्जित करना बहुत आसान हो गया है। ऐसे में कार्मिक प्रशासन में उच्च योग्यता धारी कार्मिक पाए जाते हैं यह भी कार्मिक प्रशासन की प्रकृति ही बन गई है। अब योग्य, मेधावी, तथा गुणवान कार्मिक पहुंच सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। यह कार्मिक निरंतर अपनी योग्यताओं व गुणों में वृद्धि के लिए भी प्रयास करते रहते हैं।
5. **परिवर्तित प्रवृत्तियां-** बदलते समय के साथ-साथ कार्य करने की दशाएं, परिस्थितियां, परम्पराएँ, संस्कृतियां, सब परिवर्तित हो रही हैं। ऐसे में कार्मिक प्रशासन की प्रवृत्तियां भी ना केवल परिवर्तित होने लगी हैं, बल्कि मनोवृत्तियाँ तथा कार्यशैली भी परिवर्तित होने लगी है।
6. **विशेषीकरण-** प्राकृतिक विज्ञान की भांति ही सामाजिक विज्ञान में भी अब सामान्य से विशेष की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। कारणवश लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र भी विशेषीकृत होने लगा है। अर्थात् प्रशासनिक इकाइयाँ एवं संस्थाएं कार्य विशेष की ओर केंद्रित होती हैं। अब एक ही संगठन या एक ही व्यक्ति से बहुत से कार्यों की अपेक्षा नहीं की जाती, बल्कि ऐसा माना जाता है कि, एक संगठन या व्यक्ति एक विशेष प्रकार का कार्य ही करें। इसके लिए आवश्यक शर्त यह होती है कि उस कार्य में वह निपुण हो तथा उसे सक्षम तरीके से क्रियान्वित करें। यही सब कारण है कि अब कार्मिकों की योग्यताएं, पद तथा अपेक्षाएं सब विशेषीकृत होते जा रहे हैं।
7. **भेदभाव रहित-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति भेदभाव रहित मानी जाती है। कार्मिक प्रशासन में किसी भी धर्म, जाति, लिंग, रंग वंश के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। अर्थात् उच्च अधिकारी एवं निम्न अधिकारी के संबंध निर्दिष्ट हैं और वे धर्म, जाति आदि तत्वों से अप्रभावित रहते हैं।
8. **सहभागिता का बढ़ता महत्व-** लोक सेवाओं के कार्मिक प्रशासन की परंपरागत मान्यताओं तथा विचारधाराओं में परिवर्तन आया है। अब नए परिवेश में आम सहमति से ही सारे निर्णय लिए जाते हैं। एक दूसरे के साथ समन्वय तथा सहभागिता को महत्व दिया जाने लगा है। यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का स्वरूप भी लोकतांत्रिक हो गया है। प्रशासन का यह प्रयास रहता है कि ना केवल लोक सेवक, बल्कि जन सहभागिता को भी अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयास करें।
9. **अभिप्रेरणाओं की पोषक-** वर्तमान में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति सकारात्मक अभिप्रेरणाओं की पोषक है। संगठन की मानव संबंध एवं व्यवहारवादी विचारधाराओं के आधार पर अब यह माना जाने लगा है कि सेवक से दंड एवं प्रताड़ना के द्वारा नहीं बल्कि, पुरस्कार, प्रशंसा, अनौपचारिक संबंधों एवं सहयोगी पर्यवेक्षण आदि को बढ़ावा देकर ही श्रेष्ठ कार्य निष्पादन करवाया जा सकता है। इसके द्वारा संगठन की कार्यकुशलता एवं कार्मिकों की संतुष्टि को भी उच्च स्तर प्रदान किया जा सकता है।
10. **क्षेत्रीयता की ओर उन्मुख-** कार्मिक प्रशासन की प्रकृति क्षेत्रीयता की ओर उन्मुखता भी है। लोक प्रशासन के बढ़ते हुए क्षेत्र तथा कार्य क्षेत्र के कारण अब कार्मिक प्रशासन का भी विस्तार केंद्रीय स्तर से लेकर क्षेत्रीय स्तर तक होने लगा है। राज्य की लोक कल्याणकारी अवधारणा के कारण प्रशासन की जनकल्याण की गतिविधियों में वृद्धि हुई एवं उनके संपादन हेतु कार्मिकों की संख्या बढ़ने लगी है। प्रशासनिक विकेंद्रीकरण की अवधारणा भी क्षेत्रीयता की उन्मुखता को बढ़ावा देती है। प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अब परंपरागत मान्यताओं को सिद्धांतों की कसौटी पर परखा जाता है। आज कार्मिक प्रशासन की कार्यशैली पूरी तरह

से ऐसे सिद्धांतों पर आधारित है जो बहुत से परीक्षणों से गुजरे हैं, तर्कों पर आधारित हैं एवं अनुभव के आधार पर उनको उपयोगी भी पाया गया है। कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को भलीभांति जानने के बाद आइए कुछ ऐसे सिद्धांतों को भी जानें जो मान्यता प्राप्त हैं एवं इसके स्वरूप को और स्पष्टता से समझने में सहायक है। यह सिद्धांत कुछ इस प्रकार हैं-

1. **योग्यता का सिद्धांत-** आधुनिक लोक सेवा तथा नौकरशाही, वेबर प्रतिमान के योग्यता सिद्धांत को मंजूरी देती है। इस सिद्धांत के अनुसार योग्य व्यक्तियों के समूह में से बिना किसी भेदभाव के योग्यतम व्यक्ति का चयन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह संबंधित पदों पर भर्ती करने से पहले ही उन पदों के लिए आवश्यक योग्यताओं का स्पष्ट निर्धारण कर उनके लिए विज्ञप्ति जारी करें, सभी को आवेदन करने का अवसर प्रदान करें, निष्पक्ष चयन प्रक्रिया को अपनाते हुए चयन करें एवं योग्यता क्रम को निर्धारित करें।
2. **अवसर की समानता का सिद्धांत-** भारत एक लोकतांत्रिक देश है। इसका अपना लिखित संविधान है, जिसमें इस के नागरिकों को दी जाने वाली स्वतंत्रताएं, दायित्व एवं मौलिक अधिकार सभी स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद-15 में प्रावधान किया गया है कि, राज्य के द्वारा किसी भी व्यक्ति से केवल धर्म, जाति, वंश, लिंग, वर्ण तथा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अर्थात् विधि के समक्ष भारत का हर नागरिक समान है। इसी समानता के सिद्धांत के आधार पर लोक सेवाओं में प्रवेश के अवसर भी सभी को समानता के साथ प्राप्त हैं। लोक सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था सदा से ही विवाद का विषय है, जिसे अवसर की समानता के सिद्धांत के मार्ग में बाधा के तौर पर देखा जाता है। इस प्रकार अवसर की समानता भी कार्मिक प्रशासन के स्वरूप को और स्पष्ट करता है।
3. **व्यक्तिगत विकास का सिद्धांत-** प्रत्येक कार्मिक का कौशल, क्षमताएँ आदि भिन्न-भिन्न होती है। राज्य की सेवाओं में काम करने वाले ऐसे भिन्न भिन्न प्रकृति के कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, आत्मविश्वास आदि में वृद्धि करना कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। अतः कार्मिकों की व्यक्तिगत मान्यताओं तथा आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही कार्मिकों के विकास के कार्यक्रम निर्धारित करने चाहिए।
4. **उचित पुरस्कार का सिद्धांत-** किसी भी संगठन को उसके उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ऐसे कार्मिकों की आवश्यकता होती है, जिन का मनोबल उच्च है। कार्मिकों का मनोबल तो तभी उच्च होता है जब संगठन के द्वारा कार्मिकों को सकारात्मक रूप से अभिप्रेरित किया जाए। अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार देना, प्रशंसा करना या प्रमाण पत्र देना हो सकता है। अतः कार्मिक प्रशासन की सकारात्मक अभिप्रेरणा की प्रकृति का विस्तार रूप ही उचित पुरस्कार का सिद्धांत है।
5. **माननीय व्यवहार का सिद्धांत-** संगठन की परंपरागत मान्यताओं के विपरीत आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार अब यह सिद्ध हो चुका है कि, मानव संबंध तथा समूह व्यवहार जिसमें कार्मिकों के मध्य भाईचारा, प्रेम तथा सहयोगी संगठन की सफलता की कुंजी है इसके अनुसार संगठन में उच्च अधिकारियों के मध्य एक सामान्य व्यवहार रहना चाहिए।
6. **उचित पारिश्रमिक का सिद्धांत-** समान कार्य के लिए समान वेतन एक ऐसा सर्वमान्य सिद्धांत है, जो यह प्रावधान करता है कि, समान प्रकृति के कार्य के लिए समान वेतन होना चाहिए। यह वेतन श्रमिक की योग्यता, निर्धारित अनुबंध एवं निश्चित रूप से कार्य की प्रकृति के आधार पर तय होना चाहिए। हमारे देश के संविधान में समान कार्य के लिए समान वेतन को राज्य के नीति-निर्देशक तत्व में सम्मिलित किया गया है। यही कारण है कि केंद्र व राज्य कर्मचारियों के वेतनमान में अंतर पाया जाता है। यह सिद्धांत का

- उल्लंघन माना जाता है उनकी वेतन, मजदूरी, क्षतिपूर्ति तथा अवकाश मौलिक अधिकार नहीं है। अतः इस संदर्भ में कार्मिक प्रशासन से इस नियम के पालन की अपेक्षा ही की जा सकती है।
7. **विभिन्न हितों के मध्य समन्वय का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारी, सरकार तथा जनता तीनों से संबंधित होता है और तीनों पक्षों की अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। जनता की अपेक्षाएं होती हैं कि सरकार महंगाई कम करें, कम कर लगाए तथा लोकसेवक पूरी कुशलता के साथ कार्य करें। वहीं सरकार यह चाहती है कि कम से कम खर्च में अधिक से अधिक कार्य संपादित हो और इन सबके बीच कर्मचारी चाहते हैं कि उन्हें अधिक वेतन, रोजगार की सुरक्षा, सुविधाएं, अधिक स्वतंत्रता तथा पर्याप्त पदोन्नति के अवसर प्रदान किए जाएं। एक श्रेष्ठ कार्मिक व्यवस्था वही है जिसमें इन तीनों (जनता, सरकार तथा कर्मचारी) के मध्य सामंजस्य तथा समन्वय स्थापित हो।
  8. **कर्मचारियों की राजनीतिक तटस्थता का सिद्धांत-** भारतीय लोकतांत्रिक प्रशासनिक व्यवस्था में विभागीय मंत्री ना केवल सरकार का प्रतिनिधि होता है, बल्कि प्रशासनिक अधिकारी राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन, उनके नेतृत्व में ही कार्य करते हैं। उन्हें सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा चुनावी घोषणाओं के अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पूर्णतया निष्पक्ष तथा तटस्थ भाव से जनता की सेवा करें ताकि जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाएं राजनीतिक भेदभाव से मुक्त हो।
  9. **काम की प्रतिष्ठा का सिद्धांत-** उच्चाधिकारियों को अपने निम्न अधिकारियों के द्वारा किए जाने वाले कार्यों को छोटा नहीं समझना चाहिए और ना ही उनके साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर निम्न अधिकारियों को भी अपने काम को निम्न नहीं समझना चाहिए।
  10. **सहकारिता का सिद्धांत-** एक सबके लिए; सब एक के लिए, सहकारिता का सिद्धांत संगठनात्मक शक्ति का मजबूत आधार माना जाता है। इस सिद्धांत का तात्पर्य सामूहिक प्रयास होते हैं। कार्मिक प्रशासन के लिए यह सिद्धांत सबसे उपयुक्त माना जाता है। कार्मिक प्रशासन तथा सेवा का कार्य किसी एक कर्मचारी के द्वारा नहीं, बल्कि सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही संभव है। प्रशासन का संपूर्ण कार्य किसी एक व्यक्ति एक स्तर के द्वारा ही नहीं संपादित किया जा सकता है, बल्कि यह समस्त कर्मचारियों, विभागों तथा स्तरों से संबंधित होता है और सब के द्वारा मिल-जुल कर ही पूरा किया जाता है। व्यावहारिक तौर पर नियमित कार्यों की विशेषज्ञता और कार्य विभाजन के बहाने से इस सिद्धांत की अवहेलना प्रशासनिक संगठनों में पाई जाती है, जो अपने आप में एक विकट समस्या है।
  11. **राष्ट्रीय विकास का सिद्धांत-** कार्मिक प्रशासन का यह भी एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, कि, लोक सेवकों के दिलों में देश के संविधान जनता तथा कानून के प्रति एक विशेष प्रकार की आस्था होनी चाहिए। इस भावना के तहत वे निरंतर जनकल्याण एवं राष्ट्रीय विकास के लिए कार्य करते रहें।

इस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति को वर्णित करते उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर आप स्पष्ट रूप से ये समझ ही गये होंगे कि, लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक-प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है, जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर ही निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की सभी इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन अहस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी

कार्मिक-प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है। तथा विकासशील देशों के कार्मिक प्रशासन के स्वरूप में ज्यादा अंतर नहीं होता है या यून कहें कि अधिकांश बातें एक समान सी ही होती हैं।

### 1.5 कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति उसकी विशेषताओं, आदि को समझने के बाद अब हम कार्मिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। जैसा कि आपने अब तक जाना कि, कार्मिक प्रशासन किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों से संबंधित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है। कार्मिक प्रशासन का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। निम्न बिंदुओं के आधार पर हम कार्मिक प्रशासन के विस्तृत कार्य क्षेत्र को समझने का प्रयास करेंगे:-

1. **कार्मिक नीति का निर्माण-** किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए यह जरूरी है कि उसे नीतिगत ढंग से किया जाए। नीति न केवल मार्गदर्शक का काम करती है, बल्कि संबंधित कार्यों को नियंत्रित भी रखती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि नीति ही वह आधार होती है जिस पर किसी भी कार्य या कार्यक्रम का भविष्य एवं कुशलता निर्भर करती है। ठीक इसी प्रकार कार्मिक प्रशासन की कुशलता के लिए भी एक स्वस्थ कार्मिक या सेवीवर्गीय नीति की आवश्यकता होती है। यह कार्मिक प्रशासन का सबसे प्राथमिक दायित्व होता है कि वह संगठन के लक्ष्यों, आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप कार्मिक नीति का निर्माण करे। कार्मिक नीति में कर्मचारियों के वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन एवं भत्ते, पेंशन तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। एक अच्छी एवं व्यावहारिक कार्मिक-नीति सदैव उद्देश्यपरक, गतिशील, समानता की समर्थक, स्पष्ट, निष्पक्ष, समन्वयकारी, सर्व पक्ष स्वीकार्य तथा संतुलन के गुणों से भरपूर होनी चाहिए। कार्मिकों की माँग एवं उस माँग की आपूर्ति का अनुमान लगाना तथा कार्मिकों का नियोजन करना एक अत्यंत गंभीर तथा चिंतनशील कार्य है, जिसका क्रियान्वयन कार्मिक प्रशासन के अधिकारियों द्वारा ही कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। कार्मिक नीति का निर्माण तथा क्रियान्वयन सदा एक केंद्रीय कार्मिक अभिकरण द्वारा किया जाता है। भारत में यह दायित्व कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय द्वारा संपन्न किया जाता है।
2. **पद वर्गीकरण-** पद वर्गीकरण के द्वारा संगठन में ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। एक समान योग्यता, वेतन तथा दायित्वों के अनुरूप पदों को विभाजित करने से वेतन, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति इत्यादि से संबंधित सभी कार्य सरलतापूर्वक संपन्न हो जाते हैं। पद वर्गीकरण की प्रक्रिया मुख्यतः केंद्रीय स्तर का कार्य है अथवा कार्मिक या वित्त विभाग जैसे संगठन इस कार्य का संपादन करते हैं। संगठन के प्रत्येक स्तर पर चाहे उत्पाद वर्गीकरण का कार्य व्यापक रूप से नहीं होता हो फिर भी पद वर्गीकरण का कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबद्ध माना जाता है, क्योंकि कार्मिकों से संबंधित ज्यादातर कार्य कार्मिक प्रशासन से ही संबंधित होते हैं।
3. **सेवी वर्ग की भर्ती-** कार्मिकों की भर्ती करना सेवी वर्ग प्रशासन का प्रथम तथा मूल भूत तत्व होता है। योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति को संगठन में लाने की प्रक्रिया ही भर्ती कहलाती है। किसी भी संगठन की कार्य कुशलता का आधार भी इसी बात पर निर्भर करता है कि भर्ती को कितनी निष्पक्षता तथा प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न किया गया है। योग्यता आधारित भर्ती ही सबसे निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था मानी जाती है एवं इसके द्वारा ही कर्मठ तथा प्रतिभावान व्यक्तियों को संगठन में भर्ती किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों हेतु विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छँटनी,

- भर्ती हेतु प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन, साक्षात्कार तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही माना जाता है।
4. **प्रशिक्षण-** प्रशिक्षण का अभिप्राय एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में वृद्धि की जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही कर्मचारी पदोन्नति के योग्य बन पाता है। कार्मिक प्रशासन के प्रमुख उत्तरदायित्वों में से एक यह भी माना जाता है कि वह संगठन में कार्यरत विभिन्न पदों के कार्मिकों को यथावश्यक प्रशिक्षण दे अथवा इसकी समुचित व्यवस्था करे।
  5. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन या विभाग में योग्य तथा श्रेष्ठ कार्मिकों को भर्ती करने के पश्चात उन्हें संगठन में बनाए रखना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दायित्व होता है। कार्मिकों को अभिप्रेरित करने हेतु पदोन्नति की व्यवस्था प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। पदोन्नति के माध्यम से ही कर्मचारियों को संतुष्टि तथा अच्छे कार्य का पुरस्कार प्राप्त होता है। निम्न पद से उच्च पद पर जाने की यह प्रक्रिया पदोन्नति के साथ साथ आंतरिक भर्ती भी कहलाती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों की पदोन्नति हेतु विभिन्न सिद्धान्त भी निर्धारित करता है। पदोन्नति का आधार योग्यता, वरिष्ठता अथवा योग्यता एवं वरिष्ठता का संयुक्तिकरण हो सकता है जो संबंधित विभाग के सेवा नियमों तथा पदों की प्रकृति पर निर्भर करता है। पदोन्नति की प्रक्रिया कार्मिक प्रशासन के लिए बहुत ही अहम एवं संवेदनशील मुद्दा होती है, क्योंकि पदोन्नति की प्रक्रिया में यदि कहीं कोई कमी रह जाती है तो वह कार्मिकों की संतुष्टि तथा कार्य शैली को प्रभावित करती है जिसका सीधा असर संगठन पर पड़ता है।
  6. **वेतन एवं भत्ते-** किसी भी कार्मिक को कार्य निष्पादन के पश्चात नियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाना एक सामान्य सिद्धान्त है। प्रत्येक कार्मिक के लिए वेतन निर्धारण में उसकी स्वयं की योग्यता, पद के दायित्वों का स्तर, सेवा की अवधि, कार्य की प्रकृति तथा सेवानियमों को ही आधार बनाया जाता है। निर्धारित वेतन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भत्ते जैसे- ओवरटाइम भत्ता, यात्रा भत्ता आदि भी दिए जाते हैं।
  7. **आनुषंगिक (Fringe Benefit) लाभ-** आनुषंगिक लाभ से तात्पर्य होता है, निर्धारित मौद्रिक वेतन के अतिरिक्त नियोक्ता द्वारा अपने कार्मिकों को दी जाने वाली सुविधाएँ। आनुषंगिक लाभ में वर्दी, अवकाश, ऋण, चिकित्सा व्यय पुनर्भरण, आवास तथा एल.टी.सी. जैसी सुविधाएँ भी कार्मिकों को नियमानुसार दी जाती हैं।
  8. **निष्पादन मूल्यांकन-** कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों का एक निर्धारित अंतराल पर मूल्यांकन करना, संगठन तथा कर्मचारी दोनों के हित में होता है। सामान्य भाषा में इसे वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (Annual Confidential Report) कहा जाता है और यह पदोन्नति की प्रक्रिया में एक सहायक दस्तावेज सिद्ध होता है। ऐसा करके संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों की पहचान करके उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं का संगठन के हित में श्रेष्ठतम उपयोग किया जाता है।
  9. **अभिलेख रखना-** प्रत्येक संगठन में प्रत्येक कर्मचारी की एक निजी सेवा पुस्तिका (service book) भी प्रशासन द्वारा संधारित की जाती है। इस पुस्तिका में कर्मचारी की नियुक्ति, वेतन, अवकाश, पदोन्नति तथा प्रशिक्षण इत्यादि का भी सम्पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।
  10. **अनुशासनात्मक कार्यवाही एवं आचार संहिता-** किसी भी संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु अनुशासन नितांत आवश्यक होता है। लोक सेवाओं में अनुशासन बनाए रखने हेतु कुछ कानून एवं नियम निर्मित किए गए हैं, तथा प्रत्येक कार्मिक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन नियमों का पालन करें। किसी भी कर्मचारी द्वारा इन नियमों और कानूनों का उल्लंघन या उपेक्षा ही अनुशासनहीनता कहलाती है। अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न होने पर संबंधित कर्मचारी के विरुद्ध नियमानुसार अनुशासनात्मक

कार्यवाही की जाती है। संगठन में व्यवस्था बनाए रखने हेतु दोषी कार्मिक को दंडित भी किया जाता है। इस प्रकार की कार्यवाही कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। लोक सेवाओं में कर्मचारियों के व्यवहार को नियंत्रित करने तथा उसमें नैतिकता को बनाए रखने के लिए आचार संहिता भी निर्मित की जाती है।

- 11. श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सहज वार्ताएँ करता है, परिवेदना की प्रक्रिया में भाग भी लेता है, साथ ही परिवेदना के कारणों का पता लगाकर शांतिपूर्वक कर्मचारियों की विभिन्न समस्याओं का समाधान भी करता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने, नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।

जैसा की अब तक के सम्पूर्ण विवरण से आप को ज्ञात हो चुका होगा कि कार्मिक प्रशासन का कार्य-क्षेत्र कार्मिकों की सभी प्रकार की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। उपरोक्त वर्णित सभी तत्वों के अतिरिक्त भी कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कुछ और गतिविधियों को भी शामिल किया जा सकता है जो कुछ इस प्रकार से हैं-

- कर्मचारियों की प्रशंसा, पुरस्कार तथा प्रोत्साहन प्रदान करना;
- कर्मचारियों की सभी शिकायतों का निवारण करना;
- कर्मचारियों को कैरियर के अवसर उपलब्ध करवाना। जैसे-उच्च अध्ययन पर भेजना;
- कार्मिक पक्ष पर अनुसंधान के प्रयास करना;
- कर्मचारियों का स्थानांतरण करना और
- पेंशन तथा सेवा निवृत्ति से संबंधित कार्य।
- कार्मिक संगठनों तथा कार्मिक संघों से वार्ता करना तथा उनके साथ एक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।

## 1.6 निष्कर्ष

सम्पूर्ण इकाई के अध्ययन के पश्चात निष्कर्ष के तौर पर ये कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन कार्मिकों से सम्बन्धित है एवं लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिक संसाधनों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है। इसके लिए पूर्व विचारित नियमों, परंपराओं और विवेकपूर्ण तकनीकों का प्रयोग कार्मिकों के विकास, प्रतिधारण और चयन में किया जाता है ताकि वैज्ञानिक और अधिक व्यवस्थित ढंग से संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

### अभ्यास प्रश्न-

1. यह किसने कहा कि “लोक प्रशासन में कर्मचारी ही मुख्य तत्व है।”
2. यह कथन किसका है कि “लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।”
3. नौकरशाही में ‘लूट प्रणाली’ किस देश से संबंधित है?

## 1.7 सारांश

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में कार्य करने वाले लोगों अर्थात् मानवीय तत्वों से सम्बन्धित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक होता है। कर्मचारियों को संगठन में लाने, उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से सम्बन्धित कार्य करता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर से प्रभावित होता है। कर्मचारियों की क्षमताओं, इच्छाओं तथा सन्तुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करता है।

संगठनात्मक विकास के लिए यह एक आवश्यक एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह समग्र प्रशासन का वह भाग है जो कार्मिक मामलों से संबंधित है।

संगठन में, चाहे वह सरकारी हो या गैर-सरकारी अर्थात् निजी, कार्मिक प्रशासन एक महत्वपूर्ण तत्व होता है एवं उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। संगठन स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होता है। अर्थात् यदि सामाजिक-आर्थिक या राजनीतिक पर्यावरण में परिवर्तन आता है तो संगठन के प्रबंधन को भी सामंजस्य स्थापित करने हेतु परिवर्तित होना पड़ता है और क्योंकि प्रबंधन परिवर्तित होता है तो कार्मिक प्रशासन भी प्रभावित होता है। कार्मिक प्रशासन पर यह प्रभाव कार्मिकों के बदलते जीवन मूल्यों उनकी संगठन से अपेक्षाओं, कार्यकुशलता आदि के रूप में प्रदर्शित होता है। कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है और इसमें किसी भी संगठन में काम करने वाले लोगों के प्रबंध के सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही किसी भी संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों की नियुक्ति होती है।

### 1.8 शब्दावली

उत्तरदायित्व- किसी कार्य की जिम्मेदारी, परमआवश्यक- बहुत अधिक आवश्यक, पूर्णतया निष्पक्ष- किसी के भी पक्ष में न होना, अनुशासनात्मक कार्यवाही- कार्य या दायित्वों के विरुद्ध किए जाने वाले कार्यों पर दण्डात्मक कार्यवाही, राज्य का कल्याणकारी स्वरूप- राज्य या सरकारों द्वारा जनता के हित में किए जाने वाले कार्य, राज्य के कल्याणकारी स्वरूप को दर्शाते हैं,

### 1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एन. ग्लैडेन, 2. हरमन फाइनर, 3. अमेरिका

### 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्ट्स एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल. 1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

### 1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

### 1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विकास के चरणों की चर्चा करें।
2. कार्मिक प्रशासन की परिभाषा देते हुए इसकी प्रकृति पर प्रकाश डालें।
3. कार्मिक प्रशासन के अर्थ और परिभाषा की व्याख्या करते हुए इसके क्षेत्र की व्याख्या करें।

## इकाई- 2 प्रशासनिक व्यवस्था में लोक सेवा एवं उनकी भूमिका

### इकाई की संरचना

- 2.0 प्रस्तावना
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 लोक सेवा का अर्थ परिभाषाएं
- 2.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं
- 2.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं
- 2.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं
- 2.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृत्तियां
- 2.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण
- 2.8 लोक सेवाओं की भूमिका
- 2.9 निष्कर्ष
- 2.10 सारांश
- 2.11 शब्दावली
- 2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
- 2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.15 निबंधात्मक प्रश्न

### 2.0 प्रस्तावना

लोक सेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। इसे असैनिक सेवा, सरकारी सेवा, सिविल सेवा, सार्वजनिक सेवा जैसे कई नामों से जाना जाता है। सरकार का कार्य केवल राज्य- सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मंडलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपतियों तथा वरीय अधिकारियों, दूसरे शब्दों में मंत्रीगण द्वारा अकेले ही पूरा नहीं किया जा सकता है। इन लोगों से यह आशा भी नहीं की जाती है कि वह कर एकत्र करें, लेखा-परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें; हिसाब-किताब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात ही दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं जिन्हें स्थाई लोक सेवक कहा जाता है। स्त्री-पुरुषों का यह विशाल समूह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक कानून का पालन करवाता है और इन्हीं के द्वारा आम जनता सरकार के संपर्क में आती है। आम जनता की दृष्टि में लोक सेवक का महत्व भले ही कम हो लेकिन मंत्रालयों के लिए काम करने वालों की यह जमात सरकार के उन उद्देश्यों को जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है। राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें 'लोक सेवक' कहा जाता है। उनके द्वारा जो कार्य संपादित किए जाते हैं, वे लोक सेवा के कार्य कहे जाते हैं। पिफनर के अनुसार, "सेवी वर्ग को प्रशासन की आधारशिला कहा जाता है।" लोक सेवाएं राष्ट्र के प्रशासनिक और सामाजिक जीवन को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। राष्ट्र के बहुमुखी विकास हेतु जो निर्णय लिए जाते हैं, योजनाएं बनाई जाती हैं, उन्हें कार्यान्वित करने का मुख्य उत्तरदायित्व लोक सेवा पर ही होता है।

आधुनिक राज्य एफ. एम. मार्क्स के शब्दों में, "प्रशासकीय राज्य" बन गया है। प्रशासकीय राज्य में व्यक्ति की निर्भरता प्रशासन पर इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके बिना व्यक्ति अपने आम दिनचर्या की पूर्ति नहीं कर

सकता है। प्रशासन की जिम्मेदारियां भी काफी बढ़ जाती हैं। जिस अनुपात में प्रशासन की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं उसी अनुपात में लोक सेवा का महत्व भी बढ़ा है। सच्चाई तो यह है कि किसी भी देश का शासन या प्रशासन अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में तब तक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता जब तक लोक सेवाओं के कर्मचारी सरकार की नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कृत संकल्प ना हो। लोक सेवाएं जनता के कल्याण के लिए ही समर्पित होती हैं। आज के आधुनिक राज्य का प्रमुख उद्देश्य लोक-कल्याण ही है, यह लोक-इच्छा पर आधारित होता है और लोक सेवा के सहयोग से पूरा किया जाता है।

प्रारंभ में जो सरकारें थी वह अहस्तक्षेप की नीति में ज्यादा विश्वास रखती थी। उनका कार्य समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना तथा अपने राज्य की रक्षा करने तक ही सीमित था। फलतः उस समय असैनिक सेवाओं के कार्यक्षेत्र भी सीमित थे। जन कल्याण के कार्य नाम मात्र को ही संपन्न किए जाते थे, परंतु आज प्रायः विश्व के हर देश में जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने की बात सरकार सोचती है। अतः नागरिक सुविधाओं को पूरे देश में संचालित करने के लिए प्रशासन अपने कार्यालयों और लोक सेवकों का हर क्षेत्र में एक जलसा दिखाता है ताकि सभी नागरिक उसकी पहुंच में आ सकें। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक सेवा की परिभाषाओं के साथ लोक सेवा का अर्थ समझ जाएंगे।
- लोक सेवा एवं नौकरशाही में अंतर को भी समझ पाएंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं में अंतर को भी जान पाएंगे।
- आधुनिक लोक सेवाओं की विशेषताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- लोक सेवा की नवीन प्रवृत्तियों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- भारत में लोक सेवाओं को दिए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में भी जान जाएंगे।
- लोक सेवाओं की भूमिका को विस्तार से जान पाएंगे।

## 2.2 लोक सेवा का अर्थ और परिभाषा

प्रायः प्रत्येक देश में मोटे तौर पर दो प्रकार की सेवाएं पाई जाती हैं- प्रथम, सैनिक सेवा और द्वितीय, असैनिक सेवा। सैनिक सेवा का तात्पर्य ऐसी सेवाओं से होता है जो देश की सेवा और सुरक्षा व्यवस्था से संबंधित होती है। दूसरी तरफ, असैनिक सेवा का संबंध व्यक्तियों के उन समूहों से है जो लोक सेवा करते हैं, सरकार द्वारा निर्देशित जनकल्याण के कार्यक्रमों को पूरा करते हैं। एक अन्य बात इससे संबंधित यह भी है कि सरकार की कार्यपालिका शाखा भी मुख्यतः दो भागों में बंटी होती है- राजनीतिक कार्यपालिका तथा स्थाई कार्यपालिका। राजनीतिक कार्यपालिका के अंतर्गत वे लोग आते हैं जिनका संबंध योजनाओं के निर्माण, नीतियों के निर्धारण तथा निर्णय लेने से है। यह अस्थाई होते हैं तथा इनकी सेवा की अवधि राजनीतिक कारणों पर निर्भर करती है। दूसरी तरफ, अराजनीतिक एवं स्थाई कार्यपालिका है जो राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा निर्मित योजनाओं तथा निर्धारित

नीतियों को पूरा करने में सहयोग प्रदान करती है। यह स्थाई होते हैं तथा इनकी निश्चित सेवा- अवधि होती है। वस्तुतः ये ही लोक सेवा के कर्मचारी अर्थात् लोक सेवक हैं। सरकार अपना कार्य मंत्रियों तथा विभाग के राजनीतिक आदेशों के माध्यम से ही पूरा नहीं कर सकती बल्कि उन कार्यों को लागू करने तथा विस्तृत रूप से जनता तक पहुंचाने के लिए कुछ ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो उत्तरदायित्व की भावना से काम करें। इन उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए जिन कर्मचारियों और अधिकारियों की बहाली की जाती है, उन्हें ही लोक सेवक कहा जाता है। लोक सेवाओं की महत्ता को बताते हुए एल. डी. व्हाइट ने कहा है कि “एक अच्छा लोक प्रशासन बहुत से तत्वों के संयोजन से बनता है, जैसे- नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां और प्रक्रियाएं किंतु किसी भी दूसरे तत्व से बड़ा तत्व है मानव शक्ति।”

‘लोक सेवा’ अर्थात् सिविल सर्विस शब्द की शुरुआत ईस्ट इंडिया कंपनी में व्यापारिक तथा प्रशासनिक कार्य करने वाले कार्मिकों के लिए हुई। आधुनिक लोक सेवाओं का उद्भव भी पश्चिमी यूरोप में ही हुआ जबकि प्राचीन काल में लोक सेवाओं का जन्म ईस्वी सन् 6 में चीन में हुआ।

विभिन्न विचारकों ने लोक सेवाओं के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए जो कुछ इस प्रकार से हैं-

फाइनर के अनुसार, “ लोक सेवा अधिकारियों का एक ऐसा पेशेवर निकाय है जो स्थाई, वेतन भोगी, कार्यकुशल या दक्ष होता है।”

एल. डी. व्हाइट के शब्दों में, “ लोक सेवाएं प्रशासनिक संगठन का एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सरकार अपने लक्ष्यों को प्राप्त करती है।”

भारतीय दंड संहिता की धारा- 21 के 12वें विवरण के अनुसार, “सरकारी सेवारत या वेतन पाने वाला अथवा सरकारी कार्य के लिए शुल्क या कमीशन पाने वाला व्यक्ति ‘लोक सेवक’ की श्रेणी में आता है।”

भारत की लोक सेवा के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में कहा था, मुख्यमंत्री और मंत्री भी लोक सेवक की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि वह सरकारी वेतन प्राप्त करते हैं। सैनिक, न्यायिक तथा औद्योगिक सेवाओं के सेवीवर्ग लोक सेवक में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

ब्रिटेन में ‘लोक सेवा’ का आशय उन कर्मचारियों से है जो “राजनीतिक या न्यायिक पदाधिकारियों के अतिरिक्त ताज(महाराजा/महारानी) के सेवक जो असैनिक रूप से सेवायोजित हो और जिनका पारिश्रमिक पूर्णतया तथा प्रत्यक्षतः उस धनराशि में से दिया जाता है जो संसद द्वारा इस हेतु स्वीकृत की गई हो।”

अमेरिकन विश्व कोष में दी गई परिभाषा के अनुसार, “लोक सेवाएं उन संगठित वेतन भोगी सेवी वर्ग के निकाय को कहते हैं जो सरकार के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। यह सेवाएं तथा इनका नामकरण विभिन्न देशों की परंपराओं के अनुसार हो सकता है। यद्यपि आधुनिक राज्य में अधिकांश सेवाएं लोक सेवाएं ही हैं तथापि ‘चुने हुए जन-जनप्रतिनिधि तथा रक्षा सेवी वर्ग’ लोक सेवा से बाहर माने जाते हैं।”

न्यू वेबेस्टर बीसवीं सदी विश्व कोष के अनुसार लोक सेवाओं से आशय निम्नलिखित सेवाओं या कार्मिकों से है-

- रक्षा तथा न्यायिक कार्यों के अतिरिक्त वे सभी कार्मिक जो सरकारी प्रशासन में नियुक्त हैं;
- ऐसी सरकारी सेवा जिसमें कार्मिक का कार्यकाल सुरक्षित है तथा प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से प्रवेश पाया है; और
- सरकारी विनियमों के अधीन गठित सेवा लोक सेवा है।

वस्तुतः लोक सेवा या लोक सेवक की अभी तक स्पष्ट तथा सर्वमान्य परिभाषा विकसित नहीं हो सकी है, क्योंकि प्रत्येक देश की कार्मिक सेवा तथा पदों का वर्गीकरण स्थानीय संस्कारों एवं पर्यावरण से प्रभावित है। भारत में मंत्री लोक सेवक तो माने जा सकते हैं किंतु वे किसी ‘लोक सेवा’ के स्थाई सदस्य नहीं कहला सकते हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि लोक सेवा से तात्पर्य उन सरकारी सेवाओं से है, जिसके पदाधिकारियों को वेतन सरकारी

खजाने से मिलता है तथा जिन पर सरकार नियंत्रण रखती है लेकिन इनमें सैनिक सेवा तथा न्यायिक सेवा के अधिकारी शामिल नहीं है, क्योंकि इनकी पद स्थिति विशिष्टता प्राप्त है। लोक प्रशासन से संबंधित साहित्य में 'लोक सेवा' के वर्णन तथा वर्गीकरण में प्रायः प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को ही समाहित किया जाता है जो संकुचित दृष्टिकोण है। आधुनिक कल्याणकारी राज्य के उद्भव से पूर्व प्रचलित रही राजशाही व्यवस्थाएं मुख्यतः 'सैनिक' प्रकृति की थी जिनमें राजा के अधिकांश कार्मिक या सेवक सेना दल के सदस्य होते थे। यद्यपि बहुत से राजाओं ने कल्याणकारी गतिविधियों पर ध्यान दिया फिर भी राज्य की सुरक्षा तथा विस्तार उनकी प्राथमिक गतिविधि होती थी।

### 2.3 नौकरशाही एवं लोक सेवाएं

सामान्यतः लोक सेवाओं और नौकरशाही को समानार्थक माना जाता है, लेकिन यह सही मत नहीं है। इन दोनों में मूल उत्तरदायित्व एवं संबंध में कोई अंतर ना होते हुए भी दोनों शब्दों के उच्चारण मात्र में अंतर दिखाई देता है। वस्तुतः नौकरशाही और लोक सेवा में समानता का भाव वेबर के आदर्श प्रतिमान के बाद उत्पन्न हुआ। अपने एक प्रतिमान में वेबर ने नौकरशाही की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया था जो लोक सेवाओं में भी देखने को मिलती है और इसी कारण इन दोनों को समान माना जाने लगा। वास्तव में दोनों में अंतर है। एक प्रकार से नौकरशाही लोक सेवा में व्याप्त बुराई का नाम है। लोकसेवा व्यापक एवं सकारात्मक पक्ष को उजागर करती है, वही नौकरशाही संकीर्णता को दर्शाती है। लोक सेवाओं का कार्य देश की परिस्थितियों के अनुसार प्रभावित होता रहता है। लोक सेवाओं को वर्तमान में राज्य तथा संविधान के माध्यम से गठित कर विशिष्ट दायित्वों के अनुरूप ढाला जाता है। यह लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती है बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं। नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है।

लोक सेवा एवं नौकरशाही को और अच्छे से समझने के लिए आइए इन दोनों के बीच अंतर को इस तालिका के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं-

लोक सेवा	नौकरशाही
1. लोक सेवाओं की अवधारणा मानव सभ्यता तथा संस्कृति के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गई थी।	1. इनका जन्म 18वीं सदी से प्रारंभ होता है।
2. लोक सेवाएं, असैनिक सेवाएं हैं।	2. यह सैनिक एवं और सैनिक दोनों ही सेवा में विद्यमान है।
3. इन का तात्पर्य आम जनता के लिए सुविधाएं एवं सेवाएं प्रदान करने वाले सरकारी तंत्र के कार्मिकों से है।	3. यह कर्मचारियों की कार्यशैली एवं व्यवहार का नाम है।
4. इन का गठन संविधान एवं राज्य सरकार द्वारा किया जाता है।	4. विधिवत गठित नहीं बल्कि लोक सेवाओं में परिलक्षित होती है।
5. यह लोक प्रशासन का विस्तृत एवं बहुआयामी पक्ष हैं।	5. नौकरशाही इन लोक सेवाओं में व्याप्त एक कार्यशैली एवं मानसिकता है।

6. यह सकारात्मक कार्य कुशलता का प्रतीक है।	6. नकारात्मक तथा अकार्यकुशलता का प्रतीक है।
7. जन सेवक तथा व्यापकता को दर्शाती हैं।	7. संकीर्णता का परिचायक है।
8. लोकसेवा पद के लिए प्रतियोगिता द्वारा भर्ती होती है और वेतनमान होता है।	8. नौकरशाही पद नहीं है अतः भर्ती नहीं होती और ना ही परीक्षा होता।
9. लोक सेवाएं मानव शरीर की संरचना की भांति है।	9. नौकरशाही मानव शरीर की कार्यप्रणाली की भांति कहीं जा सकती हैं।

## 2.4 विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं

अब तक के अध्ययन के द्वारा आप लोक सेवा का अभिप्राय स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे। आप यह भी समझ गए होंगे कि किस प्रकार लोकसेवा और नौकरशाही में भी अंतर होता है। भारत के संदर्भ में विशेष रूप से लोक सेवाओं को समझने से पूर्व विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को जान लेना चाहिए। इन्हें जान लेना इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जो तत्व विभिन्न देशों में लोक सेवा की विशेषताओं में परिवर्तन लेकर आते हैं या उनका निर्धारण करते हैं या प्रभावित करते हैं वही तत्व लोक सेवाओं की भूमिका में भी उसी प्रकार का परिवर्तन लेकर आते हैं या प्रभावित करते हैं।

विकसित देशों में लोक सेवा की प्रवृत्ति और प्रकृति विकासशील देशों से बिल्कुल अलग होती है। यद्यपि आज विभिन्न प्रकार के सूचना एवं प्रसार के साधनों का विकास हो जाने से यह अंतर काफी कम हो गया है, फिर भी आर्थिक एवं तकनीकी स्तरों का अंतर होने के कारण लोक सेवा की परंपराओं के बीच अंतर होना स्वाभाविक सा है। विकसित तथा विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषताओं को नीचे दी जा रही तालिका के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

विकासशील देशों में लोक सेवाएं	विकसित देशों में लोक सेवा
1. इन देशों में लोक सेवाएं अधिकांशतः 15 वीं सदी के पश्चात के उपनिवेशवाद का परिणाम है।	1. इन देशों में लोक सेवाएं मुख्यतः संबंधित देश की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं।
2. इन देशों का समाज रूढ़िवादी अशिक्षित तथा कृषि को का होने के कारण यहां लोक सेवाओं पर जाति, भाषा एवं परंपरा का प्रभाव होता है।	2. इन देशों में इस प्रकार का प्रभाव ना के बराबर होता है।
3. लोक सेवक कर्तव्य हीनता तथा अहम की भावना रखते हैं।	3. लोक सेवकों में उत्तरदायित्व की भावना पाई जाती है।
4. लोक सेवाओं का वर्गीकरण बहुत उलझा हुआ होता है। अनेक वेतनमान तथा कार्मिकों में वर्ग भेद पाया जाता है।	4. इन देशों में लोक सेवाओं का वर्गीकरण स्पष्ट तथा सरल होता है जिससे वेतनमानों की संख्या भी कम होती है।
5. इन देशों की लोक सेवाओं में सामान्यज्ञ अधिकारियों का प्रभुत्व रहता है।	5. इन देशों में विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व दिया जाता है।

6. कार्य निष्पादन- मूल्यांकन या तो होता ही नहीं है अथवा केवल औपचारिकता की पूर्ति भर होता है।	6. कार्य निष्पादन- मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है।
7. लोक सेवाओं के वेतन भत्ते निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होते हैं।	7. निजी क्षेत्र में लोक सेवाओं से अधिक वेतन भत्ते दिए जाते हैं।
8. पदोन्नति का आधार अधिकांशतः वरिष्ठता को ही माना जाता है।	8. पदोन्नति सामान्य तौर पर योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों पर आधारित होती है।
9. देश की बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या को ही लोक सेवाओं से रोजगार प्राप्त होता है।	9. देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत लोक सेवाओं में कार्यरत होता है।
10. उच्च वेतन तथा पदोन्नति लोक सेवाओं में अभिप्रेरणा के मुख्य स्रोत होते हैं।	10. लोक सेवकों को अनेक प्रकार की अभिप्रेरणा है तथा वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध होते हैं।
11. इन देशों में कार्मिक प्रशासन में अनुसंधान परिवर्तन तथा नवाचार को महत्व नहीं दिया जाता है।	11. अनुसंधान तथा नवाचार बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

### 2.5 आधुनिक लोक सेवा की विशेषताएं

विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवा की विभिन्न विशेषताओं को पढ़ने के बाद आप यह तो समझ ही गए होंगे कि दोनों प्रकृति के देशों की व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन उन देशों की लोक सेवाओं की विशेषताओं तथा स्वरूप को भी प्रभावित करते हैं। आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचार प्रसार ने विकसित एवं विकासशील दोनों ही प्रकृति के देशों की लोक सेवाओं पर बहुत प्रभाव डाला है। आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं के संबंध में ग्लैडन ने कहा है कि “लोक सेवा से यह अपेक्षाएं हैं कि यह बिना पक्षपात के चुनी जाएगी, प्रशासनिक दृष्टि से कार्य कुशल होगी, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होगी तथा समाज सेवा की भावना से ओतप्रोत होगी।” लोकसेवा आज के आधुनिक युग में कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ बन गई है। प्रशासन के हर क्षेत्र में विशेषीकरण बढ़ गया है। अतः आज के लोक प्रशासन में पहले के लोक सेवकों की अपेक्षा ज्यादा योग्य, कर्मठ और शिक्षित व्यक्ति प्रवेश कर रहे हैं। आधुनिक लोक सेवा की प्रमुख विशेषताओं को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. **प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता-** आधुनिक लोक सेवा योग्य, प्रशिक्षित एवं कुशल व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होती है जो अनेक उत्तरदायित्व को निर्धारित सीमा के भीतर ही बेहतर ढंग से पूरा करता है। आधुनिक लोक सेवा की प्रवृत्ति व्यवसायिक है। इसमें कार्यरत लोग उसी तरह से अपने अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं, जिस प्रकार से एक व्यवसायिक संगठन में लोग रहते हैं। आज प्रशासन भी ठीक उसी तरह कई व्यवसायों में बंटा है, जैसे अलग-अलग प्रकार के व्यवसाय बटे होते हैं। अब लोक सेवाओं में नियुक्ति का आधार पहले जैसा सामान्य नहीं रहा बल्कि बदल गया है। आज प्रशासन में कार्मिकों का चयन कठिन योग्यता परीक्षा और जांच के आधार पर किया जाता है जिसके कारण प्रशासन को योग्य, प्रशिक्षित और कुशल कर्मचारी प्राप्त होने लगे हैं।

2. **वेतनभोगी कार्यकर्ता-** लोक सेवा में योग्यता के आधार पर सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का चुनाव होने के बाद उन्हें उनकी योग्यता और पद के अनुसार निर्धारित वेतन दिया जाता है तथा उनकी सेवा के अनुसार उन्हें अन्य सुविधाएं और साधन भी उपलब्ध कराए जाते हैं। अतः यह भी लोक सेवाओं की एक विशेषता है कि यह अवैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय नहीं है।
3. **स्थाई कार्यकाल-** राजनीतिक कार्यपालिका के सदस्य अस्थाई होते हैं, परंतु लोक सेवा के कर्मचारी स्थाई प्रकृति के होते हैं। अर्थात् लोक सेवा में अपनी प्रविष्टि के बाद सभी लोक सेवक निर्धारित समय और उम्र तक अपने पद पर कार्य करते रहते हैं। राजनीतिक सत्ता के बदलने पर भी इनके कार्यकाल पर कोई असर नहीं होता है, यही कारण है कि लोक सेवा को लोग जीवनयापन और जीवन वृत्ति के रूप में अपनाते हैं।
4. **तटस्थ एवं निष्पक्ष-** लोक सेवकों की अन्य विशेषताओं की तरह उनकी तटस्थ एवं निष्पक्ष प्रवृत्ति भी उनकी एक विशेषता मानी जाती है। लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ होते हैं। तटस्थता से अभिप्राय यह है कि किसी भी राजनीतिक दल के सत्ता में आने का या उनके सत्ता से जाने का लोक सेवकों की निष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लोक सेवक सत्ता में आए प्रत्येक राजनीतिक दल के निर्णय को राज्य का आदेश मानकर पूरा करते हैं। प्रशासन के नियम और कानूनों को लागू करने में लोक सेवक निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं और किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करते हैं।
5. **पद सोपान का सिद्धांत-** लोक सेवा का संपूर्ण संगठन पदसोपान एक व्यवस्था के आधार पर स्थापित होता है। यह संगठन पिरामिड की भांति होता है जिसमें प्रत्येक अधिनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में कार्य करता है तथा अपने कार्यों के लिए वह सदैव अपने उच्च अधिकारी से सत्ता प्राप्त करता है तथा उसी के प्रति उत्तरदाई भी होता है। इसका मूल उद्देश्य लोक सेवा के विभिन्न सोपानों में अनुशासन, उत्तरदायित्व एवं कुशलता बनाए रखना है।
6. **अनामता का सिद्धांत-** लोकसभा के सदस्यों का कार्य प्रचारात्मक तथा अपना नाम कमाने का ही होता है जबकि लोकसेवक ही वे व्यक्ति होते हैं जो पर्दे के पीछे रहकर अपना नाम सामने लाए बिना ही अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हैं। नाम कमाने और परदे के आगे रहने का अधिकार केवल राजनीतिक कार्यपालिका के मंत्रियों और अन्य अध्यक्षों के पास ही होता है।
7. **औपचारिक दृष्टिकोण-** लोक सेवा के सदस्य औपचारिक दृष्टिकोण से नियमों और कानूनों के अनुसार कार्य करते हैं। इनमें मानव संबंधों, भावनाओं और विचारधाराओं का स्थान नहीं होता है। साथ ही यह अनौपचारिकता से भी दूर रहकर कार्य करते हैं।
8. **राज्य व्यवस्था का अनिवार्य अंग-** प्रत्येक प्रकार की शासन व्यवस्था के संचालन करने के लिए लोक सेवा ही एकमात्र साधन होता है। लोक सेवकों की अनिवार्यता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। लोक सेवा के बिना राज्य अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।

इस प्रकार आधुनिक लोक सेवा अनेक विशेषताओं को लिए हुए होती है जो इसकी आवश्यकता एवं महत्व को भी इंगित करती है। लोक सेवाओं की इन विशेषताओं को जानने के बाद आइए अब हम लोक सेवाओं की आधुनिक व नवीन प्रवृत्तियों पर भी एक नजर डालते हैं और यह समझने का प्रयास करते हैं कि बदलते परिवेश में लोक सेवाओं की प्रवृत्तियों में किस प्रकार के बदलाव आ रहे हैं।

## 2.6 लोक सेवा की नवीन प्रवृत्तियां

आज के इस विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। बढ़ते हुए संचार साधनों एवं आधुनिक आविष्कारों ने लोक सेवा के समक्ष अनेक नई समस्याओं को भी जन्म दिया है। लोकसेवा एक गत्यात्मक संस्था है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल लेना लोक सेवा की मुख्य विशेषता मानी जाती है। भारत के संदर्भ में, आधुनिक समय में लोक सेवाओं में पाई जाने वाली निम्नलिखित आधुनिक प्रवृत्तियां हैं-

1. लोक सेवकों की संख्या में तेजी से वृद्धि।
2. लोक सेवा में अधिकाधिक विशेषज्ञों तथा प्रविधिज्ञों की नियुक्ति के कारण बढ़ती हुई विभिन्नता।
3. लोक सेवकों की शक्तियों में निरंतर वृद्धि हो रही है।
4. लोक सेवाओं में गुणों की आवश्यकता पड़ रही है।
5. नकारात्मकता से सकारात्मक कार्य की ओर लोक सेवा के दायित्वों में झुकाव है।
6. लोक सेवा की तटस्थता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हो रहा है।
7. लोक सेवा के लिए नैतिक तथा व्यवसायिक मापदंडों पर अधिक बल दिया जा रहा है।
8. मानव संसाधन विकास की ओर झुकाव बढ़ रहा है।
9. लोक सेवा की विकास प्रशासन में भूमिका बढ़ रही है।
10. संरचना और कार्यों में लोकतांत्रिक तत्व।
11. पर्यावरणीय अनुकूलता।
12. सदस्यों के बीच आंतरिक संबंध एवं पारस्परिक निर्भरता।
13. गिरती हुई बदनाम छवि।

लोक सेवा के कार्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। दिन-प्रतिदिन उन पर नई जिम्मेदारियां डाली जा रही है। यही कारण है कि, भारत, अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन और सोवियत संघ में लोक सेवकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। लोक सेवा में आज विशेषज्ञता का प्रचलन बढ़ गया है तथा तकनीकी कर्मचारियों की संख्या पहले की अपेक्षा ज्यादा होती जा रही है। हर छोटे-छोटे कार्यों के लिए भी विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है और उनका अलग-अलग विभाग कारों के आधार पर गठित किया जाता है। अतः लोकसेवा की नई प्रवृत्ति में विभिन्नता विशेषज्ञता दोनों ही पायी जाती हैं। लोक सेवकों पर बढ़ती हुई जिम्मेदारियों और उत्तरदायित्वों के कारण ही लोक सेवकों की शक्तियों में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। जब तक लोक सेवा के कार्य में वृद्धि होती रहेगी लोक सेवकों की शक्तियों में प्रचार होता रहेगा। लोक प्रशासन का स्वरूप आज सकारात्मक कार्यों की तरफ पहले से कई गुना ज्यादा बढ़ गया है। लोकसेवा को जनहित में जनकल्याण की भावना से कार्य करना पड़ता है, अर्थात् जनता की सहमति प्राप्त करना ही लोक सेवा की सकारात्मक प्रवृत्ति माना जाता है। लोक सेवा की सदस्यता की परंपरागत अवधारणा में परिवर्तन हुआ है। आज लोकसेवक राजनीतिक रूप से ज्यादा जागरूक होते हैं। यह राजनीतिक कार्यपालिका को अपने निर्णयों से प्रभावित भी करने लगे हैं। अंत में यही कहा जा सकता है कि आज लोक सेवा की नई प्रवृत्ति में नैतिक एवं व्यवसायिक मापदंड पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। लोक सेवकों का मनोबल बना रहे, इसके लिए उनके जीवन से जुड़े हुए होते, मानसिक और भावनात्मक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है। अनौपचारिक संबंधों तथा राजनीतिक कार्यपालिका के व्यवहारों के द्वारा भी नैतिकता और मनोबल को बढ़ावा मिलता है। अपने कार्यों के प्रति लोकसेवक व्यवसायिक मापदंड अपना कर पहले से कहीं ज्यादा कुशलतापूर्वक एवं कर्तव्य निष्ठा से लोक सेवा में अपना योगदान दे रहे हैं।

## 2.7 लोक सेवा तथा संवैधानिक संरक्षण

लोक सेवक सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों और निर्णय को निष्पक्ष होकर लागू करने का प्रयास करते हैं। देशों का विकास और उनकी सफलता इन लोक सेवकों के कुशल, प्रभाव शील कार्यकरण पर ही निर्भर करती है। लोक सेवक तो सरकार की सफलता और देश के विकास को सुनिश्चित करते हैं परंतु लोक सेवकों का किसी भी प्रकार से उत्पीड़न ना हो इस बात का ध्यान रखना भी देश की सरकारों का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। सरकार लोक सेवकों के साथ कोई पक्षपात पूर्ण व्यवहार ना करें, इसके लिए विश्व के सभी देशों के लोक सेवकों को संवैधानिक संरक्षण की आवश्यकता होती है। लोकतांत्रिक समाज कानून के शासन पर आधारित होता है। भारत भी एक लोकतांत्रिक समाज है। अतः यहां पर लोक सेवकों को “संवैधानिक संरक्षण” प्रदान किया जाता है। आइए भारत में लोक सेवकों को प्रदान किए जाने वाले संवैधानिक संरक्षण के बारे में विस्तार से जान लेते हैं-

1. अनुच्छेद- 309 के अंतर्गत केंद्र एवं राज्य के लोक सेवकों की भर्ती एवं नियुक्ति की सेवा शर्तें संसद/राज्य विधानसभा के अधिनियम द्वारा नियंत्रित की जाएगी।
2. अनुच्छेद- 310 के अनुसार लोक सेवक राष्ट्रपति, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद पर रह सकेगा।
3. अनुच्छेद- 311 के अनुसार कानूनी और वैध सेवा मुक्ति, अपदस्थता या पदोन्नति के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं- सेवामुक्ति, अपदस्थ करना या पदावनति आदेश सक्षम सत्ता द्वारा दिए जाएं और प्रभावित व्यक्तियों को कार्यवाही के संबंध में स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करना।
4. अनुच्छेद- 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात स्थिति में केंद्र शासन राज्य के समस्त या वर्ग विशेष के लोक सेवकों को उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्तों में कटौती के निर्देश दे सकता है।
5. मौलिक अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों को समानता के अधिकार के अंतर्गत रोजगार के मामले में सबको अवसर की समानता प्रदान करता है।
6. संविधान के अनुच्छेद 308 से 323 के अंतर्गत निम्न संघीय एवं राज्यों की सेवाओं का वर्णन किया गया है-
  - केंद्र और राज्यों के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान।
  - अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना का प्रावधान।
  - सेवा की सुरक्षा लोक सेवाओं को प्रदान की गई है।
  - लोक सेवकों के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना(1976)

इस प्रकार भारत में लोक सेवकों को किसी भी प्रकार के उत्पीड़न और पक्षपातपूर्ण व्यवहार से सुरक्षा प्रदान करने हेतु भारतीय संविधान में विभिन्न उपबंधों द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है।

## 2.8 लोक सेवाओं की भूमिका

उपरोक्त संपूर्ण वर्णन के द्वारा आप इस बात को भलीभांति जानते होंगे कि राज्य के विकास की विभिन्न इकाइयों कार्यरत हैं उनमें लोकसेवा एक महत्वपूर्ण परिसंपत्ति है। इसे शासन की चतुर्थ शाखा भी माना जाता है। शासन की तीन शाखाएं विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। इस शाखाओं के प्रयोजन तो स्पष्ट है। परंतु एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि फिर लोक सेवा का क्या प्रयोजन है? सामान्य रूप से लोकसेवा तीनों शाखाओं से बनी हुई है। प्रत्यक्ष रूप से लोकसेवा सरकार के नियंत्रण में कार्य करती है। लोक सेवा का प्रमुख कार्य सरकार के दैनिक कार्यों को संपन्न करना तथा कानूनों को लागू करना है। विधायिका की परिसीमन के संदर्भ में लोक सेवा के निर्णायक भूमिका समझी जा सकती है। जो प्रतिनिधि चुनकर विधायिका में आते हैं उनके पास सामाजिक और आर्थिक जीवन के समस्त पहलुओं की ना तो जानकारी होती है और ना समझने का समय ही। साथ में क्रियान्वित

करने के तरीकों की भी जानकारी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में लोकसेवा अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। लोकसेवा को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लोक सेवा नीतियों, निर्णय और कार्यक्रमों को बनाने में सहायता प्रदान करती है, नीति को व्यवहारिक रूप प्रदान करती है और जनता की बढ़ती हुई मांगों को संभालती है। वह विधि निर्माण की पहल नहीं करती है परंतु कानून को बनाने में विशेषज्ञ सलाह और आवश्यक आंकड़े उपलब्ध कराती है, जिसके बिना कानून बनाना संभव नहीं है। नौकरशाही नीति संघर्ष में सदैव विजय नहीं होती है, परंतु उसमें उसकी हमेशा सहभागिता उल्लेखनीय बात है।

लोक सेवा की इन सभी विशेषताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के प्रशासन में लोक सेवा का एक विशेष महत्व है। लोक सेवा को आज अनेक महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करना पड़ता है। वर्तमान विश्व की किसी भी शासन व्यवस्था में लोक सेवाओं के बिना शासन की नीतियों और कार्यक्रमों की क्रियान्वयन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। जैसा कि आपने विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं की विशेषता को पढ़कर जाना की, विकसित देशों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्रियाओं में आधुनिकता आ गई है और उन्हीं क्रियाओं के संदर्भ में वहां का लोक प्रशासन भी प्रभावित हो चुका है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के परंपरागत गढ़ धराशायी होने लगे तथा एशिया, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और मध्य पूर्व में नए स्वतंत्र अर्थात् विकासशील देशों का उदय होने लगा। यह विकासशील देश जिनमें भारत भी शामिल है अपनी रूढ़िवादी परंपराओं, शिक्षा, धार्मिक कट्टरता, जाति तथा वर्ग में भेद, संसाधनों की भिन्नता तथा कमजोर आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित है। यहां का प्रशासन तंत्र मुख्य रूप से उपनिवेश कालीन संस्कृति से प्रभावित है जिसमें कठोर नौकरशाही के अवगुण तथा विशेषज्ञता का अभाव है। परंतु इन सब विसंगतियों के होने के बावजूद इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि दोनों ही प्रकार के देशों में लोकसेवा प्रशासन की आधारशिला है। राज्य के प्रत्येक नए कार्य और प्रत्येक नई योजना से लोक सेवा पर एक नई जिम्मेदारी आ पड़ती है। लोक सेवा के कार्यों को संपन्न करने के लिए ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ तथा कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि उन्हें ना सिर्फ जनता के कल्याण से संबंधित कार्यों को करना पड़ता है बल्कि राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देने का कार्य संपादित करना पड़ता है। लोकसेवा को अनेक तरह के और अराजनीतिक, प्रशासनिक तथा कल्याण से संबंधित प्रमुख कार्य संपादित करने पड़ते हैं। हालांकि लोक सेवा द्वारा इतने असंख्य कार्य संपन्न करने पड़ते हैं कि उन्हें सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता है, परंतु फिर भी इन देशों की परिवर्तित परिस्थितियों तथा नव आकांक्षाओं में लोक सेवाओं की बढ़ती भूमिका को निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा रूप से समझा जा सकता है-

1. **राजनीतिक कार्यपालिका को परामर्श देना-** राजनीतिक कार्यपालिका को उपलब्ध परिस्थितियों में उचित परामर्श देना लोक सेवा का प्रथम कर्तव्य माना जाता है। लोक सेवक प्रशासन के कार्यों में कुशल तथा विशेषज्ञ होते हैं। अतः शासन की नीतियों और कार्यक्रमों के निरूपण में मंत्री को सूचना एवं परामर्श उपलब्ध करवाने का दायित्व लोक सेवक अर्थात् प्रशासनिक अधिकारियों का ही होता है। राजनीतिक गतिविधियों में कार्यरत मंत्रियों के पास ना तो इतना समय होता है कि वे प्रशासनिक कार्यों में गंभीरतापूर्वक रूचि ले सकें और ना ही वे इतने कुशल होते हैं कि प्रशासन की प्रत्येक गतिविधियों को सूक्ष्मता से समझ सकें। अतः लोक सेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्य का पालन निष्पक्ष भावना से इमानदारी पूर्वक करते हुए राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रियों को अच्छी से अच्छी सलाह देंगे। इस संबंध में ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैबरलेन का कथन है कि “संभवतः लोक सेवक मंत्रिमंडल के सदस्यों के बिना कार्य कर सकते हैं किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मंत्रिमंडल के सदस्य बिना लोक सेवकों के कार्य नहीं कर सकते हैं।” सर जोसिया स्टाम्प ने भी इस संदर्भ में अपना मत देते हुए कहा कि “मैं इस बात के बारे में स्पष्ट हूँ कि, कर्मचारियों को नए समाज का स्रोत होना चाहिए तथा प्रत्येक

अवस्था में उन्हें सुझाव तथा परामर्श देना चाहिए।” वस्तुतः एक कुशल मंत्री हमेशा अपने अधिकारियों की सलाह पर ही काम करता है और उनके द्वारा प्रस्तुत कागजातों पर हस्ताक्षर कर देता है।

2. **सरकारी नीतियों को क्रियान्वित करना-** राजनीतिक कार्यपालिका या व्यवस्थापिका लोक सेवकों के सहयोग और परामर्श से राष्ट्र के लिए योजनाओं और नीतियों का निर्माण करती है। लोक सेवक का कार्य इन नीतियों और योजनाओं के निर्माण में ना केवल सहायता प्रदान करना होता है, बल्कि उन नीतियों की क्रियाविधि भी लोक सेवकों का भी उत्तर दायित्व होता है। लोक सेवक द्वारा प्रदत्त विभिन्न प्रकार के आंकड़े और सूचनाएं, प्रस्तावित कार्य का प्रारूप तैयार करने तथा योजना मद में लगने वाले अनुमानित उपकरणों की जानकारी विभागीय मंत्री को देते हैं। इस जानकारी के आधार पर ही जब योजनाएं और कार्यक्रम बनकर तैयार हो जाते हैं तो सरकार द्वारा निर्धारित उन कार्यक्रमों, योजनाओं और नीतियों का क्रियान्वयन लोक सेवा के सदस्यों को करना पड़ता है।
3. **जनता की सेवा करना-** लोक सेवा का प्रमुख उद्देश्य आम जनता की सेवा करना है। आज के आधुनिक प्रशासन में सरकार का प्रयास यही रहता है कि आम नागरिकों को अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास भी किया जाए। इसके लिए लोकसेवा को स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का प्रबंध, शिक्षा तथा रोजगार का प्रबंध, सड़क निर्माण, भवन निर्माण, स्टेडियम निर्माण आदि से संबंधित भूमिकाओं का भी निर्वाह करना पड़ता है। नागरिकों के जीवन यापन से संबंधित आवश्यक वस्तुओं को भी उपलब्ध कराना पड़ता है। इन सब कार्यों को पूरा करने के लिए योग्य, कौशल एवं कर्मठ कर्मचारियों का होना अत्यधिक आवश्यक होता है। वस्तुतः लोक सेवक के कंधों पर ही प्रत्यक्ष रूप से लोक कल्याण संबंधी योजनाओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व जाता है।
4. **प्रत्यायोजित विधि निर्माण-** व्यवस्थापिका का मुख्य कार्यविधि का निर्माण होता है। कई बार कार्य के बोझ तले दबे होने के कारण विधायिका अनेक विषयों में विधि का केवल ढांचा ही तैयार कर पाती है। उन विधियों को सुख में तथा व्यापक रूपरेखा बनाने राजनीतिक कार्यपालिका ओ सहायता उपलब्ध कराने की भूमिका भी लोक सेवकों के द्वारा ही निभाई जाती है। इस व्यवस्था को प्रदत्त व्यवस्थापन कहा जाता है। इसके अंतर्गत समस्त नियम और नियमों का निर्माण प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा ही किया जाता है।
5. **बदलते परिवेश के साथ सामंजस्य बैठाना-** आधुनिक युग में लोक सेवाओं की भूमिका भीतर तथा बाहर प्रौद्योगिकी, विज्ञान एवं औद्योगिकरण के बढ़ते हुए प्रभाव ने लोक सेवकों की भूमिकाओं में एक नया आयाम जोड़ दिया है। आधुनिक प्रकार की वैज्ञानिक प्रगति ने लोक सेवकों के समक्ष अनेक नई नई चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। आज इस बदलते परिवेश में सामाजिक समस्याओं का स्वरूप बदल गया है, जिनके समाधान के लिए लोक सेवकों को विशेष दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। साथ ही लोक सेवा के क्षेत्र में भी कंप्यूटर तथा आधुनिक तकनीकों की आवश्यकता पड़ने लगी है जिसके कारण लोक सेवा में भी विशेषज्ञता का प्रसार हो रहा है। इन नई चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशासन को आधुनिक तकनीकी का प्रशिक्षण तथा कंप्यूटर का ज्ञान अपने सेवी वर्ग को कराना पड़ता है। आज लोक सेवा को पर्यावरण तथा प्रदूषण जैसी समस्याओं के समाधान में भी अपनी भूमिका का निर्वाहन करना पड़ रहा है जो पहले इतना अधिक नहीं हुआ करती थी।
6. **सामाजिक न्याय और समता की स्थापना-** विकासशील देशों की सामाजिक संरचना अत्यधिक जटिल, भेदभावपूर्ण तथा विविध संस्कृतियों से युक्त होती है। अतः इन देशों की सामाजिक संरचना में सामाजिक न्याय तथा समानता की प्राप्ति करना और लोगों को शोषण से मुक्ति दिलवाना एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय कार्य माना जाता है। यह संविधान अपने समस्त नागरिकों को समानता तथा न्याय का मूल

- अधिकार प्रदान करता है। नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से पिछड़े, असहाय, गरीब, महिला, वृद्ध, विकलांग तथा अल्पसंख्यक नागरिकों की सुरक्षा विकास और कल्याण की जिम्मेदारी भी सरकार को सौंपी गई है।
7. **सामाजिक-आर्थिक विकास को गति प्रदान करना-** काशी देशों की अर्थव्यवस्था विकसित देशों की तुलना में पिछड़ी हुई तथा विसंगतियों से परिपूर्ण होती है। अर्थव्यवस्था में सुधार या गति लाने हेतु स्वतंत्रता के समय भारत में विकसित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाया गया था जो अब निजीकरण की ओर अग्रसर है किंतु लोक उद्यमों की भूमिका अभी भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। पूर्व के अनुभव यही सिद्ध करते हैं कि समाजवादी तथा विकासशील देशों में लोक सेवाएं आर्थिक विकास को सार्थक गति प्रदान करती रही है। वस्तुतः आर्थिक विकास तथा सामाजिक विकास दोनों प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है। एक के बिना दूसरे की प्रगति कठिन है। लोक सेवाएं इन दोनों क्षेत्रों में ही सुधार और विकास के लिए प्रतिबद्ध और प्रयासरत है।
  8. **लोक कल्याणकारी राज्य की लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक-** आधुनिक युग में सभी प्रकार की सरकारों का एकमात्र कर्तव्य लोक कल्याण ही होता है। विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि नव स्वतंत्र देश विकास की दौड़ में विकसित देशों से बहुत पीछे हैं तथा यहां पर लोक कल्याण की मूलभूत सेवाएं संपादित करने का संपूर्ण उत्तरदायित्व शासन का होता है। चिकित्सा, स्वास्थ्य, आवास, भोजन, पेयजल, शिक्षा तथा रोजगार जैसी न्यूनतम आवश्यकताएं को सामाजिक सेवाओं के रूप में प्रशासन द्वारा प्रदान किया जाता है।
  9. **राष्ट्रीय एकता में सहायक-** भारत तथा भारत जैसे ही विकासशील देशों में क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद तथा सांप्रदायिकता की सामाजिक समस्याएं विद्यमान है। इन समस्याओं की तीव्रता को कम करने में लोक सेवकों की दोहरी भूमिका होती है। एक और दो लोक सेवाएं तटस्थता तथा समानता के आधार पर काम करती हैं वहीं दूसरी ओर इन सेवाओं की प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय स्तर का है। अखिल भारतीय सेवाओं का अधिकारी एक राज्य का अनुभव दूसरे राज्य के अधिकारियों में बांटता है अथवा केंद्रीय सेवाओं का अधिकारी समस्त भारत की संस्कृति एवं तदनुकूल परिस्थितियों से अवगत होता है। लोक सेवाओं की यह प्रकृति लोक सेवकों में संकीर्णता त्याग कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता प्रदान करती है। लोक सेवाओं में सभी जाति, वर्गों, भाषाओं, क्षेत्रों तथा संप्रदायों के कार्मिक कार्य करते हैं जो राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं।
  10. **आजीविका का माध्यम-** सरकारी कार्यों की पूर्ति के निमित्त विशाल संख्या में विशिष्ट योग्यता धारी लोक सेवकों की आवश्यकता होती है। लोक कल्याणकारी राज्य के उत्तरदायित्व भी चहुँमुखी होते हैं। अतः लोक सेवाओं के माध्यम से जहां एक ओर सरकार जन कल्याण के कार्य संपादित करवाती है वहीं दूसरी ओर इन लोक सेवक सेवाओं में भारी संख्या में युवक और युवतियों को रोजगार भी दे सकती है। विकासशील देशों में सरकारी नौकरियों के प्रति विशेष रुझान पाया जाता है क्योंकि इन देशों में अधिकांश कार्य सरकारों द्वारा ही संपादित किए जाते हैं। अतः सरकार एक बड़ी नियोक्ता के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं।
  11. **लोकतंत्र एवं सभ्यता की संरक्षक-** वर्तमान राज्य लोक सेवाओं पर अत्यधिक निर्भर है इसी कारण इसे प्रशासकीय राज्य के रूप में भी जाना जाता है। राजनीतिक स्तर पर जनसाधारण की सहभागिता सुनिश्चित करने, सामाजिक चेतना में अभिवृत्ति करने, विकास की गति को तेज ही प्रदान करने तथा आधुनिकता का परिवेश तैयार करने में लोक सेवकों की निर्णायक भूमिका है। अतः विकासशील देशों की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना संक्रमण काल से गुजरती है जहां पुराने और नए विचारों तथा

सभ्यताओं में द्वंद होता है। इस संक्रमण काल का कुशलतापूर्वक सामना करने तथा परिवर्तनों को मनोवांछित दिशा प्रदान करना लोक सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

## 2.9 निष्कर्ष

इस प्रकार आज लोक सेवा समाज की प्रगति और विकास का एक अविभाज्य आधार बन गई है। विकसित समाज की अपेक्षा विकासशील समाज की व्यवस्था में भिन्नता अधिक होती है। इन भिन्नताओं का मुख्य कारण जनसंख्या की बहुलता, विभिन्न संस्कृतियों, जिससे उस देश की राजनीतिक संस्कृति प्रतिबिंबित होती है, साथ ही प्रत्येक समाज और देश के ऐतिहासिक अनुभव भी होते हैं। विशेषताओं के आधार पर ही विकास ही समाज में लोक सेवकों को अपनी भूमिका अदा करनी होती है। दूसरे विश्व युद्ध के उपरांत एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देश विकासशील देशों की श्रेणी में आ जाने के कारण इस संक्रमणकारी समय में लोक सेवकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है। इन देशों में जहां नौकरशाही से जुड़े संगठन अल्पविकसित अवस्था में थे, वे अब निरंतर विकास की ओर अग्रसर हैं। सारांश अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कल्याणकारी शासन व्यवस्था में लोक सेवाएं एक महत्वपूर्ण निकाय हैं जो संपूर्ण विकास तंत्र का मुख्य आधार भी है।

### अभ्यास प्रश्न-

1. एल0डी0 व्हाइट ने अच्छे लोक प्रशासन के लिए किन तत्वों के संयोजन को आवश्यक बताया?
2. लोक सेवाओं का जन्म कब और कहां हुआ था?
3. विकसित देशों में लोक सेवाओं की कोई चार विशेषताएं बताइए।
4. आधुनिक लोक सेवा की कोई दो विशेषताएं बताइए।
5. लोक सेवक किसे कहा जाता है?

## 2.10 सारांश

लोकसेवा राज्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। आज लोक सेवा की सफलता पर राज्य के नागरिकों का सुख और प्रजातंत्र की सफलता निर्भर करती है। लोक सेवा के अभाव में ना तो सरकार अपना कार्य सफलतापूर्वक कर सकती है और ना ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास पूरा कर सकता है। लोक सेवाएं देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था एवं शांति प्रदान करती हैं। डॉक्टर हरमन फाइनर ने लोक सेवाओं को प्रशासन पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना है। लोक सेवाएं राजनीतिक सत्ता की नीतियों एवं कार्यक्रमों को न केवल निष्पादित करती हैं, बल्कि राजनीतिक सत्ता को आवश्यक सूचना तथा परामर्श भी उपलब्ध कराती हैं। नौकरशाही इनसे एकदम भिन्न अवधारणा है। लोकसेवा विकास प्रक्रिया का आंतरिक अंग है और इस दिशा में उसकी भूमिका अहम होती है। अब अधिक से अधिक देश, विशेषकर विकासशील देश, और संयुक्त राष्ट्र संघ, लोक सेवा को, राष्ट्र निर्माण और सामाजिक आर्थिक विकास में एक माध्यम के रूप में एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। आधुनिक समाजों में लोक सेवाएं राष्ट्र निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। लोक सेवाओं की निष्पादन क्षमता पर ही सामाजिक आर्थिक विकास की सफलता और असफलता निर्भर करती है।

## 2.11 शब्दावली

तटस्थ- परस्पर विरोधी पक्षों से अलग रहने वाला, आजीविका- रोजगार, विसंगति- समकालीन जीवन की वह स्थिति जहां प्रत्येक मूल्य या धारणा का उल्टा रूप दिखाई पड़ता है, प्रत्यायोजन- किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को विशिष्ट सत्ता एवं अधिकार प्रदान करना, सामंजस्य- अनुकूलता, उपयुक्तता

### 2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नेतृत्व, संगठन, वित्त, आदर्श विधियां एवं प्रक्रिया, मानव शक्ति। 2. ईसवी सन् 6 में चीन में हुआ था। 3. उत्तरदायित्व की भावना, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा से संबंधित, विशेषज्ञ सेवाओं को महत्व, कार्य निष्पादन मूल्यांकन व्यवस्था सुदृढ़ होती है। 4. प्रशिक्षित एवं कुशल कार्यकर्ता, वेतन भोगी कार्यकर्ता, तटस्थ एवं निष्पक्ष, पद सोपान का सिद्धांत। 5. राज्य के उत्तरदायित्व एवं कार्य को पूरा करने के लिए जिन स्थाई कर्मचारियों की सहायता ली जाती है, उन्हें “लोक सेवक” कहा जाता है।

### 2.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल, 1984. पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र, 2008. कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय, आशुतोष, 2009. कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

### 2.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016. भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

### 2.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा की आधुनिक प्रवृत्तियों पर एक निबंध लिखिए।
2. आधुनिक लोक सेवा की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विकासशील देशों में लोक सेवाओं की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. भारतीय संविधान में लोक सेवाओं के लिए किए गए संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

## इकाई- 3 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

### इकाई की संरचना

- 3.0 प्रस्तावना
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण
- 3.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान
- 3.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं
- 3.5 निष्कर्ष
- 3.6 सारांश
- 3.7 शब्दावली
- 3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
- 3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 3.11 निबंधात्मक प्रश्न

### 3.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की आवश्यकता पड़ती है। किसी संगठन में इन्हीं कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन के अंतर्गत किया जाता है। हम अब तक पढ़ चुके हैं कि कार्मिक प्रशासन का सामान्य अर्थ है लोक सेवकों की भर्ती, सेवा शर्तों आदि से संबंधित समस्याओं और उनके निराकरण का विज्ञान। लोक प्रशासन में कार्मिक प्रशासन का संबंध संगठन के मानवीय तत्वों से होता है। कार्मिक- प्रशासन एक ऐसी प्रशासनिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन और परिवर्तन किया जा सके। हरमन फाइनर के अनुसार “कार्मिक प्रशासन अधिकारियों की एक ऐसी पेशेवर इकाई है जो स्थाई वेतन भोगी और कार्य कुशल होती है। कल्याणकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि और प्रशासन की सफलता एक कुशल कार्मिक प्रशासन पर निर्भर करती है, यही कारण है कि कार्मिक प्रशासन का महत्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में प्रशासनिक प्रक्रिया और प्रशासन के संचालन में आम लोगों का पूरा ध्यान रखना पड़ता है वरना सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। निष्ठ और कुशल कार्मिक- प्रशासन की कमजोरियों और समस्याओं को दूर करने में सक्षम होते हैं, साथ ही प्रशासन के उद्देश्यों को पूरा करना आसान बना देते हैं। अतः लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आधुनिक समय में राज्य संबंधी दर्शन आ हस्तक्षेप नीति से अलग होकर सामाजिक कल्याण की नीति पर आधारित हो गया है और विकास के कार्यों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कार्यों को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी कार्मिक प्रशासन ने अपने कंधों पर ले लिया है।

### 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षणों को जान जाएंगे;
- भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधानों के बारे में जान जाएंगे;

- भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से समझ पाएंगे।

### 3.2 आदर्श कार्मिक प्रशासन के लक्षण

सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण के संबंध में कोई सामान्य करण नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। यदि एक सेवीवर्ग प्रशासन के लक्षण किसी देश विशेष में सफल तथा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं तो आवश्यक नहीं है कि अन्य देशों में भी यह उतने ही प्रभावशाली प्रमाणित होंगे। प्रत्येक देश की परिस्थितियां, वातावरण, समस्याएं तथा अपेक्षाएं होती हैं। इन को ध्यान में रखकर ही सेवीवर्ग प्रशासन के आदर्श लक्षण निर्धारित किए जाने चाहिए। लोक प्रशासन के विद्वानों ने आदर्श अथवा स्वस्थ सेवीवर्ग प्रशासन के आवश्यक लक्षणों के बारे में चिंतन करने के बाद मुख्यतः निम्नलिखित को महत्वपूर्ण माना है-

1. संगठन के लक्ष्य तथा उद्देश्यों की दृष्टि से उपयोगी एवं सार्थक प्रशासन होना आवश्यक है।
2. प्रशासन सदैव गत्यात्मक होना चाहिए ताकि समय, परिवर्तित परिस्थितियों एवं नई चुनौतियों के साथ स्वयं को ढाल सके। ऐसा करने से सेवीवर्ग के सभी सदस्य उत्साह के साथ काम करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।
3. इसमें कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की सापेक्षिक योग्यता एवं क्षमता होनी चाहिए जो लूट प्रणाली से प्रभावित ना हो।
4. इसमें आजीवन सेवाओं की व्यवस्था की जाती है, जिसमें कर्मचारियों को भविष्य के प्रति आशाएं रहती हैं अतः पदोन्नति के पर्याप्त पर्याप्त अवसर होने चाहिए।
5. सेवीवर्ग में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था की जानी चाहिए। सभी कर्मचारियों को उनके कर्तव्य तथा दायित्व स्पष्ट बता दिए जाने चाहिए तथा उच्च अधिकारी एवं अधीनस्थ अधिकारियों के साथ संबंध स्पष्ट कर देना चाहिए।
6. प्रशासन कर्मचारियों को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखने का प्रयास करता है। यह राजनीतिक तटस्थता इसलिए वांछनीय है क्योंकि राजनीतिक दल सत्ता में आते और जाते रहते हैं किंतु लोक सेवकों को इन परिवर्तनों से प्रभावित रहकर तटस्थ भाव से अपना कार्य करते रहना चाहिए।
7. प्रशासन में कर्मचारी अनाम रहकर कार्य करते हैं। उनके द्वारा संपन्न की जाने वाली सेवाओं में कर्ता का भाव नहीं रहता वरन सेवक का भाव रहता है। कर्ता के रूप में नाम राजनीतिज्ञ का होता है।
8. प्रशासन कर्मचारियों में ऐसे मूल्य स्थापित करता है ताकि वे जीवित व्यक्तियों के साथ एक जैसा व्यवहार कर सकें तथा किसी के भी साथ भेदभाव पूर्ण नीति ना अपनाए।
9. प्रशासन ने किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, जन्म स्थान, लिंग, धर्म और प्रजाति का भेदभाव किए बिना ही उसे अवसर की समानता प्रदान की जानी चाहिए। इससे सरकारी सेवाओं का आधार व्यापक होगा और इसकी विश्व सनीयता में भी वृद्धि होगी।
10. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन का निर्धारण करते समय इस तथ्य पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सरकारी सेवाओं पर समाज के उच्च वर्गों अभिजात वर्गों का ही प्रभुत्व नहीं रहे। समाज के जनसाधारण का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। अगर सरकारी सेवाओं में समाज के सभी वर्गों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया तो इससे ना केवल इसका सामाजिक आधार विस्तृत होगा बल्कि इससे समाज में अनुचित असंतोष भी उत्पन्न नहीं होगा।
11. सेवीवर्ग प्रशासन का संबंध सामान्य रूप में तीन वर्गों- जनता, सरकार तथा कार्मिकों से है। अतः इस बारे में प्रशासनिक संरचना निर्धारित करते समय इस तथ्य पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए कि इनमें

किसी प्रकार का असंतुलन उत्पन्न ना हो। इन तीनों में उचित और सही संतुलन स्थापित करके ही एक आदर्श प्रशासन को लागू किया जा सकता है।

### 3.3 भारत में कार्मिक प्रशासन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

जैसा कि आप जानते हैं कि भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहां सभी कार्य नियमानुसार किए जाते हैं। इसी प्रकार भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था भी संविधान के उपबंधों के अनुसार ही संचालित होती है क्योंकि संविधान ही किसी देश के शासन की मूल आत्मा है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दिन प्रतिदिन की गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, प्रक्रियाएं आदि विधिवत रूप से गठित की जाती हैं परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले कुछ संवैधानिक प्रावधान भी हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं पर चर्चा करने से पहले आइए हम कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने या निर्देशित करने वाले मुख्य संवैधानिक प्रावधानों की विस्तार में चर्चा करें-

1. अनुच्छेद- 53, भारतीय संविधान का अनुच्छेद- 53 यह प्रावधान करता है कि भारत सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्यवाही या राष्ट्रपति के नाम से ही सम्पादित की जाती है। इसी प्रकार अनुच्छेद- 166 यह प्रावधान करता है राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा अथवा उसके अधीन अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होंगी।
2. अनुच्छेद- 14, अनुच्छेद- 14 के अनुसार यह प्रावधान किया जाता है कि, भारत राज्य क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।
3. अनुच्छेद- 15(1), यह अनुच्छेद केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी भी आधार पर नागरिकों के विरुद्ध कोई विभेद करने से राज्य को निश्चित करता है।
4. अनुच्छेद- 16, यह उपबंधित करता है कि, राज्य के अधीन नौकरियों या पदों पर नियुक्ति के संबंध में सब नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।
  - राज्य को पूर्ण अधिकार देता है कि वह लोक सेवाओं के लिए आवश्यक अर्हताएं एवं मानदंडों को निर्धारित कर सकता है। राज्य द्वारा निर्धारित अर्हताओं में मानसिक योग्यता के अतिरिक्त शारीरिक योग्यता पुष्टि, अनुशासन, बौद्धिक स्तर और जनहित आदि भी सम्मिलित है। इसी प्रकार तकनीकी अर्हताएं भी निर्धारित की जा सकती है।
  - यह भी प्रावधान करता है कि राज्य, लोक सेवाओं में विभिन्न श्रेणियों की सृष्टि कर सकता है।
  - इस अनुच्छेद के अधीन राज्य, अनिवार्य सेवानिवृत्ति भी कर सकता है। अतः से न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।
  - अनुच्छेद- 16(1) के अनुसार, राज्य केवल प्रारंभिक नियुक्तियों के मामले में ही नहीं बल्कि पदोन्नति, पद मुक्ति, वेतन, अवकाश, ग्रेच्युटी, पेंशन और अधिवार्षिकी भत्ता इत्यादि पर भी नियम निर्धारित कर सकता है।
  - अनुच्छेद- 16(2) के अनुसार, 'वंशक्रम' तथा 'निवास स्थान' के आधार पर लोक सेवा में विभेद नहीं किया जा सकता है।
  - अनुच्छेद-16(3), अनुच्छेद-16(2) का अपवाद है कि "सरकार कुछ सेवाओं को केवल राज्य के निवासियों के लिए आरक्षित कर सकती है, बशर्ते कि इसके लिए उचित कारण हो तथा व्यवस्थापिका द्वारा अधिनियम पारित किया जाए।"

- अनुच्छेद- 16(4) राज्य को यह शक्ति देता है कि वह पिछड़ी जातियों के लिए, जिनको उसकी राय में लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका है, लोक पदों को आरक्षित कर सकता है। इसके लिए 2 शर्तें हैं- वर्ग पिछड़ा हो अर्थात् सामाजिक आर्थिक दृष्टि से तथा उससे राज्य के अधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल सका हो। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि केवल दूसरी शर्त एकमात्र कसौटी नहीं हो सकती।
- 5. अनुच्छेद- 19 (1) 'क' के अंतर्गत हड़ताल कोई मूल अधिकार नहीं है अतः किसी भी व्यक्ति को हड़ताल करने से रोका जा सकता है क्योंकि प्रदर्शन जब हड़ताल का रूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता है।
- 6. अनुच्छेद- 19(1) 'ग' भारत के समस्त नागरिकों को संस्थान या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है किंतु इस अनुच्छेद का खंड 4 राज्य को इस अधिकार पर लोक व्यवस्था या नैतिकता के हित में 'युक्ति युक्त प्रतिबंध' लगाने की शक्ति भी प्रदान करता है क्योंकि संघ बनाने के अधिकार में हड़ताल करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है।
- 7. अनुच्छेद- 23 (2) के अंतर्गत राज्य को सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अनिवार्य सेवाएं लागू करने की शक्ति प्राप्त है और राज्य ऐसे कार्यों को करने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि इस प्रकार की सार्वजनिक अनिवार्य सेवाओं को लागू करने में राज्य धर्म, वंश, जाति या वर्ग आदि के आधार पर विभेद ना करें।
- 8. अनुच्छेद- 38 एवं 39 के अनुसार न्याय का सामान वितरण अपेक्षित है। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए 'समान कार्य के लिए समान वेतन' एक नीति-निर्देशक तत्व है, मूल अधिकार नहीं है किंतु निश्चय ही यह एक संवैधानिक लक्ष्य है और यदि राज्य इस मामले में विभेद करता है तो न्यायालय इसका पालन कराने के लिए- अनुच्छेद- 32 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।
- 9. अनुच्छेद- 265, यह उपबंध करता है की विधि के प्राधिकार के कोई 'कर' अधिरोपित या संग्रहित नहीं किया जाएगा।
- 10. अनुच्छेद- 309, यह उपबंध करता है कि संसद तथा राज्य विधानमंडल संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए संज्ञा राज्य के कार्यों से संबद्ध लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा-शर्तों का विनियमन करेंगे।
- 11. अनुच्छेद -310, यह उपबंध करता है कि प्रत्येक व्यक्ति दूध संघ की प्रतिरक्षा सेवा या असैनिक सेवा या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन प्रतिरक्षा से संबंधित किसी पद को अथवा किसी और सैनिक पद को धारण करता है, राष्ट्रपति के 'प्रसादपर्यंत' पद धारण करता है। इसी तरह राज्य सेवाओं के सदस्य गण राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं किंतु इस नियम के अपवाद भी हैं। प्रसाद का सिद्धांत मूल अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता तथा अनुच्छेद-311 में विहित प्रक्रिया का पालन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह नियम उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय, नियंत्रक एवं महालेखा, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं होता है, क्योंकि यह पद राष्ट्रपति या राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पर निर्भर नहीं करते हैं।
- 12. अनुच्छेद- 311 के अंतर्गत लोक सेवकों को उनके पद से मनमाने ढंग से पदच्युत किए जाने के विरुद्ध अग्र लिखित संवैधानिक संरक्षण प्रदान किए गए हैं-
  - कोई भी लोकसेवक अपनी नियुक्ति करता से नीचे के किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा। अनुच्छेद-311(1)

- कोई भी व्यक्ति तब तक पदच्युत या पद से हटाया या पंक्तिच्युत नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे अपने विरुद्ध दोष आरोपों से अवगत ना करा दिया गया हो और उसके संबंध में सुनवाई का युक्ति युक्त अवसर ना दे दिया गया हो। अनुच्छेद-311(2) यह उपबंध सैनिक सेवाओं पर लागू नहीं होते हैं।
- 13. अनुच्छेद- 312, संसद को विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन करने की शक्ति प्रदान करता है। यदि राज्य सभा राष्ट्रहित में आवश्यक समझे तो सदन दो-तिहाई सदस्यों के बहुमत से संकल्प पारित कर ऐसी सेवाओं का सृजन कर सकती है।
- 14. अनुच्छेद- 312 (क), संविधान के 28 वें संशोधन अधिनियम, 1972 द्वारा जोड़ा गया है तथा अनुच्छेद-314 हटाया गया है जिसके अंतर्गत भारतीय सिविल सेवा(I.C.S.) में नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तें, पारिश्रमिक, अवकाश तथा पेंशन इत्यादि के बारे में विशेषाधिकार देय थे। यह अनुच्छेद संसद को उक्त सेवा में कार्यरत सदस्यों के विशेष अधिकारों को समाप्त करने की शक्ति प्रदान करता है, किंतु इसका प्रभाव उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों एवं मुख्य चुनाव आयुक्त पर लागू नहीं है।
- 15. अनुच्छेद- 315, संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग या दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग गठित करने का प्रावधान करता है।
- 16. अनुच्छेद- 323 (क), यह उपबंधित करता है कि संसद विधि द्वारा संघ या किसी राज्य या भारत राज्य के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व नियंत्रण में किसी निगम के कार्यों से संबंध लोक सेवाओं और पदों के लिए तथा उनकी सेवा शर्तों से संबंधित विवादों और परिवादों के न्याय- निर्णयन या विचारण के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना का उपबंध करेगी। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक अधिकरण(Tribunal) की स्थापना की जा सकती है।
- 17. अनुच्छेद- 343 में यह प्रावधान है कि, संघ की राजभाषा (Official Language) हिंदी और लिपि देवनागरी होगी किंतु संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा साथ ही राष्ट्रपति इस दिशा में अन्य आवश्यक प्रावधान भी कर सकेंगे।

उपरोक्त वर्णित संवैधानिक प्रावधान कार्मिक प्रशासन एवं लोक सेवाओं को प्रभावित करते हैं। परंतु साथ ही यह भी प्रावधान है कि परिवर्तित परिस्थितियों या नई आवश्यकताओं के अनुसार यदि चाहे तो व्यवस्थापिका भी इन प्रावधानों में परिवर्तन कर सकती है।

इस प्रकार आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि भारतीय संविधान में कार्मिक प्रशासन से संबंधित प्रावधान किए गए हैं। यह सभी प्रावधान भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार प्रदान करते हैं।

### 3.4 भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताएं

भारत में कार्मिक प्रशासन तथा लोक सेवाओं का जो स्वरूप वर्तमान में उपस्थित है, वह ब्रिटिश शासन की देन ही माना जाता है। वर्तमान में भारत सहित सभी लोक कल्याणकारी राज्यों में कार्मिक प्रशासन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता जा रहा है। कार्मिक प्रशासन की सफलता ही जन कल्याण की वृद्धि का आधार स्तंभ है। सेवीवर्ग उन व्यक्तियों का एक समूह है जो प्रशासन की विस्तृत क्रियाओं को अपनी क्षमता, योग्यता एवं स्थिति के अनुसार संपन्न करते हैं। अतः प्रशासन तंत्र को संचालित करने वाले इन व्यक्तियों अर्थात् कार्मिकों की यदि उपेक्षा की जाएगी तो समस्त प्रशासकीय व्यवस्था पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। कार्मिक प्रशासन ही वह केंद्र बिंदु है जिसके चारों ओर प्रशासन की विभिन्न समस्याएं छाई रहती हैं। प्रशासन की सफलता हेतु यह अत्यधिक

आवश्यक होता है कि प्रशासन में मानवीय पहलू और मानवीय संबंधों एवं व्यवहारों पर समुचित ध्यान एवं महत्व दिया जाए। मानवीय व्यवहार के द्वारा ही सेबी वर्ग की कार्य कुशलता में वृद्धि भी की जा सकती है तथा अयोग्य कर्मचारियों को भी कार्य करने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। वर्तमान संदर्भ में लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासनिक कार्यों का विस्तार दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। फलस्वरूप राज्य के बढ़ते हुए कार्यों को संपन्न करने हेतु एक बड़ी मात्रा में कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस की जाती है। वर्तमान लोक कल्याणकारी राज्य में प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रहती है तथा प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति से भी वर्ग रूपी बृहद मानव समूह के द्वारा ही की जाती है।

कर भी प्रशासन की इतनी बड़ी संख्या तथा इस वर्ग का इतना महत्व है कि हरमन फाइनर ने कहा कि “लोक प्रशासन में सभी वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।” कार्मिक प्रशासन में सभी वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा वर्गीकरण आदि सभी बातों का समावेश होता है। कार्मिक प्रशासन में वे सारी प्रक्रियाएं शामिल होती हैं जिनके द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति एवं रोजगार संबंधों का नियमन किया जाता है। इसके अतिरिक्त से विवाद के संबंध में एक उपयुक्त नीति को अपनाया जाना या निर्धारण किया जाना भी अत्यधिक आवश्यक होता है। यूं तो प्रत्येक संगठन के लिए एक अच्छी सेवीवर्ग नीति का होना आवश्यक होता है परंतु सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है। सेवीवर्ग से संबंधित उपयुक्त नीति को अपनाकर एक देश के प्रशासन को सार्थक, कार्य कुशल, उपयोगी, प्रभावशील, मितव्ययी और उत्तरदाई बनाया जा सकता है। परंतु इस संदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक है किसी भी वर्ग के संबंध में कोई एक ऐसी नीति निर्धारित नहीं की जा सकती है जो प्रत्येक देश में समान रूप से लागू की जा सके। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ, वातावरण, समस्याएं, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। इन सभी तरह की विविधताओं का ध्यान रखकर ही सेवी वर्ग नीति का निर्धारण किया जा सकता है। सेवीवर्ग या कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं में कार्मिकों से संबंधित उन सभी क्रियाओं को शामिल किया जा सकता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रशासन की कार्यकुशलता एवं उपयोगिता को प्रभावित करती हैं। लोक कार्मिक प्रशासन की कुछ ऐसी विशेषताएं भी होती हैं जो निजी प्रशासन से भिन्न होती हैं। सरकार अपने कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए लोक कार्मिक तंत्र पर निर्भर करती है। भारत में कार्मिक प्रशासन की विशेषताओं को हम विस्तृत रूप में निम्न बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

1. **ब्रिटिश काल का प्रभाव-** भारत में संपूर्ण अधिकारी तंत्र ब्रिटिश शासन से विरासत के रूप में प्राप्त किया गया है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत पर शासन करते समय अपने व्यापारिक हितों को पूरा करने के लिए एक सेवा संरचना का विकास किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के बाद 1858 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रशासन की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले ली थी। ऐसा करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का प्रमुख उद्देश्य भारत के संसाधनों का उपयोग स्वयं के हित में करना था। इस कार्य को संपन्न करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारत पर अपनी प्रशासनिक नियंत्रण को बहुत कठोर रखा। देश में आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण तथा विकास के लिए किसी भी प्रकार की गतिविधि का संचालन करने पर न्यूनतम ध्यान दिया। ब्रिटिश भारतीय लोक सेवा केवल अंग्रेजों के लिए खुली थी। इसमें भारतीयों का प्रवेश केवल प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुआ। अंग्रेज अधिकारी शासक होने के अहम तथा श्रेष्ठ गोरी नस्ल की उच्चता की भावना से पीड़ित थे। ऐसी नौकरशाही पूर्णतः सत्तावादी, एकीकृत, असंगठित, अन उत्तरदाई, स्वेच्छाचारी तथा अप्रजातांत्रिक थी तथा इसका लक्ष्य देश का आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, जनहित की उपलब्धि तथा जन सुविधाएं जुटाना नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नौकरशाही को परिवर्तित परिवेश में नया दृष्टिकोण अपनाकर अपनी कार्यशैली का निर्धारण करना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। वह आज भी अतीत की विरासत से ग्रस्त है।

2. **लोक कल्याणकारी स्वरूप-** स्वतंत्रता के पश्चात 1950 में जब हमारा अपना संविधान लागू हुआ तो उसके द्वारा हमारे देश के प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन लाने के लिए संविधान में प्रावधान किए गए। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासन को एक विकास तथा जन कल्याण उन्मुख प्रशासन में बदलना पड़ा। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के परिणाम स्वरूप अब देश में सेवीवर्ग प्रशासन के द्वारा लोक कल्याण से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करना पड़ता है। कार्मिक प्रशासन का लोक कल्याणकारी स्वरूप वर्तमान में भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता मानी जा सकती है।
3. **लोकतांत्रिक स्वरूप-** सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत पश्चात एक कुशल कार्मिक तंत्र की स्थापना करने में बहुत सारी बाधाएं विद्यमान थीं। परंतु 1950 में जब भारत का अपना संविधान लागू हुआ तो अतीत के अधिनायकवादी कार्मिक प्रशासन का स्थान कार्मिक प्रशासन के एक लोकतांत्रिक स्वरूप ने ले लिया। आज लोक कार्मिक प्रशासन बिना किसी भेदभाव के समाज के सभी वर्गों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। समाज के सभी वर्गों को समान रूप से सभी योजनाओं का लाभ मिले यही लोक कार्मिक प्रशासन का प्रथम प्रयास रहता है।
4. **सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति-** भारत में लोक कार्मिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सरकार के लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। सरकार के द्वारा जब लक्ष्यों का निर्धारण कर लिया जाता है तो उसके पश्चात लोक कार्मिक तंत्र का यह उद्देश्य होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित सभी लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों का कुशल क्रियान्वयन करें।
5. **प्रशासन का संवैधानिक आधार-** भारतीय लोक प्रशासन व्यवस्था संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही संचालित होती है। यद्यपि कार्मिक प्रशासन की दैनिक गतिविधियों को संचालित करने हेतु अनेक प्रकार के नियम, विनियमन तथा प्रक्रिया निर्धारित की जाती है परंतु फिर भी कार्मिक प्रशासन को प्रभावित करने वाले या निर्देशित करने वाले विभिन्न संवैधानिक प्रावधान भी किए गए हैं। भारत में लोक कार्मिक प्रशासन को इन्हीं संवैधानिक प्रावधानों के दायरे में रहते हुए ही अपनी गतिविधियों का संचालन करना पड़ता है।
6. **विकासोन्मुख-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन विकास से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियों का संचालन करता है। कार्मिक लोक प्रशासन का यह दायित्व होता है कि वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। यह तो आप सब को ज्ञात ही है कि कार्मिक लोक प्रशासन की उचित नीतियों के बिना किसी भी देश का विकास के तत्व को प्राप्त कर पाना लगभग असंभव सा ही होता है।
7. **योग्यता पर आधारित भर्ती-** कार्मिक प्रशासन की आधारभूत विशेषता भर्ती ही होती है। भर्ती से ही प्रशासनिक सेवाओं में पदों के रिक्त होने पर सामान्य नागरिकों द्वारा उनको भरे जाने के लिए आवेदन आमंत्रित किए जाते हैं। प्रत्येक पद के लिए एक निश्चित योग्यता पहले से ही निर्धारित कर दी जाती है तथा उसकी योग्यता की जांच हेतु प्रतियोगिता परीक्षाओं का आयोजन करवाया जाता है। इन प्रतियोगिता परीक्षाओं में जो भी प्रत्याशी सफल होते हैं उनको अंकों के आधार पर योग्यता सूची में शामिल किया जाता है और उसके बाद बहुत से पदों के लिए साक्षात्कार का भी प्रावधान होता है। साक्षात्कार के बाद सफल प्रत्याशियों को कुछ और औपचारिकताओं के बाद सेवी वर्ग में शामिल कर लिया जाता है। कार्मिक लोक प्रशासन कि यह महत्वपूर्ण विशेषता भी होती है और दायित्व भी होता है कि वह प्रशासन में भर्ती हेतु उचित व्यवस्था करें।

8. **अवसर की समानता-** प्रशासन में प्रवेश हेतु अवसर की समानता प्रदान करना भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण विशेषता है।  
भारतीय संविधान की धारा- 15(1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। इसकी धारा- 16(1) में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य के अधीन नौकरी और पदों के बारे में सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे। भारतीय लोक सेवाओं में प्रवेश अवसर की समानता हेतु संवैधानिक, संस्थागत, व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक सभी दृष्टियों से विभिन्न उपाय किए गए हैं। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी लोगों को प्रशासन में अवसर प्रदान करने हेतु उचित नीति का निर्माण किया जाता है।
9. **लोक सेवाओं का व्यापक आकार-** भारत में जनसंख्या वृद्धि एवं राज्य के दायित्व में वृद्धि के बाद लोक सेवकों की संख्या काफी बढ़ी है। केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर लोक सेवकों की संख्या में कमी नहीं आई है बल्कि इसमें दिनोंदिन बढ़ोतरी होती जा रही है। भारत में लोक सेवाओं के इस बड़े हुए आकार के लिए कई कारण उत्तरदाई हैं। जैसे- स्वतंत्रता के बाद देश में बहुत सारे नए मंत्रालय की स्थापना हुई तथा प्रायः सभी मंत्रालयों ने अपने व्यापक कार्यों एवं दायित्वों के निर्वाह के लिए अधिक लोक सेवकों की नियुक्ति की है। साथ ही साथ लोक सेवकों के कार्यों का समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है तथा कार्य के न्यूनतम मापदंड तय नहीं किए जा सके अतः लोक सेवकों की संख्या अनियंत्रित एवं असंगठित रूप से बढ़ती ही जा रही है। सरकारी नौकरी में सेवा की सुरक्षा और निश्चितता का होना तथा समाज में सरकारी नौकरी का बड़ा सम्मान होना भी भारत में लोक सेवाओं के व्यापक आकार लेने का प्रमुख उत्तरदाई कारण माना जाता है।
10. **आरक्षण की व्यवस्था-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन लोक सेवाओं में आरक्षण का भी प्रावधान करता है। भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के द्वारा सभी प्रकार के सरकारी संगठनों में कार्मिकों की भर्ती एवं पदोन्नति की प्रक्रिया में विशेष वर्गों के लिए आरक्षण का भी प्रावधान किया गया है।
11. **जनाकांक्षाओं का प्रतीक-** भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की ओर जनता का विशेष आकर्षण है। जनता अपनी सभी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु लोक कार्मिक प्रशासन की ओर ही देखती है। अतः भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की सबसे प्रमुख विशेषताओं में से ही एक विशेषता यह भी है कि यहां कार्मिक लोक प्रशासन जनाकांक्षाओं का प्रतीक होता है। सेवीवर्ग का यह एक प्रमुख दायित्व होता है कि वह जनता की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने सभी कार्यों का संपादन करें। कार्मिकों का सदैव यही प्रयास रहता है कि जनता की समस्त आवश्यकता और प्रशासन से उनकी आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यों का सकारात्मक रूप से संपादन करते हुए सरकार के समस्त लक्ष्यों को प्राप्त करें। ऐसा करने से ना केवल सरकार के लक्ष्यों की प्राप्ति साधारण एवं सरल तरीके से हो सकती है वरन जनता द्वारा प्रशासन से की गई सभी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाती है।
12. **भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता की समस्या-** भारतीय कार्मिक लोक प्रशासन भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता से ग्रसित है। भारतीय लोक सेवा के अधिकांश सदस्य धनी बनने की अभिलाषा से अपनी सत्ता एवं पद का निजी हित के लिए दुरुपयोग करने लगते हैं। उनकी सारी नीतियां और नीतियां संपन्न वर्ग के हितों की रक्षा का काम करती हैं। यह इनकी महत्वाकांक्षाएं इन्हें कार्यकुशलता की ओर प्रेरित करने की अपेक्षा उन्नति के भ्रष्ट तरीके अपनाने को प्रेरित करती है प्रेरित करती है। यह धन दौलत एवं प्रतिष्ठा तथा शक्ति की दौड़ में शामिल हो जाते हैं। इनका पूरा दृष्टिकोण ही बदल जाता है। ये स्वयं को जनसेवक मानने की अपेक्षा जनता को अपना सेवक मानने लगते हैं।

- 13. सामान्यज्ञों का वर्चस्व-** भारतीय लोक सेवा में सामान्य के प्रशासकों का वर्चस्व है। अखिल भारतीय तथा राज्यों के लोक सेवा, दोनों पर ही यह बात समान रूप से लागू होती है। विशेषज्ञों को सामान्य यज्ञ के नेतृत्व और नियंत्रण में रहकर कार्य करना होता है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से विशेषज्ञ प्रशासकों का भी महत्व बढ़ता जा रहा है, फिर भी भारतीय लोक सेवाओं से सामान्यज्ञ प्रशासकों के वर्चस्व को तोड़ने में काफी समय लगेगा।
- 14. विधि के शासन पर आधारित-** भारतीय लोक सेवाएं विधि के शासन पर आधारित हैं। इसके द्वारा सारे कार्य विधि या कानून के अनुरूप ही संपादित किए जाते हैं। कोई भी अधिकारी या कर्मचारी ना तो विधि के शासन से ऊपर है और ना ही अपनी कार्य पद्धति में विधि के शासन की अवहेलना कर सकता है।
- 15. सकारात्मक प्रवृत्ति-** भारतीय लोक सेवाओं की नकारात्मक प्रवृत्ति पर बहुत कुछ कहा जाता है, लेकिन इसका मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि भारतीय लोक सेवाओं की कोई सकारात्मक प्रकृति नहीं है। भारतीय लोक सेवाओं में योग्यता, कुशलता, संविधान के प्रति प्रतिबद्धता, राजनीतिक नेतृत्व द्वारा लिए गए निर्णय को क्रियान्वित करने की क्षमता, विधि के शासन का अनुशीलन, अनुशासन तथा परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने की क्षमता जैसे गुण भी विद्यमान हैं। यह सब गुण ही लोक सेवाओं की क्षमता है।
- 16. सेवाकाल की सुरक्षा-** भारतीय संविधान की धारा- 309 केंद्रीय संस्था राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को उनके क्षेत्र में लोक सेवाओं की नियुक्ति तथा सेवा शर्तों के नियमन का अधिकार देती है। धारा- 310 में उल्लेख है कि लोक सेवा के कर्मचारी केंद्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपालों के प्रसादपर्यंत ही अपने पद पर कार्य करेंगे। इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल स्वेच्छा पूर्वक कभी भी किसी अधिकारी को उसके पद से हटा देंगे। संविधान में लोक सेवकों की सेवा सुरक्षा के लिए भी उपयुक्त व्यवस्था की गई है। धारा- 311 के अनुसार लोक सेवा के किसी भी सदस्य को उसके नियुक्त करने वाले अधिकारी द्वारा नहीं हटाया जा सकता। किसी भी कर्मचारी को हटाने अथवा पदावनत करने से पूर्व उसे अपने पक्ष में सफाई देने का पूरा अवसर दिया जाएगा।
- 17. राजनीतिक हस्तक्षेप-** भारत में कार्मिक प्रशासन राजनीति के शिकंजे से ग्रस्त है। मंत्रियों और सांसदों तथा विधायकों द्वारा से भी वर्ग की भर्ती, पदोन्नति, अनुशासन, स्थानांतरण आदि पर अनुचित दबाव डाला जाता है। इस बात का कर्मचारियों की कार्यकुशलता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यही नहीं राजनीतिक स्वार्थ के लिए प्रशासनिक नियमों में भी बदलाव कर दिए जाते हैं। राजनीतिक हस्तक्षेप और पक्षपात संगठन के कुछ सदस्यों को लापरवाह बना देता है।
- 18. समुचित कार्मिक नीति का अभाव-** मैक्स वेबर के अनुसार एक आदर्श सेवी वर्ग नीति वह होती है, जिसमें सभी कर्मचारियों के कर्तव्य निर्धारित कर उन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए उन्हें पर्याप्त सत्ता सौंपी जाए तथा कार्य की एक उचित पद्धति एवं व्यवस्था भी निर्धारित की जाए। उपयुक्त सेवी वर्ग प्रशासन की नीति प्रत्येक शासन व्यवस्था की एक वांछनीय विशेषता होती है। निजी संगठनों की अपेक्षा सरकारी संगठनों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव अधिक होता है। इसकी सहायता से ही एक देश के प्रशासन को सार्थक, उपयोगी, कार्य कुशल, प्रभावशाली, मितव्ययी तथा उत्तरदाई बनाया जा सकता है।

भारतीय नौकरशाही के विरुद्ध की गई सारी बुराइयों और नकारात्मक सोच की वास्तविक जड़ें सेवीवर्ग प्रशासन की दोषपूर्ण नीति होती है। अधिकारियों का असहायपूर्ण दृष्टिकोण, कार्य संपन्नता में अनावश्यक देरी, भ्रष्टाचार, आवश्यक वस्तुओं की अनुपलब्धि, जनसाधारण को सेवाएं प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा अवहेलना, भाई-भतीजावाद और पक्षपात का प्रभाव, जनता की शिकायतें सुनने और उनका निवारण करने की पर्याप्त व्यवस्था आदि का दोष किसी ना किसी रूप में सेवीवर्ग प्रशासन की समुचित कार्मिक नीति के अभाव की परिचायक हैं।

### 3.5 निष्कर्ष

लोक नीति के रूप में अभिव्यक्त राज्य की इच्छाओं को कार्य रूप प्रदान करने का प्रमुख साधन कार्मिक प्रशासन ही है। आदर्श कार्मिक प्रशासन में स्पष्ट पदसोपान की व्यवस्था होनी चाहिए, योग्यता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए, व्यक्ति के साथ जाति, जन्म स्थान, लिंग, धर्म, और प्रजाति के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव ना करते हुए अवसर की समानता प्रदान करनी चाहिए। भारत में संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को भी प्रभावित करते हैं तथा एक आधार भी प्रदान करते हैं। भारतीय लोक कार्मिक प्रशासन पर ब्रिटिश काल का प्रभाव, प्रशासन का लोक कल्याणकारी तथा लोकतांत्रिक स्वरूप, प्रशासन का संवैधानिक आधार, योग्यता पर आधारित भर्ती, अवसर की समानता, विकासोन्मुख प्रशासन, आरक्षण की व्यवस्था लोक सेवाओं का व्यापक आकार, भ्रष्टाचार की समस्या आदि प्रमुख विशेषताएं पाई जाती हैं।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. आदर्श कार्मिक प्रशासन के कोई दो लक्षण बताइए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की कोई दो विशेषताएं बताइए।
3. संविधान का अनुच्छेद-166 क्या प्रावधान करता है?
4. विकासोन्मुख प्रशासन की अवधारणा क्या है?
5. भारतीय संविधान की कौन सी धारा में अवसर की समानता के बारे में बताया गया है?

### 3.6 सारांश

इस अध्याय में भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं को विस्तार से जानने के बाद यह कहा जा सकता है की देवी वर्ग प्रशासन के लक्षण के संदर्भ में कोई सामान्य नियम नहीं बनाए जा सकते हैं। कोई भी प्रशासनिक तंत्र तब तक भली-भांति काम नहीं कर सकता है जब तक कि उसमें काम करने वाले व्यक्ति स्वयं कुशल और इमानदार ना हो। इसके साथ-साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि सेवा में प्रवेश करने वाले कार्मिकों की भर्ती का तरीका उपयुक्त होना चाहिए एवं पदोन्नति तथा प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था के साथ-साथ उन्हें अन्य लाभ भी प्रदान किए जाने चाहिए। लोक कार्मिक तंत्र के कुछ विशेष लक्षण ही इन्हें निजी संगठनों में मौजूद कार्मिक व्यवस्था से प्रथक करते हैं। विकास तथा जन कल्याण के बढ़ते हुए कार्यों से लोग कार्मिक तंत्र के समक्ष कई नवीन चुनौतियां सामने आ रही हैं। वर्तमान व्यवस्था को हमने ब्रिटिश शासन से विरासत में प्राप्त किया है। ब्रिटिश काल से प्राप्त कई विशेषताओं एवं कार्यों का अब कोई महत्व नहीं रह गया है, अतः उन को बदलने की आवश्यकता है। जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं तथा कर्मचारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन तथा विकासात्मक गतिविधियों पर अधिक जोर होने के कारण प्रशासनिक तंत्र में व्यापक फेरबदल की आवश्यकता है।

### 3.7 शब्दावली

अकर्मण्यता- निकम्मापन, आलस्य, सामान्यज्ञ- व्यापक सामान्य ज्ञान वाला व्यक्ति, विकासोन्मुख- किसी विशेष दिशा या स्थिति की ओर जाता हुआ, परिवाद- शिकायत, पारिश्रमिक- वह धन जो किसी को किसी परिश्रम को करने के बाद पारितोषिक के रूप में दिया जाता है

### 3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कर्मचारियों की भर्ती का आधार प्रत्याशियों की शैक्षिक योग्यता, स्पष्ट की व्यवस्था।
2. लोक कल्याणकारी स्वरूप, अवसर की समानता।
3. राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका शक्तियां राज्यपाल के द्वारा उसके अधीन

अधिकारियों के द्वारा ही संपादित होंगी। 4. कार्मिक लोक प्रशासन सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन करते हुए विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करें। 5. भारतीय संविधान की धारा- 15(1), 16(1)

### 3.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, वी. एम. 1986. पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन :कंसेप्ट एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
2. गोयल, एस. एल. 1984. पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999. लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र, 2008. कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006. लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, प्रभुदत्त, 2011. प्रशासनिक सिद्धांत; कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
7. पाण्डेय, आशुतोष, 2009 . कार्मिक प्रशासन; विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

### 3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, एल. पी. 1987. पब्लिक परसोनेल सिस्टम इन इंडिया; अनमोल: नई दिल्ली।
2. माहेश्वरी, एस.आर. एंड ए. अवस्थी, 1987. पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल: आगरा।

### 3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदर्श सेवीवर्ग प्रशासन की लक्षणों की विवेचना कीजिए।
2. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. भारत में कार्मिक लोक प्रशासन के संदर्भ में किए गए संवैधानिक प्रावधानों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

## इकाई- 4 कार्मिक प्रशासन के कार्य एवं महत्व

### इकाई की संरचना

- 4.0 प्रस्तावना
- 4.1 उद्देश्य
- 4.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य
- 4.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य
- 4.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व
- 4.5 निष्कर्ष
- 4.6 सारांश
- 4.7 शब्दावली
- 4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
- 4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

### 4.0 प्रस्तावना

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा ही होगा कि कार्मिक प्रशासन को सेवी वर्गीय या स्टाफ प्रबंध या जनशक्ति प्रबंध के नाम से भी जाना जाता है। साधारण शब्दों में कार्मिक प्रशासन समग्र प्रबंध या प्रशासन का वह भाग होता है जो कार्यरत कर्मचारियों अर्थात् कार्मिकों तथा संगठन के भीतर के संबंधों से जुड़ा होता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यों को करता है। यदि यह कहा जाए कि किसी भी संगठन की सफलता उसके कार्मिक तंत्र की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पिछले अध्याय के अध्ययन से आप यह तो जान ही गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में कार्मिकों से संबंधित विभिन्न तत्व सम्मिलित होते हैं, जैसे- कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, अनुशासन, कार्य दशाएं आदि। अब इस इकाई के अंतर्गत हम कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों तथा कार्मिक प्रशासन के महत्व के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

### 4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को जान पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों जैसे मानव शक्ति प्रबंधन, भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, मनोबल, कर्मचारी कल्याण आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे।
- कार्मिक प्रशासन के महत्व को भली प्रकार से बिंदुवार जान पाएंगे।

### 4.2 कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य

कार्मिक प्रशासन प्रशासनिक संगठनों में काम करने वाले लोगों अर्थात् मानवीय तत्वों से संबंधित होता है। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्मिक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को संगठन में ना केवल लाने, बल्कि उन्हें संगठन में बनाए रखने तथा उनके व्यक्तिगत और सामूहिक विकास से संबंधित कार्य

को संपादित करने के लिए भी प्रमुख रूप से उत्तरदाई होता है। कर्मचारियों की संतुष्टि के स्तर को बनाए रखना और कर्मचारियों की क्षमता, इच्छाओं तथा संतुष्टि को समझते हुए अन्य संसाधनों का सदुपयोग निश्चित करना भी कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य ही होता है। संगठनात्मक विकास के लिए कार्मिक प्रशासन की प्रक्रिया का निरंतर चलते रहना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन ही समग्र प्रशासन का वह महत्वपूर्ण भाग होता है जो कार्मिक मामलों से संबंधित होता है।

पिछले अध्याय में कार्मिक प्रशासन की प्रकृति और क्षेत्र को विस्तार से पढ़ने के बाद आप इसके महत्व बल्कि इसके विस्तृत कार्यों को भी आसानी से समझ सकते हैं। कार्मिक प्रशासन का विस्तृत क्षेत्र ही इसके विविध कार्यों की ओर संकेत देता है। किसी भी संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्मिक प्रशासन की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है। कार्मिक प्रशासन ही संगठन का वह भाग होता है जो कार्मिकों से संबंधित सभी कार्यों का संपादन करता है। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कार्यों को समझने से पहले आइए इसके उद्देश्यों पर एक दृष्टि डालें ताकि कार्मिक प्रशासन के कार्यों को समझने में सुविधा हो। कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को निम्न बिंदुओं के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है-

1. किसी भी संगठन के कार्मिकों से संबंधित नीति एवं योजना का निर्माण कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण उद्देश्य होता है।
2. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण।
3. कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य।
4. परिवर्तित परिवेश में कार्मिक नीतियों का पुनरीक्षण करना।
5. कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना।
6. संगठन में कार्यकुशलता को बढ़ाना।
7. संगठन में अनुशासन को बनाए रखने के प्रयास करना।
8. कार्मिकों के लिए सेवा की संतोषजनक सेवा शर्तों का निर्माण करना।
9. योग्य और कुशल कार्मिकों को संगठन की ओर आकर्षित करना।
10. गतिशील और परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य की क्षमता को विकसित करना।
11. संगठन की प्रतिष्ठा को बढ़ाने हेतु प्रयास करना।
12. कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण की व्यवस्था करना।
13. संगठन में अनुसंधान को बढ़ावा देना।
14. संगठन में कुशलता तथा विकास की वृद्धि हेतु प्रयास करना।

उपरोक्त बिंदुओं के द्वारा दर्शाए गए समस्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्मिक प्रशासन नियंत्रण प्रयत्नशील रहता है। कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्यों की एक लंबी सूची होती है जिनके आधार पर कार्मिक प्रशासन विविध कार्यों का संपादन करता है। इसी आधार पर, आइए अब कार्मिक प्रशासन के कार्यों को भी बिंदुओं के आधार पर समझे।

#### 4.3 कार्मिक प्रशासन के कार्य

कार्मिक प्रशासन के उपरोक्त वर्णित सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु किए जाने वाले सभी प्रयास कार्मिक प्रशासन के कार्यों के अंतर्गत शामिल किए जा सकते हैं। कार्मिक प्रशासन द्वारा जितने प्रकार के कार्य किए जाते हैं वही उसका क्षेत्र भी बन जाता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों का निम्न बिंदुओं के आधार पर विस्तृत रूप से विवेचन किया जा सकता है-

1. **मानव शक्ति प्रबंधन-** औपचारिक तथा अनौपचारिक हर प्रकृति वाले संगठनों में मानव शक्ति की आवश्यकता अवश्यभावी है। सभी प्रकार के संगठनों के द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जितने भी कार्य संपादित किए जाने होते हैं उनको करने के लिए हर संगठन में मानव शक्ति सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। मानव शक्ति प्रबंधन से संबंधित प्रक्रिया कर्मचारियों के चयन की प्रक्रिया से पहले ही संपन्न की जाती है। मानव शक्ति प्रबंधन की प्रक्रिया के अंतर्गत संगठन में आवश्यक कर्मचारियों की संख्या से लेकर उनकी नियुक्ति प्रशिक्षण तथा पदोन्नति आदि से संबंधित सभी बातों का पूर्वानुमान लगाया जाता है।  
मानव शक्ति प्रबंधन के अंतर्गत संगठन में उपलब्ध रिक्त पद, उन पदों से संबंधित कार्य, भर्ती हेतु आवश्यक योग्यताएं एवं विशेषज्ञता, कार्य की प्रकृति और कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित सभी तथ्य सम्मिलित होते हैं।
2. **सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन-** व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत एवं कार्यपालिका अर्थात् सरकार द्वारा प्रसारित किए जाने वाले सभी आदेशों को कार्य रूप प्रदान करने का दायित्व कार्मिक प्रशासन का ही होता है। संगठन में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा अपने दायित्व का सही रूप में निर्वाह किया जा सके ऐसी परिस्थितियां कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही उपलब्ध कराई जाती हैं।
3. **सही स्थान पर सही व्यक्ति की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा इस बात का प्रबंध किया जाता है कि जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त है उसे उसी कार्य हेतु नियुक्त किया जाए। उदाहरण के तौर पर एक डॉक्टर की आवश्यकता के स्थान पर इंजीनियर को नियुक्त किया नहीं किया जा सकता है। क्षेत्रीय कार्यालयों में उत्तम कार्य को करने में सक्षम हो उन्हें यदि मुख्य कार्यालय में लगा दिया जाए तो उनके कार्यों की गुणवत्ता इतनी अच्छी नहीं होगी। अतः यह कार्मिक प्रशासन का ही कार्य होता है कि वे अपने संगठन में सभी कर्मचारियों के लिए ऐसी नीतियों का निर्माण करें जिससे प्रत्येक कर्मचारी अपनी रुचि और योग्यता के अनुरूप उचित पद पर नियुक्त किया जा सके। ऐसा करने से न केवल संगठन को मानव शक्ति का संपूर्ण योगदान मिलेगा वरन् कर्मचारी को भी अपने कार्य से पूर्ण संतुष्टि प्राप्त होगी जो किसी भी प्रकृति के संगठन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
4. **योग्य तथा कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति-** कार्मिक प्रशासन द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न प्रशासनिक पदों पर सबसे योग्य कर्मचारी की ही नियुक्ति की जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन में भर्ती हेतु वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है। नियुक्ति से पहले सभी प्रत्याशियों की योग्यता और क्षमताओं को वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा नापने का प्रयास किया जाता है। भर्ती में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने का लाभ यह होता है कि संगठन में भी कोई अयोग्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हो पाता है।
5. **प्रशिक्षण की व्यवस्था-** प्रशासन में पदाधिकारियों को परिवर्तित समय के साथ नए दायित्वों का निर्वाह करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा न केवल कर्मचारी की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है, बल्कि वह पदोन्नति के योग्य भी बन जाता है। प्रशिक्षण अप्रत्यक्ष रूप से लोक सेवाओं को आजीवन व्यवसाय बनाने में योगदान प्रदान करता है। इसी तथ्य के आधार पर कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में कुशल सेवीवर्ग की नियुक्ति के साथ-साथ इन नवनियुक्त तथा पूर्व में कार्यरत सभी कर्मचारियों के लिए प्रवेश पूर्व तथा प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाना भी कार्मिक प्रशासन के अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यों की श्रेणी में आता है।
6. **पदोन्नति-** किसी भी संगठन की सफलता का मूल सूत्र यही होता है उसमें कर्मचारियों को तरक्की के उचित अवसर प्रदान किए जाएं। प्रशिक्षण की भांति ही संगठनों में कार्मिकों की पदोन्नति के लिए भी

उचित सिद्धांतों का होना अत्यंत आवश्यक है। यह कार्मिक प्रशासन का ही दायित्व होता है कि वह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए विभिन्न सिद्धांत निर्धारित करें। पदोन्नति की उचित व्यवस्था ही एकमात्र ऐसा साधन होती है जिससे कर्मचारियों में अपने कार्य के प्रति रुचि और संगठन के प्रति कर्तव्य निष्ठा बनी रहती है। वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की पदोन्नति के उचित अवसरों का प्रबंध करना कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है।

7. **कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में सभी पदों के कार्यों की स्पष्ट परिभाषा की जाती है। ये कार्य व्यापक, व्यवस्थित एवं स्पष्ट होते हैं जिनके आधार पर ही कर्मचारियों के वेतन भी निर्धारित किए जाते हैं। कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण करके कार्मिक प्रशासन संगठन में अवांछित टकराव को भी रोकता है।
8. **कार्यों का मूल्यांकन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वर्गीकरण के साथ-साथ कार्मिकों की योग्यता के मूल्यांकन का अति आवश्यक कार्य भी संपादित किया जाता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संगठन में ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे प्रत्येक कार्मिक की योग्यता एवं प्रभावशीलता का सही एवं समय पर मूल्यांकन किया जा सके। ऐसी व्यवस्था को अपनाने से संगठन के योग्य तथा सक्षम कर्मचारियों को पहचान कर उनकी व्यक्तिगत योग्यता तथा क्षमताओं का श्रेष्ठतम उपयोग किया जा सकता है और कार्मिकों को संगठन में बने रहने के लिए प्रेरित भी किया जाता है।
9. **संतोषजनक सेवा शर्तें-** किसी भी संगठन में प्रवर्तित संतोषजनक सेवा शर्तें संगठन में योग्य कार्मिकों को आकर्षित करती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा लोक सेवकों के लिए कार्य की उपयुक्त शर्तों की व्यवस्था भी की जाती है, ताकि वह संतोष का अनुभव करते हुए अपने पद के दायित्व को पूरा कर सकें। सेवा शर्तों के अंतर्गत- पर्याप्त वेतन, कार्य के उपयुक्त घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, आकस्मिक संकट के समय सहायता, पदोन्नति लाभ तथा सेवानिवृत्ति लाभों का समुचित प्रबंधन किया जाता है। इन प्रयासों के माध्यम से संगठन में दक्ष कर्मचारियों को आकर्षित भी किया जाता है और यह भी प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक कर्मचारी की योग्यता और क्षमता का संगठन को पूरा लाभ प्राप्त हो।
10. **अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन-** प्रशासन का उद्देश्य अच्छे कार्य के लिए कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना होता है। प्रोत्साहन कर्मचारियों को संगठन में ईमानदारी तथा पूरी क्षमता के साथ काम करने के लिए प्रेरित करता है। इस उद्देश्य से कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के कार्यों पर एक दृष्टि रखी जाती है, समय-समय पर उनके कार्यों का मूल्यांकन किया जाता है और विशेष योग्य तथा कार्य कुशल कर्मचारियों को अतिरिक्त वेतन वृद्धि, पदोन्नति, विशेष सम्मान तथा कार्य कुशलता के प्रमाण पत्र आदि के रूप में पुरस्कृत किया जाता है। ऐसा करने से ना केवल अच्छा काम करने वाले कर्मचारियों को संतुष्टि की प्राप्ति होती है, बल्कि अन्य कर्मचारियों के लिए भी यह एक अभिप्रेरक के तौर पर कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा यह कार्य सजगता से संपन्न किया जाता है।
11. **प्रशासन में अनुशासन की स्थापना-** प्रशासनिक संगठनों के कर्मचारियों में पर्याप्त अनुशासन का होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि वांछनीय है। यदि संगठन में अनुशासन नहीं होगा तो कोई भी कर्मचारी अपने अपेक्षित कार्यों को संपन्न नहीं करेगा। ऐसा होने से संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल हो जाएगा। अतः कार्मिक प्रशासन द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक कर्मचारी अनुशासित रूप में अपना दायित्व पूरा करें तथा दूसरों के कार्यों में भी ना करें। अनुशासन के द्वारा ही कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में व्यवस्था की जाती है कि संगठन का कोई भी कर्मचारी संगठन के लक्ष्यों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करें तथा अपने साथी कर्मचारियों के साथ आवश्यक मानव संबंधों को भी बनाए रखें। यदि कोई कर्मचारी इन अपेक्षाओं की अवहेलना करके संगठन के अनुशासन को छोड़ता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध

अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है। यह अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रतिरोधात्मक और सुधारात्मक दोनों प्रकार की होती है।

12. **जन संतोष की उपलब्धि-** किसी भी संगठन की गतिविधियों के द्वारा जन संतोष की प्राप्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है। कार्मिक प्रशासन जन संतोष की उपलब्धि के लिए उन साधनों तथा मार्गों को अपनाता है जो सरकार द्वारा निर्धारित किए गए हैं। कार्मिक प्रशासन का यह भी दायित्व होता है कि वह ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिसमें सभी सरकारी कर्मचारी जनहित के कार्यों में लगे रहे तथा अपने आचरण से जनता में असंतोष पैदा ना होने दें। कर्मचारियों को सदा इस बात का ध्यान रखना होता है कि केवल अच्छे व्यक्ति या कार्यकर्ता का होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि दूसरों को अच्छा लगना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में जन सहयोग तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि जनता प्रशासनिक कार्यों के प्रति संतोष का अनुभव करती हो।
13. **उत्तरदायित्व की भावना-** लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में प्रशासन जनता के सेवक की भूमिका निभाता है। अतः लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रशासन के द्वारा सदा ऐसे कार्यों का संपादन किया जाता है जिससे उसके उन कार्यों में जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना परिलक्षित हो। इस कार्य के लिए कार्मिक प्रशासन द्वारा ही समुचित व्यवस्था की जाती है। कार्मिकों की भर्ती के समय यह ध्यान रखा जाता है कि ऐसे ही व्यक्तियों का चयन किया जाए जो जनता की सेवा करना चाहते हैं। ऐसे कर्मचारी जो अनुत्तरदायी रूप में अपनी शक्तियों का उपयोग करता है, उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की भी व्यवस्था कार्मिक प्रशासन द्वारा की जाती है। कर्मचारी के आचरण संहिता में इन सभी बातों का उल्लेख किया जाता है, जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सकें। देश की व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के द्वारा लोक सेवकों के कार्यों पर नियंत्रण रखा जाता है।
14. **गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य की क्षमता-** कार्मिक प्रशासन द्वारा संगठन में बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने के लिए उचित व्यवस्था करना अति आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाती है कि बदली हुई परिस्थितियों का सामना करने में प्रशासनिक संगठन पूरी तरह से सक्षम रह सके तथा असामयिक ना बन जाए। प्रशासन परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल कर ही अपनी गतिशीलता और वैधता बनाए रख सकता है।
15. **संगठन के सिद्धांतों का अनुशीलन-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा संगठन के आधारभूत सिद्धांतों जैसे कि पदसोपान, आदेश की एकता, नियंत्रण का क्षेत्र, संचार व्यवस्था, प्रत्यायोजन आदि का समुचित ध्यान रखा जाता है और इन सिद्धांतों के समुचित निर्वहन की दृष्टि से ही कार्मिक नीतियों को अपनाया जाता है।
16. **संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना-** कार्मिक प्रशासन के अन्य दायित्वों की भांति ही संतोषजनक संगठनात्मक संरचना की स्थापना करना भी उसका एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संतोषजनक संगठनात्मक संरचना ना केवल उसमें काम करने वाले कार्मिकों बल्कि जिन लोगों को वह संगठन सेवाएं प्रदान कर रहा है, संतोष प्रदान करती है।
17. **कर्मचारियों में संगठन के मूल लक्ष्यों के प्रति रुचि-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न आकर्षक कार्मिक नीतियों और कार्य के वातावरण का निर्माण किया जाता है, जिसके द्वारा संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों की अपने संगठन के मूल लक्ष्यों की प्राप्ति में रुचि जागृत की जा सके। ऐसा करने से संगठन सफलता प्राप्त करता है।
18. **कर्मचारियों में उच्च मनोबल तथा अभिप्रेरणा का निर्माण करना-** किसी भी प्रशासनिक संगठन में उद्देश्यों की प्राप्ति तथा गतिशीलता लाने के लिए ना केवल एक समुचित संरचना का होना आवश्यक है,

बल्कि उस संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों का मनोबल सदा उच्च बनाए रखना भी आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व होता है कि वह संगठन में काम करने वाले सभी कर्मचारियों को अभिप्रेरित रखें जिससे इस संगठन में पूरी कार्य कुशलता के साथ कार्य कर सकें।

19. **अभिलेख रखना-** कार्मिक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्यों में से कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखना भी एक माना जाता है। कार्मिक प्रशासन का उत्तरदायित्व होता है कि वह कर्मचारियों की सेवा के संबंध में विभिन्न प्रकार के अभिलेख रखता है, जिससे उनका कार्यकाल एवं वेतन क्रम, अवकाश, सेवानिवृत्ति तथा अन्य विषयों संबंधी आंकड़े आवश्यक कार्यवाही के समय आसानी से उपलब्ध रहें।
20. **श्रम संबंध-** कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों के साथ सह-वार्ताएं करता है, परिवेदना प्रक्रिया में भाग लेता है, परिवेदना के कारणों का पता लगाता है तथा शांति पूर्वक कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान भी कराता है। यह कर्मचारी संघों तथा संगठनों से वार्ता करने, नीतियों एवं योजनाओं के संबंध में सुझाव तथा सहयोग भी देता है।
21. **चिकित्सा संबंधी कार्य-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए चिकित्सा सेवाओं की दृष्टि से स्वास्थ्य स्तरों का निर्धारण, सफाई प्रबंधन, व्यवसाय चिकित्सा सेवा का प्रबंध आदि भी किया जाता है।
22. **सेवानिवृत्ति लाभ-** सेवा में नियुक्त सभी कर्मचारियों को सेवानिवृत्ति के समय समुचित लाभ प्रदान करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा उचित नीति का निर्माण किया जाता है। संगठन की तरफ योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को आकर्षित करने हेतु नियुक्ति एवं सेवानिवृत्ति लाभ दोनों से संबंधित आकर्षक नीतियां बहुत महत्व रखती हैं।
23. **कार्मिक नीति का मूल्यांकन-** संगठन में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों का मूल्यांकन कार्मिक प्रशासन के कार्य की सूची में शामिल होता है। इसके साथ ही कार्मिक प्रशासन के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह समय-समय पर अपनी कार्मिक नीति का भी मूल्यांकन करता रहे ताकि उसमें उत्पन्न दोष एवं कमियों को समय रहते दूर करके कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके।
24. **सेवी वर्ग सेवाएं-** कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के लिए अल्पाहारग्रह तथा अन्य मनोरंजन की सुविधाएं भी उपलब्ध कराई जाती है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही सभी कर्मचारियों को उनकी निजी समस्याओं में भी परामर्श दिया जाता है। ऐसा करने से कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के द्वारा आप यह भली-भांति समझ गए होंगे कि कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यों के अनुरूप तथा उनकी प्राप्ति हेतु ही कार्मिक प्रशासन कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन के कार्यों की उपरोक्त दी गई लंबी सूची के द्वारा आप को यह बताने का प्रयास किया गया है कि कार्मिक प्रशासन संगठन के कुशल संचालन हेतु सभी प्रकार की गतिविधियों के संचालन के लिए उत्तरदाई होता है। कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य होता है कि वह संगठन में कार्य की उचित दशाओं का निर्माण करें तथा कर्मचारियों का मनोबल भी उच्च बनाए रखें जिससे संगठन सफल हो सके।

#### 4.4 कार्मिक प्रशासन का महत्व

आधुनिक युग लोक कल्याणकारी राज्य का युग है। लोक कल्याणकारी राज्य पर लोक कल्याण अर्थात् जनकल्याण का उत्तरदायित्व होता है। यही कारण है कि आधुनिक समय में राज्यों का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। जैसा कि आप जानते हैं, राज्य द्वारा संकल्पित सभी कार्यों का संपादन कार्मिकों के द्वारा ही किया जाता है। अतः इन असीमित कार्यों के संपादन हेतु अप्रत्यक्ष रूप से कार्मिकों की संख्या में भी निरंतर वृद्धि होती जा रही है।

कार्मिकों के विस्तृत समूह को पूर्ण रूप से नियंत्रित रखने तथा उनसे आवश्यकता अनुसार कार्य करवाने हेतु कार्मिक प्रशासन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। कार्मिकों की संख्या अधिक है और वह बहुत महत्वपूर्ण भी है। इस बात को बताते हुए हरमन फाइनर ने कहा, “लोक प्रशासन में सेवीवर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है। सेवीवर्ग प्रशासन कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति, समन्वय तथा प्रत्यायोजन आदि व्यवस्थाओं का नियमन करता है तथा कर्मचारियों से अधिकतम एवं कुशलतम कार्य संपन्न कराने हेतु प्रयत्नशील रहता है। सेवीवर्ग प्रशासन संगठन के मानवीय तत्व को भी यथोचित महत्व देता है।”

कार्मिक प्रशासन के महत्व को समझने के लिए यही बात काफी है कि संगठन में कार्मिक स्थाई घटक होता है। कार्मिकों के बिना संगठन नहीं बन सकते हैं। यंत्र नए मंगवा सकते हैं, नई तकनीक अपनाई जा सकती है पर लोकतांत्रिक व्यवस्था में सारे कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिक नहीं लगाए जा सकते हैं। कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तकनीकी विशेषज्ञों को अतिरिक्त तौर पर बुलाया जा सकता है, परंतु सामान्य तौर पर इस काम को किया जाना बहुत मुश्किल है। निरंतर कार्मिकों को हटाकर नए कार्मिकों को नियुक्त करना यथार्थ से बहुत परे नजर आता है। अतः यह समझ लेना और जान लेना अब आसान हो जाता है कि यदि कार्मिक संगठन में इतना महत्व रखते हैं तो कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इसके समानांतर ही होता है।

आपने अब तक के अपने अध्ययन में जाना कि किस प्रकार कार्मिक प्रशासन की प्रकृति होती है, उसका क्षेत्र होता है, कुछ उद्देश्य होते हैं जिन की प्राप्ति के लिए ही कार्मिक प्रशासन के कार्य भी होते हैं। इस पूरे अध्ययन के बाद आपके लिए यह समझना ज्यादा मुश्किल नहीं होगा कि कार्मिक प्रशासन का महत्व भी उसके द्वारा संपादित कार्यों पर ही आधारित होता है। कार्मिक प्रशासन के महत्व को अग्रलिखित बिंदुओं के आधार पर और आसानी से समझा जा सकता है-

1. **योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन-** राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप में जनता के संपूर्ण कल्याण का उत्तरदायित्व प्रशासन पर ही होता है। प्रशासन के द्वारा जन कल्याण हेतु विभिन्न नीतियों का निर्धारण किया जाता है तथा विभिन्न प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जाता है। इन सभी प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों को कार्य रूप में परिणित करने का उत्तरदायित्व कार्मिकों पर होता है और इसमें कार्मिक प्रशासन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे-जैसे सरकार के द्वारा जनकल्याण के लिए नीतियों का निर्माण किया जाता है अप्रत्यक्ष रूप से देश की नौकरशाही पर नए दायित्व आ जाते हैं और परिवर्तित और नवीन दायित्व के अनुसार ही लोक सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, कार्य की शर्तें एवं अन्य सेवा शर्तों में भी आवश्यक परिवर्तन किया जाता है। इन सभी कार्यों को करने का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से कार्मिक प्रशासन का ही होता है।
2. **जनहित की भावना का विकास-** कार्मिक प्रशासन सदा लोक कल्याण हेतु प्रयत्नशील रहता है। इस कार्य के लिए वह सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों का ही पालन करता है। कार्मिक प्रशासन का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह कार्मिकों के लिए एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें जिससे सभी कर्मचारी जनहित के कार्यों में पूर्ण रूप से रुचि लेने लगे तथा अधिकतम मात्रा में जन संतोष उत्पन्न करने का प्रयास करें। कर्मचारियों में कार्मिक प्रशासन को यह भावना भी उत्पन्न करनी पड़ती है कि वह इस बात का ध्यान रखें कि केवल कुशलता पूर्वक कार्य करना ही उनकी सफलता का मापदंड नहीं है, बल्कि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनके प्रयासों से कितना सार्वजनिक कल्याण होता है तथा कितना जन संतोष उत्पन्न होता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो ऐसी भावना और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में प्रशासन जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। प्रशासन को जनता का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक होता है और यह समर्थन वे तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब वे प्रशासनिक कार्यों से

जनता को पूर्ण संतुष्टि प्रदान करें। कार्मिक प्रशासन सार्वजनिक कल्याण हेतु बनाई गई योजनाओं को क्रियान्वित कर के जन संतोष उत्पन्न करता है।

3. **कार्य कुशलता में वृद्धि-** कार्मिक प्रशासन का महत्व इस तथ्य में भी समाहित होता है कि वह कर्मचारियों की कार्य क्षमता में वृद्धि करने का भी निरंतर प्रयास करता रहता है। सक्षम कर्मचारियों के अभाव में संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता है। इसके लिए कार्मिक प्रशासन कर्मचारियों को लोक सेवा में प्रवेश से पहले तथा प्रवेश के पश्चात भी प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसके अलावा अपनी नीतियों में ऐसे तत्वों को समाहित करने का प्रयास करता है जिसके कारण प्रशासन अपने कर्मचारियों को संतुष्ट रख सके। ऐसा करने के लिए कार्मिक प्रशासन के द्वारा अपने कार्मिकों को पर्याप्त वेतन, कार्य के समुचित घंटे, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं, सेवानिवृत्ति लाभ आदि सुविधाएं उपलब्ध कराने का प्रबंध किया जाता है। यही सब वह व्यवस्थाएं हैं, जिनके द्वारा किसी भी संगठन में कार्यरत कर्मचारी संतुष्ट रहता है और कर्मचारी की संतुष्टि ही उसकी कार्य क्षमता में वृद्धि का एक बहुत महत्वपूर्ण कारक होता है।
4. **उत्तरदायी प्रशासन-** उत्तरदायी प्रशासन का निर्माण करना कार्मिक प्रशासन की महत्ता को प्रदर्शित करने वाला एक और तत्व होता है। लोकतांत्रिक प्रशासन उत्तरदायी होता है कि वह अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से करता है, कि उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके। इसके लिए प्रशासन के द्वारा समुचित व्यवस्था की जाती है। प्रशासन के द्वारा ऐसा प्रबंध किया जाता है कि यदि कोई अधिकारी कभी भी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है अथवा अनुत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करता है तो कार्मिक प्रशासन उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करता है। संगठन में कर्मचारी के अपेक्षित व्यवहार के बारे में आचार संहिता में उल्लेख किया जाता है जो कर्मचारी को उत्तरदायित्व पूर्ण आचरण के लिए प्रेरित कर सके।
5. **मनोबल का निर्माण-** संगठन में कर्मचारी की उत्पादकता तभी बनी रह सकती है या बढ़ सकती है जब कर्मचारी में कार्य करने की इच्छा बनी रहे। कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा बनाए रखने के लिए उनका मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है। कार्मिक प्रशासन के द्वारा कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहते हैं।
6. **परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य-** देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन निरंतर बने रहते हैं और यह परिवर्तन प्रशासन के समक्ष नवीन उत्तरदायित्व एवं चुनौतियां उत्पन्न कर देते हैं। कार्मिक प्रशासन का महत्व इस बात में भी निहित है कि वह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। कार्मिक प्रशासन परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति सजग रहकर इस प्रकार की व्यवस्था करता है कि प्रशासनिक संगठन परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम रह सके। कार्मिक प्रशासन गतिशील एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत क्षमता रखता है।
7. **समन्वय-** कार्मिक प्रशासन संगठन के विभिन्न सिद्धांतों का समुचित ध्यान रखता है तथा इन सिद्धांतों के निर्वहन की दृष्टि से वह विभिन्न नीतियों का निर्माण करता है। विभिन्न नीतियों की क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने का प्रयास कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही किया जाता है। समन्वय का होना इसलिए अत्यधिक आवश्यक होता है कि मानवीय अथवा भौतिक साधनों का दुरुपयोग ना हो सके तथा कार्यों के दोहराव को भी रोका जा सके।
8. **नियंत्रण-** संगठन द्वारा अपने वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु यह आवश्यक होता है कि उसके कर्मचारी वर्ग उचित रीति से अपने कार्यों का संपादन करते रहे और ऐसा कर्मचारियों पर नियंत्रण स्थापित किए बिना

संभव नहीं हो सकता है। कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा उनकी क्रियाओं में समन्वय उत्पन्न करने की दृष्टि से कार्मिक प्रशासन का विशेष महत्व होता है।

#### 4.5 निष्कर्ष

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से आप यह बात स्पष्ट रूप से समझ गए होंगे कि किसी भी संगठन में कार्मिक प्रशासन उसका कितना महत्वपूर्ण भाग होता है। कार्मिक प्रशासन के अपने कुछ उद्देश्य निर्धारित होते हैं जिन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में ही कार्मिक प्रशासन के द्वारा विभिन्न कार्यों का संपादन किया जाता है। कार्मिक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले यह कार्य कार्मिक प्रशासन का महत्व भी इंगित करते हैं।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. कार्मिक प्रशासन के कोई दो उद्देश्य बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के महत्व को इंगित करने वाले दो बिंदु बताइए।
3. उत्तरदायी प्रशासन से आप क्या समझते हैं?
4. कार्मिक प्रशासन के कोई चार कार्य बताइए।

#### 4.6 सारांश

कार्मिक प्रशासन संगठन में कार्मिकों से संबंधित सभी प्रकार की नीतियों के निर्माण, उनके क्रियान्वयन तथा कार्मिकों पर निरीक्षण और नियंत्रण का कार्य करता है। कार्मिक प्रशासन वर्तमान संदर्भ में संगठनों का जीवन प्राण होता है, क्योंकि परिस्थितिकी निरंतर परिवर्तित होती रहती है ऐसे में कार्मिकों का ना केवल मनोबल बनाए रखना आवश्यक होता है बल्कि उनके लिए समुचित प्रभावी नीतियों का निर्माण भी उतना ही आवश्यक होता है जो कार्मिक प्रशासन के द्वारा ही संपादित किया जाता है। बदलते समय में कार्मिकों के द्वारा कार्मिक प्रशासन से अच्छी कार्मिक नीतियों की अपेक्षा की जाती है साथ ही कार्मिक प्रशासन का भी यह प्रमुख उत्तरदायित्व हो जाता है कि वह अपने कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक करें।

#### 4.7 शब्दावली

मनोबल- व्यक्तियों के समूह की संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की निरंतर क्षमता।

प्रतिफल- कर्मचारियों को उनके कार्य के बदले में दिए जाने वाले वेतन के एक निश्चित क्रमबद्ध तरीका।

कार्य मूल्यांकन- कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले कार्य की विधियों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन कर कार्य विवरण को विकसित करना।

#### 4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का निर्धारण, कार्मिकों के मनोबल तथा अभिप्रेरणा से संबंधित समस्त कार्य, 2. मनोबल का निर्माण, परिवर्तित परिस्थितियों में सामंजस्य, 3. कार्मिक प्रशासन द्वारा जब अपने कार्यों का संपादन कुछ इस प्रकार से किया जाए कि, उन कार्यों में प्रशासन की जनता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना अभिव्यक्त हो सके, 4. मानव शक्ति प्रबंधन, श्रम संबंध, प्रशासन में अनुशासन की स्थापना, कार्यों का स्पष्ट वर्गीकरण एवं वेतन व्यवस्था

---

**4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

---

1. सिन्हा, बी. एम. 1986, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन: कांसेप्ट्स एंड कंपैरेटिव पर्सपेक्टिव; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
2. गोयल, एस. एल. 1984, पब्लिक पर्सनेल एडमिनिस्ट्रेशन; स्टर्लिंग: नई दिल्ली।
3. जैन, शर्मा, 1999, लोक सेवीवर्गीय प्रशासन; रिसर्च पब्लिकेशन: जयपुर।
4. कटारिया, सुरेंद्र 2008, कार्मिक प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स: जयपुर।
5. शर्मा, अनिल कुमार, 2006, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार; ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

---

**4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

---

3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. अवस्थी एवं अवस्थी, 2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

---

**4.11 निबंधात्मक प्रश्न**

---

1. कार्मिक प्रशासन के विभिन्न उद्देश्यों को बताइए।
2. कार्मिक प्रशासन के कार्य पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
3. कार्मिक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डालिए।

## इकाई- 5 आधुनिक नौकरशाही के संदर्भ में लोक सेवा

### इकाई की संरचना

- 5.0 प्रस्तावना
- 5.1 उद्देश्य
- 5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य
- 5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास
- 5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण
- 5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताएं
- 5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अन्तर
- 5.7 लोक सेवा और नौकरशाही में सम्बन्ध
- 5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व
- 5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति
- 5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताएं
- 5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही- भारतीय परिप्रेक्ष्य
- 5.12 नौकरशाही बनाम लोकसेवा के सकारात्मक पहलू
- 5.13 सारांश
- 5.14 शब्दावली
- 5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 5.18 निबेधात्मक प्रश्न

### 5.0 प्रस्तावना

लोक सेवा वास्तव में लोक प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने स्वस्थ रूप में लोक सेवा एक पवित्र सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम प्रभाव, नियंत्रण और प्रताड़ना अधिक होता है। लोक सेवा के इस विकृत रूप को 'नौकरशाही' कहा जाता है, जो आधुनिक जटिल समाज में अपरिहार्य बन गयी है। इसकी इसी परिहार्यता ने इस तार्किक और प्रासंगिक बनाये रखा है।

जैसे-जैसे समाज आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की ओर बढ़ता जाता है, लोक सेवा की भूमिका भी बढ़ती है और इसी के साथ एक लोक सेवक एक नौकरशाह का रूप धारण कर लेता है। राजनीतिक चिन्तकों ने नौकरशाही के चरित्र और नौकरशाह की मानसिकता पर बहुत कुछ लिखा है।

विकासशील देशों में लोक सेवा बनाम नौकरशाही की समन्वय और द्वन्द्व की प्रक्रिया बड़ी स्पष्ट होती है, जिसका सरलता से वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। इसी अध्ययन के आधार पर विकसित देशों में उनके अतीत से वर्तमान तक लोक सेवा और नौकरशाही के अन्तः सम्बन्धों के विकास की प्रक्रिया को समझना सरल हुआ है।

### 5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आधुनिक नौकरशाही की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- लोक सेवा के अर्थ और महत्व को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही और ओर लोक सेवा के सम्बन्धों को जान पायेंगे।
- नौकरशाही और लोक सेवा के अन्तर को समझ सकेंगे।
- नौकरशाही की मानसिकता किस प्रकार लोक सेवा के मार्ग में बाधायेँ डालती है, यह जान पायेंगे।

## 5.2 लोक सेवा का अर्थ एवं उद्देश्य

लोक-सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध एवं पवित्र रूप में यह एक पवित्र सेवा है, लेकिन विकृत रूप में यह एक मानसिकता बन जाती है, जिसका लक्ष्य सेवा कम स्वयंसेवा अधिक होता है, जो यह नियंत्रण, प्रभाव और प्रताड़ना का प्रयोग करके प्राप्त करती है। लोक-सेवा के इस विकृत रूप को नौकरशाही कहा जाता है।

किसी भी प्रकार के प्रशासन के तीन अंग होते हैं- (1) संस्थागत प्रशासनिक ढांचा, जो विभिन्न सोपानों और अभिकरणों पर आधारित होता है, (2) इन अभिकरणों में कार्यरत व्यक्ति, जिनको सेवी-वर्ग का नाम दिया जाता है; तथा (3) नीतियाँ, नियम तथा विनियम, जिनको राजनीतिक प्रशासन तैय और तैयार करता है और जिनके तहत सेवी-वर्ग सरकारी प्रशासन तंत्र का संचालन करता है। प्रशासन के यह तीनों अंग मिलकर लोक सेवा को मूर्त रूप देते हैं। इस तरह लोक सेवा वास्तव में प्रशासन की आत्मा बन जाती है, जिसके अभाव में नीतियों के क्रियान्वयन की सफलता असम्भव हो जाती है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि शासन की सफलता प्रशासन पर निर्भर करती है और प्रशासन की सफलता कुशल लोक सेवा पर निर्भर करती है। कुशल लोक सेवा के लिये, योग्य, प्रशिक्षित अनुभवी और साहसी सेवी-वर्ग का सर्वाधिक महत्व होता है। प्रो० एल०डी० व्हाइट इसी प्रकार के सेवी वर्ग को “मानव शक्ति” मानते हैं। यह मानव शक्ति स्थायी, वेतन भोगी, जीवन के अन्त तक पूरी तरह सुरक्षित और पेशेवर होती है, जिसमें नियमों, विनियमों तथा कानूनों की बारीकियों को समझने और उनको लागू करने की क्षमता होती है।

## 5.3 आधुनिक लोक सेवा के विकास का इतिहास

लोक सेवा की अवधारणा अथवा संस्था का इतिहास प्राचीन भारत राजनीतिक व्यवस्था से लेकर मुगल-शासन तथा ब्रिटिश शासन के इतिहास के पन्नों तक खोजा जा सकता है। लेकिन मुगल कालीन भारत प्रशासन में किसी भी प्रकार की अखिल भारतीय सेवाओं का गठन नहीं किया गया था। जो लोक सेवाएं गठित की गयीं थीं, उनका सम्बन्ध राजस्व, समाज-कल्याण तथा शान्ति व्यवस्था से था।

अंग्रेज शासन काल दो कालों में विभक्त है- ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल, जिसमें लूट-प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा ने योग्यता आधारित प्रशासकीय सेवाओं के विकास में बाधा पहुँचाई। लेकिन जिस तरह वारेन हेस्टिंग्स तथा लार्ड कार्नवोलिस जैसे गवर्नर जनरलों ने भू-राजस्व की वसूली तथा कानून और व्यवस्था के क्षेत्रों में लोक सेवाओं की आधारशिला रखी वे स्वयं में लोक सेवा के इतिहास में मील का पत्थर है। ब्रिटिश शासन के प्रथम चरण में लार्ड क्लाइव, लार्ड वेलेजली तथा लार्ड मैकाले ने लोक सेवाओं को एक नया आयाम दिया। न्याय प्रशासन एकीकृत किया गया और यहाँ भारतीय लोक सेवाओं की स्थापना की गयी; चयन व प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया गया; असैनिक सेवकों को प्रतिज्ञाबद्ध नागरिक सेवा का नाम दिया गया; कर्मचारियों पर अनुशासित रखने के लिये कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये लेकिन उसी के साथ अनेक रियायतें भी दी गयीं; खुली प्रतियोगिता पद्धति लागू की गयी। इस

काल के अन्त में 1854 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। लार्ड मैकाले ने इसी वर्ष आई0सी0एस0 के लिये जो सिफारिशें की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के लिए सार्थक बनी हुई हैं।

सन् 1858 में कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश क्राउन की सरकार अस्तित्व में आ गई। यहाँ से शब्द 'सरकार' का सफर आरंभ हुआ। अभी तक कम्पनी का प्रशासन कम्पनी के उच्च अधिकारियों के प्रति जबाबदेह था लेकिन क्राउन की सरकार ब्रिटिश संसद और कुछ सीमा तक प्रजा के प्रति जबाबदेह बन गयीं। यहाँ लोक सेवाओं का तीव्र गति से विकास होने लगा। सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दी गयी, जिन्हें भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा का नाम दिया गया; भारतीय नागरिक सेवाओं की भर्ती के लिये इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षायें आयोजित की गयीं लेकिन अन्य दो प्रकार की सेवाओं की भर्ती प्रान्तीय स्तर पर की जाने लगी। इस तरह लोक सेवाओं के भारतीयकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गयी।

धीरे-धीरे अनेक सुधारों के साथ तथा अनेक समितियों के माध्यम से 1912 से लेकर 1935 तक भारतीय लोक सेवाओं का विकास होता गया। 1935 के भारत शासन अधिनियम ने लोक सेवाओं को एक नई दिशा दी। लोक सेवा आयोग की स्थापना की गयी; चिकित्सा सेवा के अतिरिक्त सभी सेवाओं को भारत मन्त्री के अधिकार क्षेत्र से निकाल दिया गया।

भारत की स्वतंत्रता के साथ लोक सेवा का तीसरी चरण आरंभ होता है। अब यहाँ लोक सेवाओं का विकास नई परिस्थितियों, नई चुनौतियों तथा नई आवश्यकताओं के अनुरूप होना था। नतीजा यह निकला कि परम्परागत लोक सेवाओं की संरचना, मानवशक्ति की योग्यता, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने लगे। भारतीय सिविल सेवा (ICS) का स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) ने लिया तथा भारतीय विदेश सेवा (IFS) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना की गयी।

#### 5.4 आधुनिक लोक सेवा के अभिलक्षण

स्वतंत्रता के पश्चात् यह तथ्य स्वीकार किया जाने लगा कि देश का चहुमुखी विकास पूरी तरह प्रशासनिक लोक सेवा पर निर्भर है। लोक-सेवा का वैज्ञानिक अध्ययन तथा वैज्ञानिक प्रबन्धन प्रशासन की सफलता की कुंजी है। अतः जिन बातों ने लोक सेवा को नया रूप तथा नई दिशा दी उनका सम्बन्ध मानव शक्ति से था। मानव शक्ति अर्थात् सेवी-वर्ग को केन्द्रीय बिन्दु मानकर प्रशासनिक चिन्तकों ने जो कदम उठाये उन्हीं से लोक सेवा के विशिष्ट अभिलक्षण सामने आने लगे। सारांश में यह अभिलक्षण इस प्रकार हैं-

1. सेवी-वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ होना;
2. प्रशासन के हर क्षेत्र में विशिष्टकरण बढ़ जाना;
3. पक्षपात रहित सेवी-वर्ग का चयन, प्रशासनिक दृष्टि से कुशल, राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ जो अपने आचरण
4. से संवेदनशील लोक सेवा जो समाज के प्रति समर्पित हो।
5. वैतनिक कार्यकर्ताओं का निकाय; लोक सेवकों का स्थायी पेशेवर होना;
6. राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ तथा निष्पक्ष होना;
7. संगठनात्मक दृष्टि से लोक सेवा का पद-सोपानीय स्वरूप तथा सेवी वर्ग का दृष्टिकोण औपचारिक होना।
8. किसी भी शासन व्यवस्था में सेवी वर्ग का अनिवार्य अंग होना चाहे यह शासन व्यवस्था किसी भी विचारधारा से जुड़ी हो अथवा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित हो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लोक सेवा की विशेषताएं आधुनिक समाज के तकाजों के अनुरूप हैं।

### 5.5 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताएं

सर्वप्रथम हमें नौकरशाही को समझना होगा। नौकरशाही ब्यूरोक्रेसी (Bureaucracy) की पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है अधिकारी वर्ग या अधिकारी तंत्र। जब इस अधिकारी वर्ग का रवैया शाहों जैसा होता है तब इसे नौकरशाही का नाम दिया जाता है, जिसका साधारण अर्थ यह है कि यह अधिकारी कहने को तो ‘नौकर’ या सेवक हैं लेकिन इनका आरचण शाहों जैसा है, क्योंकि इन अधिकारियों का रवैया लोकतांत्रिक समाज के अनुकूल नहीं होता है, इसलिये नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है।

नौकरशाही के विचार अथवा सिद्धान्त का सब से महान प्रवक्ता मैक्स वेबर है। उसके अनुसार ब्यूरा (ठनतमन) अथवा लोक कार्यालय किसी न किसी रूप में विश्व की संगठित सरकारों का अनुशब्द रहे हैं। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी० गोरने ने किया, लेकिन मैक्स वेबर वह पहला जर्मन चिन्तक है, जिसने वैज्ञानिक आधार पर नौकरशाही या ‘ब्योरॉकरसी’ का विधिवत अध्ययन करके नौकरशाही का प्रतिमान (Model) तैयार किया और इसके विशिष्ट लक्षण समझाए। वेबर ने इस प्रतिमान को विधिक-तार्किक (Legal-rational) नौकरशाही का नाम दिया है। इस प्रतिमान की निम्न विशेषताएं हैं-

1. शायकीय कार्य में निरन्तरता बनी रहती है।
2. एक प्रशासनिक अभिरक्षण निश्चित तथ शुदा नियमों के अनुसार काम करता है। इस सम्बन्ध में तीन नियमों का पालन किया जाता है। पहला, अधिकारी की कार्य सम्पन्न करते समय निर्वैयत्कीकरण की हैसियत रखता है; दूसरे, अधिकारी उसको सौंपी गयी जिम्मेदारी के अनुसार सत्ता दी जाती है; तीसरे, उसको काम पूरा करने के लिए जो साधन (धन इत्यादि) दिये जाते हैं। उनका प्रयोग वह कानूनी दायरे में रहकर ही कर सकता है।
3. प्रत्येक अधिकारी सत्ता की सोपनियता का अंग होता है;
4. अधिकारी मन मर्जी से मुहैया कराये गये संसाधनों का प्रयोग नहीं कर सकते। वे संसाधनों के प्रयोग के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होते हैं।
5. कार्यालयों में भर्ती पदाधारियों द्वारा निजी सम्पत्ति के रूप में नहीं की जा सकती।
6. केवल लिखित दस्तावेजों के आधार पर प्रशासन चलता है।

वेबर ने लोक सेवा या नौकरशाही के अभिलक्षणों के आधार पर एक अधिकारी की विशेषताएं भी तय की हैं, जो इस प्रकार हैं-

- एक अधिकारी किसी अन्य व्यक्ति का व्यक्तिगत तौर पर सेवक नहीं होता है;
- वह उस सत्ता का प्रयोग करता है, जो उसको निर्वैयत्तिक नियमों की ओर से प्रदत्त होते हैं;
- उसकी वफादारी का मापदण्ड उसका पूरी निष्ठा के साथ कर्तव्य को अन्जाम देना है;
- उसकी प्रशासनिक योग्यता के अनुसार उसको नियुक्ति दी जाती है;
- प्रशासनिक कार्य उसका पूर्ण-कालिक पेशा होता है, तथा
- काम के बदले उसे निरन्तर वेतन दिया जाता है तथा उसको विश्वास होता है कि उसे पूरी सेवा काल में पदोन्नति के अवसर प्राप्त होंगे।

उक्त विलक्षणों के कारण वेबर ने नौकरशाही को वर्तमान परिस्थितियों में अपरिहार्य माना। उसके अनुसार विधिक-तार्किक नौकरशाही तकनीकी दृष्टि से किसी भी दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था से उच्चतर है। लोगों का इस से मुक्ति पाना कठिन है। इसलिए यह स्थायी और अनिवार्य है।

सारांश में नौकरशाही के वेबेरियन प्रतिमान में नौकरशाही के मुख्य तत्व हैं: निर्वैयक्तिक व्यवस्था, नियम, दक्षता, पदसोपनियता, नीति और जन ध्येय, लिखित दस्तावेज, तथा व्यक्ति का शासन। आधुनिक नौकरशाही का वर्तमान में यही रूप सार्वभौमिक है।

### 5.6 लोक सेवा का अर्थ तथा नौकरशाही से अंतर

नौकरशाही को समझने के बाद अब यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न किया जा सकता है कि लोक सेवा (Civil Services) तथा नौकरशाही में अन्तर क्या है तथा इन दोनों संस्थाओं के पारस्परिक रिश्ते क्या हैं? इन सवालों का उत्तर देने से पहले हमें लोक सेवा को सारांश में समझना होगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, लोक सेवा कल्याण-राज्य का अन्तिम लक्ष्य है। भारतीय कल्याण राज्य की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं। यह एक विकासशील देश है, जिसका आर्थिक विकास वास्तविक मंजिल है। स्वतंत्रता के बाद लागू किये गये संविधान ने इसके विकास की वास्तविक दिशाएँ स्पष्ट रूप से तय की हैं। क्योंकि यह एक बहुलवादी संस्कृति का देश है, इसलिए प्रत्येक वर्ग और सम्प्रदाय का ध्यान रखा गया है, जिसका सार इस प्रकार है-

- एक जनतंत्रीय, संसदात्मक गणराज्य की स्थापना;
- समाजवादी ढंग के समाज की रचना;
- धर्मनिरपेक्षता पर आधारित राज्य;
- मानव अधिकारों के आधार पर व्यक्ति को मूल-अधिकारों की सुरक्षा;
- स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना;
- स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सार्वभौमिक विचारों को सार्थक करना;
- देश के पिछड़ों, कमजोर तबकों, महिलाओं और बच्चों को आगे बढ़ाना;
- छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराई का उन्मूलन करना; तथा
- अल्पसंख्यकों की संस्कृति को सुरक्षित रखने की गारन्टी देना।

उक्त सभी तत्व भारतीय संविधान का सार है, जिनको 'राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों' के माध्यम से सुरक्षा की गारन्टी दी गयी है।

लोक सेवा का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में साधारण बीमारियों से लेकर आकास्मिक महामारियों की स्थिति से निपटने के लिये लोक सेवा को पूरी तरह तैयार रहना पड़ता है। ऐसी आकस्मिक चुनौतियों का भार पूरी तरह मुस्तैद लोक सेवकों की तत्परता, सूझ-बूझ और निर्णय-निर्माण की योग्यता और उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करता है। इनमें स्वास्थ्य कर्मियों से लेकर प्रशासनिक मशीनरी तक सबकी अहम भूमिका होती है।

यही स्थिति आकस्मिक प्राकृतिक आपदा की है। कुछ ऐसी आपदाएँ हैं, जिनका अनुमान पहले से लगाया जा सकता है लेकिन जो आपदा अचानक आती है, लोक सेवा को उससे निपटने के लिये भी हर समय तैयार रहना पड़ता है। इस संकट से निपटने के लिए प्रत्येक देश में आपदा-प्रबन्धन विभाग होते हैं। यदि लोक सेवक हर समय परिस्थितियों का सामना करने के लिये तत्पर और सजग रहते हैं, तो जन-साधारण की सुरक्षा की जा सकती है और जान-माल की कम से कम क्षति होती है। कुशल लोक सेवा की यही परीक्षा है और उसकी तत्परता की यही कसौटी है।

जहाँ तक शिक्षा का क्षेत्र है, सब कुछ-आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास अच्छी शिक्षा पर निर्भर रहता है। प्राईमरी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सब कुछ सक्रिय लोक सेवा पर निर्भर करता है।

बड़े दुःख की बात है कि भारत में सब से अधिक अनदेखी स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र की जाती रही है। शिक्षा मानव संसाधनों का आधार है और यह मानव संसाधन स्वस्थ हों, यह स्वस्थ समाज के लिये अनिवार्य शर्त है। लोक सेवा का एक अन्य गहरा सम्बन्ध जन-कल्याण योजनाओं से है। इसका एक बड़ा पहलू रोजगार के अवसर पैदा करना है। कृषि प्रधान विकासशील देशों में जो बड़ी समस्या है वह बेरोजगारी की है। लोक सेवा के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

### 5.7 लोक सेवा और नौकरशाही के सम्बन्ध

वास्तव में लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संस्था एक ही है, संगठनात्मक संरचना भी एक ही है, मानव शक्ति में भी कोई अन्तर नहीं है। सैद्धान्तिक पहलू भी समान हैं, कार्य-विधि भी लगभग एक ही है, लेकिन यदि दोनों में कोई अन्तर है तो मनोवैज्ञानिक हैं। दोनों में सोच और व्यवहार का अन्तर है। लोक सेवक अपने पेशे (Career) के आरम्भिक दौर में अत्यंत उत्साही, कर्मठ, गतिशील और निष्ठावान नजर आता है। वह समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये कदम उठाता है। संवैधानिक तकाजों को पूरा करने के लिए प्रतिबद्धता दिखाता है। वह प्रगतिशील, उदार, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी नजरियों का परिचय देता है। यहाँ उसका दृष्टिकोण पूरी तरह सामाजिक हित से ओत-प्रोत होता है। वह परहित की बात करता है, जो लोक सेवा का ध्येय है। जब तक उसकी यह सोच बनी रहती है, वह लोक सेवा के तकाजों को पूरा कराने का प्रयास करता है। लेकिन धीरे-धीरे उसकी मानसिकता बदलने लगती है। वह अपने वरिष्ठों की लीक पर चलने लगता है। अब एक लोक सेवक जो कुछ करता है, उसका सम्बन्ध आत्म-हित अधिक और परहित कम हो जाता है। जो परिवर्तन उसके आचरण में उभरते हैं, वे हैं- दम्भी होना, सामाजिक अलगाववाद की भावना, कठोर, निष्ठुर और उदासीन आचरण, संवेदनहीनता, आत्म-प्रगति और पदोन्नति के बारे में सक्रिय रहना, सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग, अकर्मठता और निष्क्रियता, राजनीतिक तटस्थता और निष्पक्षता का हास तथा तत्कालीन राजनीतिक विचारधारा में रंग जाना तथा पूंजीपतियों और दबंगों के प्रभाव में आकर उनके हितों का साधन बन जाना। उक्त सब बातें नौकरशाही की विशेषताएं बन जाती हैं और इस तरह लोक सेवा का स्वरूप दूषित, विकृत और भ्रष्ट हो जाता है।

### 5.8 आधुनिक नौकरशाही के ऐतिहासिक निर्धारक तत्व

नौकरशाही के बारे में ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, वह आधुनिक नौकरशाही के स्वरूप और चरित्र को दर्शाता है, लेकिन उसका स्वरूप उसको विरासत में मिला है। भारत को लोकसेवा की विरासत इंग्लैण्ड से मिली है जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और क्राउन का शासन आरम्भ हुआ। ब्रिटेन में आधुनिक लोक सेवा का प्रारम्भ 1853 से हुआ जब चार्ल्स ट्रेवेलियन तथा सर स्टेफर्ड द्वारा विभागीय जांचों के आधार पर मुख्य सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में योग्य कर्मचारियों की भर्ती के लिये उपयुक्त परीक्षा की व्यवस्था, लोक सेवकों के प्रशिक्षण के द्वारा उनकी योग्यता को बढ़ाना, इस योग्यता को उनकी पदोन्नति का आधार बनाना; योग्यता प्राप्त सेवी वर्ग को विशेष पद पाने का अवसर देना; सेवा में एकता के तत्वों को लाया जाना, समाज आधारों पर नियुक्तियाँ करना; तथा दूसरे विभागों में पदोन्नति के अवसर प्रदान करना। ट्रेविलियन-नार्थकोट के प्रस्तावों के आधार पर 1855 में एक आदेश द्वारा तीन सदस्यीय लोक सेवा आयोग की नियुक्ति की गयी। नियुक्तियों में अभी भी राजनीतिक दखल बना रहा। इसलिए लोक सेवकों का राजनीति तौर पर तटस्थ एवं निष्पक्ष बना रहना कठिन था। लेकिन 1870 के सपरिषद आदेश द्वारा जब कुछ विभागों तथा पदों पर प्रतियोगी परीक्षाएँ बाध्य कर दी गईं, और खुली प्रतियोगिताओं का रास्ता साफ कर दिया गया तब लोक सेवाओं में आमूल परिवर्तन आने लगा। इसी काल में लोक सेवा परीक्षाओं की दृष्टि से लोक सेवाओं को दो भागों में

विभाजित किया गया-प्रथम वर्ग में उच्चतर तथा श्रेष्ठतर कर्मी। यह वर्ग सेवा की बौद्धिक मांग को पूरा करता था, जबकि दूसरा वर्ग दिन-प्रतिदिन के नियमित कार्यों का संचालित करता था।

ब्रिटेन में 1920 से लेकर 1939 तक के काल को लोक सेवाओं की दृष्टि से पुनर्गठन काल कहा जाता है। प्रथम विश्व युद्ध में लोक सेवाओं के दायित्वों में पंचायत काफी बढ़ौत्तरी हुई। उनको परिवर्तित प्रशासनिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता बनी रही।

लोक सेवा के विकास में राष्ट्रीय विहटले समिति का बड़ा योगदान है। यह पुनर्गठन समिति के नाम से जानी जाती है। पुनर्गठन समिति द्वारा प्रस्ताविक संरचना इस मान्यता पर आधारित थी कि लोक सेवा के प्रशासनिक तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं, तथा लिपिकीय कार्य दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं- नीति रचना सम्बन्धी कार्य तथा विशुद्ध रूप से यांत्रिक प्रकृति के कार्य।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद लोक सेवा की संरचना में कुछ और परिवर्तन किये गये। 1946 में सामान्य व्यावसायिक वर्गों की श्रंखलायें आरंभ की गयीं। तकनीकी सेवाओं को सामान्य संरचना प्रदान की गई। सामान्य वर्गों की स्थापना की गई। राल्फ एशेटन समिति (1943) के प्रतिवेदन के अनुसार प्रशिक्षण के लिए, नियोजित कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये; संगठन एवं प्रविधि कार्य का विकास हुआ; वेतन तथा सेवा की शर्तों की पुनरीक्षा के लिये स्वतंत्र निकायों की स्थापना की गई।

अन्त में फुल्टन कमेटी ने तीन प्रमुख सुझाव दिये- लोक सेवा विभाग की स्थापना; लोक सेवा महाविद्यालयों की स्थापना; एकीकृत प्रेडिगिंग संरचना। फुल्टन कमेटी के सभी सुझावों को धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया गया।

लोक सेवा के उक्त सभी निर्धारक तत्वों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।

## 5.9 लोक सेवा की प्रकृति और परिस्थिति

अब लोक सेवा की जो प्रकृति उभर कर सामने आती है, उसे आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार से है -

1. लोक सेवा विकास का परिणाम है: विशेषकर इंग्लैण्ड में लोक सेवा को उसके इतिहास के झरोके से देखा जाना चाहिये। यहाँ उसका धीरे-धीरे विकास हुआ है, जो 1854 से ट्रेवील्यन-नार्थकोट रिपोर्ट के परिणामस्वरूप आरंभ हुआ और आगे तक चलता रहता है।
2. स्टाउंट ने ब्रिटिश लोक सेवा को पाँच वर्गों में विभाजित किया है- प्रशासनिक वर्ग, अधिशासी वर्ग, लिपिक वर्ग, लिपिक सहायक और टंकण वर्ग। यह सभी लोक सेवा के तौर पर प्रशासनिक एवं लिपिकीय कार्य सम्पन्न करते हैं। विभागीय और व्यासायिक वर्ग भी होते हैं। इस वर्ग में विशेष यांत्रिक योग्यता वाले अधिकारी आते हैं। व्यावसायिक वर्ग में बैरिस्टर, डॉक्टर, शिल्पी, इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि। इनकी सेवा शर्तें वैसी हो होती हैं, जैसी प्रशासनिक अधिकारियों की होती है। लेकिन इन पदों पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा नहीं होती है।
3. लोक सेवी ब्रिटिश ताज के सेवक होते हैं, इसलिये वे मंत्रियों के समान हैं। यह सभी राजा के नाम से अपन कार्य सम्पन्न करते हैं, लेकिन सही व गलत कार्यों के लिये स्वयं जिम्मेदार होते हैं।
4. न्यायालय के नियंत्रण क्षेत्र से बाहर रहते हैं और इस तरह न्यायपालिकायें लोक सेवकों से सम्बन्ध नहीं रखती। इन लोक सेवकों से सम्बन्धित जो भी विवाद सामने उन्हें विभागीय आधार पर विवेक के माध्यम से सुलझाया जाता है।
5. प्रशासनिक आदेशों द्वारा नियमनों की व्यवस्था है। 1855 में लोक सेवाओं का पुनर्गठन सपरिषद आदेश के आधार पर किया गया था। उसके बाद समय-समय पर प्रशासनिक आदेश प्रसारित होते रहे हैं। प्रशासनिक आदेशों द्वारा नागरिक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। लोक सेवाओं की भर्ती,

स्तरीकरण, वेतन, पदोन्नति, काम के घण्टे, सेवा निवृत्ति की आयु आदि का नियमन सेवा आयोग करता है, जिसके पीछे मंत्री का निर्णय सर्वोपरि होता है।

6. लोक सेवा में सेवा सुरक्षा की गारंटी दी गई है। विभागों के आन्तरिक कारण नागरिक सेवकों को कुछ अधिकार देते हैं। वे विभाग द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध कार्यवाही का अधिकार रखते हैं। उनको अपना नजरिया रखने का पूरा अधिकार है। अतः वह तभी दण्डित हो सकते हैं जब सुरक्षा अथवा आत्म रक्षा सारे माध्यम असफल हो जाते हैं।
7. इंग्लैण्ड में लोक सेवक राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह तटस्थ होते हैं। वह किसी राजनीतिक दल के प्रति वफादार नहीं होते हैं। वह पूरी निष्ठा के साथ पदासीन सरकार की सेवा करते हैं। 1954 में निर्मित संहिता के अनुसार वह देश की राजनीति में भाग नहीं ले सकते।
8. लोक सेवा की अनुकूल शर्तें तय की गई हैं ताकि लोक सेवकों को उज्ज्वल भविष्य का अवसर प्राप्त होता रहे और नये प्रवेशार्थी लोक सेवा के प्रति आकर्षित होते रहे। यह शर्तें उनको भविष्य के प्रति आश्वस्त रखती हैं। उन्हें पदोन्नति के अवसरों की आशा बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उनको अच्छा वेतन और अन्य सुख-सुविधायें देकर उनको भविष्य की चिन्ताओं से मुक्त रखा जाता है।
9. अन्य विशिष्ट लक्षणों में ब्रिटेन की लोक सेवा में लोक-कल्याणकारी राज्य की प्रवृत्ति के कारण प्रशासनिक वृद्धि के साथ-साथ लोक सेवकों की संख्या में भी निरन्तर वृद्धि होना, नवीन विभागों और मंत्रालयों की स्थापना। दूसरे, लोक सेवा का अभिजनवादी स्वरूप होना। सारांश यह है कि ब्रिटिश लोक सेवा एक सम्मानीय सेवा है, जिसको पाकर अधिकारियों को गर्व होता है।

### 5.10 आधुनिक नौकरशाही की विशेषताएं

अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक नौकरशाही क्या है? सच तो यह है कि नौकरशाही को दुर्भाग्यवश घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि आज संसार के प्रत्येक देश में आज सरकारी विभाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थाएं मानी जाती हैं। सरकारी विभाग न केवल किसी देश की बौद्धिक मानव शक्ति को रोजगार में समायोजित करते हैं, बल्कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण निर्णय लेकर लोगों का जीवन सुलभ और सुरक्षित रखते हैं। इस तथ्य की साधारण अवहेलना की गई है।

यद्यपि मैक्स वेबर ने ब्योरोज पर महत्वपूर्ण ध्यान देकर विधिक-तार्किक मॉडल के माध्यम से नौकरशाही की तर्कसंगतता को स्वीकार करने का प्रयास किया, लेकिन वेबर का प्रभाव निर्णय-निर्माण सिद्धान्त पर नहीं पड़ा।

आधुनिक विकसित और विकासशील देशों में नौकरशाही का वास्तविक स्वरूप, उसकी कार्यशैली और उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है इस प्रकार साइमल, ट्रमैन, बुचानन, तुलोक, राइकर और साइमन ने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन सर्वाधिक प्रभावशाली नजरिया ऐन्थोनी डाउन्स ने रखा है। यहाँ हम उसके विश्लेषण को संक्षेप में रखेंगे-

1. ऐन्थोनी डाउन्स इस परिकल्पना के साथ नौकरशाही के सम्बन्ध में अपना नजरिया रखता है कि नौकरशाह अन्य लोगों की तरह आत्म हितों से प्रेरित होते हैं। यही दृष्टिकोण अर्थशास्त्री एडम स्मिथ का भी था। डाउन्स सर्वप्रथम संगठन की बात करता है, जिनका आकार बड़ा है और जिसके सदस्य निवैयक्तिक पारस्परिक सम्बन्ध रखते हैं। उनकी सेवा पूर्णकालिक होती है। वे अपने पेश के लिए समर्पित होते हैं, पदोन्नति के लिये वे अपने वरिष्ठों पर निर्भर रहते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि नौकरशाह इस तरह अपने आचरण को ढालते हैं, जिनसे उनके वरिष्ठ प्रभावित हों।
2. नौकरशाह केवल ब्योरोज के लिए काम नहीं करते, वे किसी भी बड़े संगठन में काम कर सकते हैं। उनकी मुख्य भूमिका ही उनको पदोन्नति का अवसर प्रदान करती है। उनका योगदान खुले बाजार में आंका नहीं जा सकता।

3. इस तरह यह स्वीकार करके कि नौकरशाह एक बदनाम शब्द है डाउन्स “नौकरशाह” को “अधिकारी” (official) कहना पसन्द करता है।
4. डाउस की परिकल्पना का सार यह है कि अधिकारियों के सामने जो निश्चित लक्ष्य होते हैं वे हैं- शक्ति; आय; प्रतिष्ठा; सुरक्षा; सुविधा; वफादारी (एक विचारधारा, एक संस्था, या राष्ट्र के प्रति); अपने काम में गर्व; तथा अन्त में जनहित सेवा की इच्छा।

हितों की पूर्ति की दृष्टि से अधिकारियों को दो भागों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

- विशुद्ध आत्म-हितीय अधिकारी जो केवल अपने हितों के लिये काम करते हैं, न कि ब्योरोज या समाज के लिए;
- मिश्रित उद्देशीय अधिकारी, जिनका उद्देश्य अपने हितों की पूर्ति के अतिरिक्त, सामाजिक मूल्यों के प्रति भी वफादारी होती है।

डाउन्स एक और तथ्य की ओर भी इशारा करता है। वह यह है कि ब्योरोज स्वयं अथवा स्वतः जन्म नहीं लेते। स्वयं अधिकारी अपने हितों की पूर्ति के लिए उनके निर्माण तथा विस्तार की सिफारिश करते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर निरन्तर मिलते रहें तथा नये अधिकारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती रहे।

### 5.11 लोक सेवा के संदर्भ में नौकरशाही-भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय नौकरशाही ब्रिटेन की देन है। नौकरशाही पर चिन्तन तथा इसका विश्लेषण भी योरोप में हुआ है। ब्रिटेन की नौकरशाही कुलीन घरानों पर आधारित थी। नौकरशाह प्रायः आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्व विद्यालयों के पढ़े हुये होते थे। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों में भी नौकरशाही की परम्परा डाली। अधिकांशतः अंग्रेज नौकरशाह उपनिवेशों में प्रशासनिक सेवा के लिये भेजे गये, जो स्वयं को स्वर्ग-जन्मे (heaven born) मानते थे।

इन कुलीन प्रशासकों के लिये वास्तव में उपनिवेश स्वर्ग थे। वे अपनी पूरी कुलीनीय मानसिकता के साथ उपनिवेशों में आते थे। उपनिवेश के लोगों को अत्यंत हीन दृष्टि से देखते थे। दासों जैसा उनके साथ बर्ताव करते थे। उपनिवेशों की सम्पदा को लूटकर अपने देश चले जाते थे और वहाँ आलीशान भवन बनाकर, लार्ड या सर की पदवी पाकर ऐश की जिन्दगी गुजारते थे।

स्वतंत्रता तक भारत की भी यही कहानी थी। भारत में प्रवेश करने वाले आई0सी0एस0 अधिकारी भारतीयों को कुत्तों से अधिक कुछ नहीं समझते थे। वे स्वयं को स्वामी और भारतीयों को दास समझते थे। वे साधारण भारतीय समाज से हटकर सिविल लाइंस में रहते थे। सिविल लाइंस का अर्थ था सभ्य लोगों के रहने की जगह, जहाँ असभ्य भारतीयों को घुसने का भी अधिकार नहीं था। यह अंग्रेज अधिकारी बड़े-बड़े बंगलों में रहते थे, जिनके परिवार के बाहर लिखा होता था-“भारतीय कुत्तों का प्रवेश वर्जित है।” यही स्थिति उनके कतबों की थी।

भारत के पर्वतों में तो स्थिति और दयनीय थी। कुमाऊँ में बेगार की प्रथा थी, जिनका अर्थ था यात्रा के लिये कुमाउंजी मजदूरी का ट्यू, खच्चर या घोड़े की तरह प्रयोग करना। साहब और मेम साहिबा एक मजदूर के कन्धों पर चढ़ जाते थे और उनको किसी प्रकार की दया नहीं आती थी। 1 जनवरी 1917 को बेगार व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कानून बना जब इसके विरुद्ध कुमायूं में आवाज उठी।

संक्षेप में नौकरशाही की अंग्रेजी मानसिकता ने भारत में सामाजिक अलगाववाद को बढ़ावा दिया जिसका नतीजा 1857 का विद्रोह था। सर सय्यद अहमद ख़ाँ ने अपनी पुस्तक ‘असबाबे बगावत-ए-हिन्द’ में इस सामाजिक विषमता को ही विद्रोह का कारण बताया।

लेकिन धीरे-धीरे भारत में लोक सेवा की स्थिति बदलने लगी। सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई। 1917 में प्रस्तुत प्रतिवेदन में लार्ड इस्लिंग्टन की अध्यक्षता में नियुक्त आयोग की सिफारिशों में एक चौथाई पद भारतीयों के लिए सुरक्षित रखने की बात कही गई। इसी बीच उच्च पदों पर भारतीयकरण की मांग की जाने लगी। उच्च पदों पर

भारतीय नियुक्त होने लगे लेकिन उनकी प्रवृत्ति भी वही रही जो अंग्रेज अधिकारियों की थी। उनका व्यवहार अपने यथाहत भारतीयों के साथ वैसा ही था जैसा अंग्रेज अधिकारियों का था। अन्तर केवल यह था, जहाँ अंग्रेज अधिकारी कुलीन वर्ग के थे, वहाँ भारतीय अधिकारी सामन्ती परिवारों से थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, नये परिवार संविधान के तहत संधीय आयोग की स्थापना की गई। भारतीय सिविल सेवा (के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा ने स्थान ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त भारतीय विदेश सेवा का गठन किया गया। पुनः सुधारों की श्रृंखला आरंभ हुई, जो ए0डी0 गोरवाला और एपल्पी (1953 से 1956 तक) की सिफारिशों का नतीजा थीं। अब भारत में तीन अखिल भारतीय सेवाएँ आरंभ हुई-अखिल भारतीय सेवाएँ, केन्द्रीय सेवाएँ तथा राज्य सेवाएँ।

1952 तक भारत में सामन्ती व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अतः अब लोक सेवाओं में जो प्रत्याशी चयनित होकर आने लगे वे अधिकांशतः मध्यमवर्गीय थे। मध्य वर्ग की अपनी संस्कृति और अपनी मानसिकता होती है, जिस से भारतीय लोक सेवा प्रभावित होने लगी। अतः इसी लोक सेवा ने जब नौकरशाही का रूप धारण किया, तो स्थिति और भयावह हो गयी। वे सारी बुराईयाँ जिन से भारतीय समाज ग्रस्त है, नौकरशाही में व्यक्त होने लगी- जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, संवेदनविहीनता, अलगाववाद, राजनीति तटस्थता के स्थान पर राजनीतिक वफादारी, उदासीनता और अकर्मठता। संक्षेप में भारतीय लोक सेवकों ने वह स्थिति प्राप्त कर ली है, जिसकी ओर ऐन्थानी डाउन्स ने इशारा किया अर्थात् आय और शक्ति की प्राप्ति, प्रतिष्ठा की चिन्ता, स्वयं को सुरक्षित रखने की भावना, सुविधाओं की ओर झुकाव। इस तरह समाज सेवा या राष्ट्र सेवा गौड़ हो जाती है।

### 5.12 नौकरशाही बनाम लोक सेवा के सकारात्मक पहलू

भारतीय नौकरशाही का नकारात्मक पहलू तस्वीर का एक रूख है। वह निराशाजनक आवश्यक है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आधुनिक नौकरशाही एक अनुपयोगी संस्था बन गई। आधुनिक नौकरशाही लोकसेवा के रूप में विकास के लिये अपरिहार्य है। इसके अभाव में राज्य या समाज लड़खड़ाकर गिर जायेगा। आज लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है। विकास प्रशासन की अवधारणा की उत्पत्ति और विकास प्रजातांत्रिक राजनीति, आर्थिक विकास का दबाव, व्यस्क मताधिकार, सार्वभौम शिक्षा, कल्याणकारी कार्यक्रम और ग्रामीण विकास से सम्बन्धित समाज का अधुनिकीकरण, वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति का नजरिया, प्रशासन की विषम और जटिल प्रकृति एवं राजनीतिक संगठन, संवैधानिक तकाजे, शहरी एवं ग्रामीण जन-परिस्थितियों से निपटने के लिये प्रभावशाली प्रबन्धन तथा प्रपंच की राजनीति के वातावरण में प्रशासनिक-राजनीतिक द्विविभक्तिकरण-यह वे सारी चुनौतियाँ हैं, जिनका नौकरशाही को साझा करना पड़ता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि लोक सेवा किसी न किसी हद तक इने चुनौतियों का सामना करने में सफल रही है।

आज प्रशासन विकास से जुड़ा हुआ है। विकास समाज के गतिशील परिवर्तन और एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर अग्रसर होने का दूसरी नाम है। विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास से नहीं है। विकास प्रशासन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों को कार्यान्वित करने की विधि से है। दूसरे, यदि प्रशासनिक क्षमताओं में वृद्धि होती है तो यह भी विकास है। विकास प्रशासन को नियोजित परिवर्तन माना जा सकता है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन का सम्बन्ध योजना, नीति, कार्यक्रम तथा परियोजन (Project) से है। विकास प्रशासन का रूप बहुआयामी है। इसका कार्यक्षेत्र विशाल है। इसमें शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, सिंचाई, परिवहन, सामाजिक न्याय सब कुछ आता है। यह किसी भी राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है। संक्षेप में नौकरशाही या लोक सेवा विकास प्रशासन का माध्यम है।

## अभ्यास प्रश्न-

1. सेवी वर्ग को किस विचारक ने “मानव शक्ति” कहा?
 

क. विलियम राइकर ने	ख. डेविड ईस्टन ने
ग. एल0डी0 व्हाइट ने	घ. मैसलो ने
2. विधिक-तार्किक नौकरशाही का विचार किसने प्रतिपादित किया?
 

क. फ्रेड रिग्स ने	ख. मैक्स वेबर ने
ग. हबर्ट साइमन ने	घ. कार्ल मार्क्स ने
3. इंग्लैण्ड के पहला लोक सेवा आयोग किस प्रशासक की सिफारिशों का परिणाम था?
 

क. चार्ल्स ट्रेवेलियन	ख. सर स्टेफर्ड
ग. ट्रेवेलियन नार्थकोट	घ. पीटर ड्रकर
4. भारत में भारतीय नागरिक सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का नाम किसने दिया?
 

क. जवाहरलाल नेहरू ने	ख. एप्लवी ने
ग. मौलाना आजाद ने	घ. सरदार बल्लभ भाई पटेल ने
5. व्हिटले कमेटी का सम्बन्ध किस देश से है?
 

क. अमरीका से	ख. जर्मनी से
ग. भारत से	घ. इंग्लैण्ड से
6. शब्द ‘नौकरशाही’ का प्रयोग किसने किया?
 

क. डी0 गोरने ने	ख. मैक्स वेबर ने
ग. एन्थानी डाउंस ने	घ. पार्सन्स ने

## 5.13 सारांश

- लोक सेवा वास्तव में प्रशासन का सार है। यह स्वयं में साध्य भी है और साधन भी। अपने शुद्ध रूप से यह एक सेवा है, लेकिन अपने विकृत रूप में यह नौकरशाही बन जाती है।
- प्रशासन के तीन अंग हैं- संगठन या प्रशासनिक संरचना; संगठन में कार्यरत् कर्मी जिनमें ऊँचे पद पर आसीन लोगों को अधिकारी या सेवी वर्ग कहा जाता है, तथा नीतियाँ, नियम तथा विनियम जिनके तहत सेवी वर्ग प्रशासन का संचालन करता है।
- लोक सेवा विकास का परिणाम है। वैसे तो अपने आधुनिक रूप में यह इंग्लैण्ड की देन है लेकिन भारत में इसकी जड़े प्राचीन भारत, मुगल काल तथा ब्रिटिश काल तक फैली हुई है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन काल समाप्त होने के बाद भारत में लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो गयी। विकास की यह प्रक्रिया आज तक चल रही है।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में लोक सेवा चहुमुखी विकास की शर्त बन गई। सेवी वर्ग का कुशल, प्रशिक्षित तथा विशिष्टीकरण, पक्षपात रहित सेवी वर्ग का चयन तथा राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ और संवेदनशीलता यह सेवी वर्ग के गुण हैं।
- लोक सेवा को नौकरशाही का नाम दिया गया है। जब परहित के स्थान पर आत्म हित हावी होता है तो लोक सेवा नौकरशाही बन जाती है। यह एक बदनाम शब्द है, जिसको जन विरोधी मानसिकता का नाम दिया गया है।

- मैक्स वेबर ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है और नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया है जो उसके विधिक-तार्किक सिद्धान्त पर आधारित है। वह नौकरशाही को आधुनिक राज्य के लिए अपरिहार्य मानता है। अधिकांश देशों ने वेबर के मॉडल को स्वीकार किया है। इस मॉडल की जो विशेषताएं उसने बताई हैं, उनमें-शासकीय कार्य की निरन्तरता; प्रशासनिक अभिकरण का अस्तित्व, लिखित नियम; पदसोपनियता, निर्वैयक्तिकरण; लिखित दस्तावेज इत्यादि।
- लोक सेवा कल्याण राज्य का अभिन्न अंग है। इसका लक्ष्य जनतंत्रीय समाज में संवैधानिक तकाजों को पूरा करना है; साथ ही जन-कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को पूरा करना है और आकस्मिक आपदाओं और संकट कालीन परिस्थितियों में जन समाज को सुरक्षा प्रदान करना है।
- लोक सेवा और नौकरशाही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों में बहुत सी समानताएँ हैं लेकिन अन्तर के केवल मनोवैज्ञानिक है।
- नौकरशाही की मानसिकता भारत को इंग्लैण्ड से विरासत में मिली है। अन्तर यह है कि पहले यह कुलीन और सामन्ती थी, लेकिन अब मध्यवर्गीय है जो समाज की सभी असामाजिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती है। इस दृष्टि से यह अधिक कष्टदायक है।
- भारतीय लोक सेवा पर इंग्लैण्ड में होने वाले सुधारों का गहरा प्रभाव पड़ा है, व्हिटले कमेटी, राल्फ एशटन कमेटी और फुल्टन कमेटी की सिफारिशों को भारतीय लोक सेवा ने भी स्वीकार किया। इन सुधारों का सारांश लोक सेवा की भर्ती, प्रशिक्षण तथा सेवा शर्तों से भी है और लोक सेवा की संरचना, संगठन और कार्य विधि से भी। इन सुधारों ने लोक सेवा की प्रकृति को तय किया है।
- लोक सेवा की प्रकृति के नौ प्रमुख लक्षण हैं: विकास का परिणाम; अनेक वर्गों में विभाजित; ब्रिटिश लोक सेवी ताज के सेवक; न्यायालय नियंत्रण क्षेत्र से बाहर; नियमनों के अनुसन्धान काम, सुरक्षा की गारन्टी; राजनीतिक तटस्थता; नौकरशाही की सुरक्षा की अनुकूल शर्तें; कल्याणकारी प्रवृत्ति तथा सेवी वर्ग में निरन्तर वृद्धि।
- एन्थॉनी डाउन्स ने नौकरशाही को सकारात्मक रूप में लिया है। वह इस संस्था को ब्योरो कहता है और नौकरशाहों को अधिकारी कहना पसन्द करता है। आफिशियल की विशेषता है, परहित के साथ-साथ आत्महिता।
- लोक सेवा का सम्बन्ध विकास से है। विकास का बड़ा व्यापक अर्थ है, इसलिये प्रशासन को आज विकास के संदर्भ में देखा जाता है।

#### 5.14 शब्दावली

ब्योरियॉक्रेसी- यह एक फ्रांसीसी शब्द है, जिसका सर्व प्रथम प्रयोग 18वीं सदी के अर्द्ध में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया था। तत्पश्चात् 19वीं सदी में इस शब्द का प्रयोग जे0एस0 मिल, मोस्का और मिशेल ने, जबकि मैक्स वेबर ने इसी समय में इस शब्द का प्रयोग किया। ब्योरियॉक्रेसी का अर्थ कार्यालय या सरकारी कार्यालय से लिया जाता है। ब्योरों का अर्थ है विभाग।

प्रशासनिक विकास- इसका अर्थ मात्र आर्थिक या सामाजिक विकास से नहीं है। इसका अर्थ मानसिक स्थिति से है। एक स्थिति से दूसरी अधिक व्यापक स्थिति की ओर अग्रसर होना विकास है। यह भौतिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। यह सम्पूर्ण परिवर्तन की शर्त है।

विधिक-तार्किक प्रतिमान- मैक्स वेबर ने नौकरशाही का यह मॉडल तैयार करके लोक सेवा के क्षेत्र में एक क्रान्ति का काम किया है।

निर्वैयक्तिक- जहाँ व्यक्ति या अधिकारी एक उपकरण या मशीन के रूप में काम करें, जिस की अपनी कोई इच्छा या हित न हो। जो केवल संरचना या नियमों के अनुसार काम करें, जिसमें उसका अपना व्यक्तित्व शामिल न हो।

### 5.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, 2. ख, 3. ग, 4. घ, 5. घ, 6. क

### 5.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन।
2. डी0 रविन्द्र प्रसाद, वी एस प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक।
3. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
4. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
5. Dwight Waldo : The Study of Public Administration.
6. Fred W. Riggo : Administration in Developing Countries.

### 5.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. D. Ravinddra Prasad : Administrative Thinkers.
2. Albrow, Martin : Bureaucracy, London, 1970.
3. Arora, Ramesh : Administrative Theory, New Delhi, 1984.
4. Blau, Peter : Bureaucracy in Modern Society, New York, 1962.

### 5.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक सेवा का अर्थ समझाइये तथा लोक सेवा और नौकरशाही के संबंधों पर प्रकाश डालिये
2. आधुनिक नौकरशाही की क्या विशेषताएं हैं? भारतीय संदर्भ में नौकरशाही और लोक सेवा के संबंधों को समझाइये।
3. विकास प्रशासन का क्या अर्थ है? क्या लोक सेवा विकास प्रशासन है?

## इकाई- 6 नौकरशाही के आधार

### इकाई की संरचना

- 6.0 प्रस्तावना
- 6.1 उद्देश्य
- 6.2 नौकरशाही: एक विवेचना
- 6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही
- 6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार
- 6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विश्लेषण
- 6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल
- 6.7 ऐन्थोनी डाउन्स और नौकरशाही
- 6.8 पर्यावरणीय सिद्धान्त और नौकरशाही
- 6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू
- 6.10 सारांश
- 6.11 शब्दावली
- 6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 6.15 निबंधात्मक प्रश्न

### 6.0 प्रस्तावना

इस इकाई में नौकरशाही के आधारों का विश्लेषण किया गया है। वास्तव में सभी प्रशासनिक चिन्तकों ने नौकरशाही के अभिलक्षण और उसके सिद्धान्तों पर बहस की है। इन्हीं विशेषताओं को नौकरशाही के आधार कहा जा सकता है। ये आधार सार्वभौमिक हैं और स्थायी हैं। नौकरशाही का सबसे बड़ा सिद्धान्तकार मैक्स वेबर है। सभी अन्य चिन्ताकें ने उसका अनुसरण किया है। वेबर का नौकरशाही का मॉडल विधिक-तार्किक नाम से जाना जाता है। “वैधानिकता” और “तार्किकता” यही दो ऐसी अवधारणाएँ हैं जो नौकरशाही को आधार प्रदान करती हैं।

नौकरशाही का दूसरा चिन्तक कार्ल मार्क्स है जो नौकरशाही के नाकारात्मक रूप को दर्शाता है। उसकी नजर में नौकरशाही का आधार आर्थिक अथवा भौतिक व्यवस्था है, जिसको वह पूंजीवादी और सामन्तीवादी कहता है। इस व्यवस्था के संरक्षक ही नौकरशाही के आधार हैं। नौकरशाही परजीवी है और उसका काम पूंजीवादी वर्ग की यथास्थिति को बनाये रखना है।

हीगेल ने नौकरशाही का आधार राज्य को माना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व की सबसे महान अभिव्यक्ति है। ऐन्थोनी डाउन्स ने ब्योरोज को नौकरशाही का आधार माना है। दूसरी ओर रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को नौकरशाही का निर्णायक आधार माना है।

### 6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- नौकरशाही के चरित्र, स्वरूप, अभिलक्षणों का समझ सकेंगे।

- मैक्स वेबर की विधिक-तार्किक नौकरशाही को जान पायेंगे।
- वेबर के अनुसार वैधानिकता और तार्किकता ही नौकरशाही के वास्तविक आधार हैं, ये समझ पायेंगे।
- मार्क्स द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की नकारात्मक भूमिका को जान पायेंगे और समझ पायेंगे कि राज्य का अस्तित्व किस तरह नौकरशाही के लिए अनिवार्य है।
- ऐन्थानी डाउन्स की नजर में नौकरशाही ब्योरोज पर टिकी हुई है। ब्योरोज की विशेषता क्या है, ये समझ पायेंगे।
- रिग्स किस तरह परिवेश को नौकरशाही का आधार मानता है, यह जान पायेंगे।

## 6.2 नौकरशाही: एक विवेचना

सेवी वर्ग अथवा लोकसेवकों ने एक संस्था का रूप ले लिया है, जिसे लोक प्रशासन में नौकरशाही का नाम दिया गया है। अभी तक नौकरशाही या ब्योकरियॉक्रेसी की कोई निश्चित सर्वमान्य परिभाषा सामने नहीं आई है। केवल उसके अभिलक्षणों, स्वरूपों के आधार पर नौकरशाही को पहचाना जा सकता है। अपनी, एक विशिष्ट मानसिकता और व्यवहार के कारण नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन गया है। लेकिन मैक्स वेबर ने नौकरशाही का पक्ष लेते हुये, उसे प्रशासनिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य अंग बनाकर उसको एक वैज्ञानिक शास्त्र बनाने का प्रयास किया है। जिस गहनता के साथ वेबर ने नौकरशाही का अध्ययन करके उसका एक प्रतिमान तैयार किया है, उस कारण वेबर और नौकरशाही एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं।

नौकरशाही की अवधारणा की जन्म स्थली जर्मनी है। इसका नामकरण फ्रांस में हुआ है। इंग्लैण्ड में इसका पालन पोषण हुआ है और अब संसार के कोने-कोने में यह फल-फूल रही है। आज यह आधुनिक प्रशासनिक संस्कृति का एक अविभाज्य अंग बन चुकी है।

नौकरशाही एक प्रशासनिक संरचना भी है, एक नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण के कार्यान्वयन का एक माध्यम भी है और एक मानसिकता भी फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डी० गोरने से लेकर जे०एस० मिल, मोसनका और मिशेल जैसे राजनीतिक दार्शनिकों ने नौकरशाही को अपने चिन्तन का विषय बनाया। यहाँ तक कि यह राजनीतिक चिन्तन की परिधि से निकल कर समाजशास्त्र के दायरे में आ गयी। आज यह लोक प्रशासन का विषय है तो केवल इसलिए कि बिना नौकरशाही के प्रशासन एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

मैक्स वेबर, मार्क्स, हीगेल और एन्थॉनी डाउंस ऐसे चार चिन्तक हैं, जिन्होंने अपने-अपने नजरिये से नौकरशाही के अभिलक्षणों और आधारों पर प्रकाश डाला है। यहाँ चारों के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयास किया जायेगा।

## 6.3 मैक्स वेबर और नौकरशाही

मैक्स वेबर ने कहीं भी नौकरशाही को परिभाषित नहीं किया है और न ही उसके आधारों पर बहस की है। उसने केवल नौकरशाही के अभिलक्षण बताए हैं और लक्षणों के आधार पर उसने नौकरशाही के रूप को प्रस्तुत किया है।

यहाँ हम वेबर द्वारा प्रस्तुत विधिक-तार्किक नौकरशाही के अभिलक्षणों की संक्षिप्त चर्चा करके यह बताने का प्रयास करेंगे कि नौकरशाही की विशेषतायें ही वास्तव में नौकरशाही के आधार हैं, जिनकी अनुपस्थिति में नौकरशाही का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

सर्वप्रथम यह याद रखना है कि वेबर ने 'सत्ता' पर बहुत अधिक बल दिया है, और सत्ता की रौशनी में उसने दो प्रकार की नौकरशाही की पहचान की है- वंशानुगत नौकरशाही जो परम्परागत और करिश्माई सत्ताओं की विशेषता है; और विधिक-तार्किक नौकरशाही जो केवल कानून के दायरे में पाई जाती है तथा जिसके औचित्य के

पीछे तार्किकता अथवा विवेक होता है। वेबर की नौकरशाही की अवधारणा का यही विधिक-तार्किक पहलू है, और वह इसी सिद्धान्त को आदर्श नौकरशाही के मॉडल का आधार मानता है। मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही का मॉडल वास्तव में प्रशासन और लोक सेवा के क्षेत्र में एक अद्भुत क्रान्ति है, जिसके पक्ष एवं विरोध में बहुत कुछ लिखा जाता रहा है, लेकिन उसका यह सिद्धान्त अकाट्य है।

वेबर ने नौकरशाही के आधारों की व्याख्या से पहले कुछ तार्किक परिकल्पनाओं का सहारा लिया है। वह सर्वप्रथम इस परिकल्पना के साथ आगे बढ़ता है कि किसी भी प्रकार की 'सत्ता' के पीछे मौलिक रूप से 'वैधता' होती है। उसका विश्वास है कि सत्ता की वैधता पांच महत्वपूर्ण विश्वासों (Beliefs) पर आधारित है-

1. प्रशासन में एक कानूनी नियम का अस्तित्व होता है जिसके माध्यम से संगठन के सदस्यों से आदेशों का पालन कराया जा सके।
2. कानून नियमों की भावनात्मक अथवा निराकार व्यवस्था का नाम है, जो विशिष्ट मामलों पर लागू होता है तथा संगठन का हित देखता है।
3. वह व्यक्ति जो सत्ता का प्रयोग करता है (अधिकारी) वह भी इस निर्वैयक्तिक आदेश का पालन करता है।
4. केवल एक सदस्य ही सदस्य की हैसियत से कानून का पालन करता है (एक संगठन के अन्दर)।
5. आदेश का पालन सत्ताधारी व्यक्ति का नहीं होता है, बल्कि उस निर्वैयक्तिक व्यवस्था का होता है जो उस व्यक्ति को पद प्रदान करती है।

उक्त पाचों विश्वासों का सारांश यह है कि कानून सर्वोपरि है। कानून निर्वैयक्तिक है। सत्ता का आधार कानून है। जिस व्यक्ति को यह प्राप्त होता है, वह सत्ताधारी है, लेकिन आदेश के पालन का अर्थ है निर्वैयक्तिक व्यवस्था का पालन। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निर्वैयक्तिक व्यवस्था तथा वैधता में गहरा सम्बंध है। यह सम्बंध ही नौकरशाही का सब से मजबूत आधार है।

नौकरशाही क्यों अस्तित्व में आई, इसका कारण बताते हुये वेबर ने लिखा- ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारणों ने सर्वप्रथम नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया आरंभ की, कानून के शासन ने नौकरशाही का संगठनात्मक ढाँचा तैयार किया, अधिकारियों की विशिष्ट योग्यता, उनकी पेशेवराना महारत तथा उनके विशिष्ट आचरण तथा सोच ने उनको एक अभिजात वर्ग का दर्जा दे दिया तथा आधुनिक संसार में नौकरशाही की महत्वपूर्ण भूमिका है, विशेष रूप से सरकारी संस्थाओं में स्वयं नौकरशाही ने शासकीय रूप ले लिया।

इस तरह संक्षेप में नौकरशाही के चार आधारों की ओर वेबर ने इशारा किया कि तकनीकी और प्रशासनिक प्रगति: कानून के शासन का अस्तित्व: अधिकारियों की विशिष्ट प्रशासनिक पहचान: तथा (घ) सरकारी संस्थाओं का फैलाव।

#### 6.4 वैबेरियन नौकरशाही के आधार

मैक्स वेबर ने नौकरशाही से सम्बंधित, अपना मान्यताओं परिकल्पनाओं तथा विश्वासों के आधार पर विधिक तार्किक नौकरशाही का जो एक आदर्श प्रतिमान तैयार किया, वह छः विशेषताओं पर टिका हुआ है, जिनको नौकरशाही का आधार कहा जा सकता है। यह विशेषताएँ या आधार हैं- (1) निर्वैयक्तिक व्यवस्था (2) नियम (3) सामर्थ्य का क्षेत्र (4) पदानुक्रम (5) व्यक्तिक तथा लोक ध्येय: तथा (6) लिखित दस्तावेज। इन्हीं बिन्दुओं पर आगे चलकर विस्तार से चर्चा की जाएगी-

1. **निर्वैयक्तिक व्यवस्था-** निर्वैयक्तिक व्यवस्था वेबर की नौकरशाही की सब से अधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रशासनिक सत्ता या शक्ति का केन्द्र वह वह पद या विभाग है यहाँ अधिकारी पदासीन है, न कि कोई विशेष व्यक्ति।

2. **नियम-** किसी भी प्रशासनिक इकाई में नियम सर्वोपरि है, जिनके तहत संगठन की संरचना तथा सत्ता का आकार या प्रयोग तैय होता है। यही तार्किकता है और यही विधिक तार्किक सिद्धांत का सार है। मर्टन ने बेवर के इस विचार की सराहना की है लेकिन वह यह भी मानता कि प्रशासक का नियमों से चिपके रहना विलम्ब को जन्म देता है जो प्रशासन के लिये घातक है।
3. **सामर्थ्य का क्षेत्र-** इसका अर्थ है कि प्रत्येक अधिकारी को उसकी क्षमता अथवा सामर्थ्य के अनुसार वह कार्य सौंपा जाता है, जो श्रम विभाजन के क्रमवद्ध व्यवस्था के अनुसार होता है। दूसरे, अधिकारी को दिये गये कार्यों को करने की सत्ता भी सौंपी जाती है, तीसरे अधिकारियों को कार्यों को सम्पन्न करने के लिये परिभाषित साधन भी मोहय्या कराये जाते हैं। इस तरह अधिकार अपनी क्षमता का सदुपयोग कर सकता है।
4. **पदसोपान अथवा पदानुक्रम-** पदानुक्रम का अर्थ यह है कि प्रत्येक कार्यालय का संगठन पदानुक्रम सिद्धांत का पालन करता है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक अवर या निचला कार्यालय उच्चतर के नियंत्रण तथा निरीक्षण के अधीन रहता है। इसका अर्थ यह भी है कि सर्वोच्च सत्ता के अधीन पूर्ण प्रशासनिक स्टाफ निश्चित पदानुक्रम के अनुसार काम करता है।
5. **व्यक्तिक तथा लोक ध्येय-** इसका अर्थ है कि अधिकारी के व्यक्तिक हित और जन हित प्रशासनिक दृष्टि से पूरी तरह प्रथक हैं। प्रशासनिक अधिकारी उत्पादन के साधनों के स्वामी नहीं है और न ही प्रशासन उनके अपने हित की पूर्ति के लिए है। यह नियम नौकरशाहों पर पाबन्दियाँ लगाकर पद या स्थिति के दुरुपयोग को रोकता है।
6. **लिखित दस्तावेज-** वेबेरियन नौकरशाही की अन्तिम विशेषता यह है कि सभी प्रशासनिक कृत्यों, निर्णयों, तथा नियमों को लिखित रूप में तैयार किया जाता है और इनका लिखित रूप में रिकार्ड रखा जाता है। यहाँ तक कि मौखिक बातचीत को भी लेख बद्ध किया जाता है। यह दस्तावेज प्रशासन को जवाबदेह बनाता है और भविष्य की कार्यवाही के संदर्भ का काम करता है।

वेबेरियन मॉडल की कुछ और विशेषताएँ भी हैं, जैसे- तकनीकी तौर पर योग्य और अर्हता प्राप्त लोगों का चयन, उनको निश्चित वेतन मिलना, पूर्ण कालिक पेशा, पदोन्नति के अवसर, कठोर अनुशासन तथा नियंत्रण। अन्तिम विशेषता नौकरशाही प्रशासन का एकतंत्रीय होना है। प्रशासन तकनीकी दृष्टि से सर्वोत्तम क्षमताओं का परिचय देती है।

### 6.5 नौकरशाही के आधार पर मार्क्स का विश्लेषण

मार्क्स नौकरशाही का सिद्धान्तकार नहीं था, लेकिन उसने नौकरशाही का जिस नजरिए से विश्लेषण किया वह साम्यवादी सोच का नतीजा है उसके अनुसार नौकरशाही की उत्पत्ति के चार स्रोत हैं - धर्म, राज्य का अस्तित्व वाणिज्य तथा यांत्रिकी अथवा टेकनॉलोजी।

1. अपने प्रारम्भिक काल में धर्म शास्त्रियों (पण्डित, पादरी) का धार्मिक परम्पराओं को निभाने के लिए महत्वपूर्ण अधिकार ग्रहण करना और तत्पश्चात् प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना। धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण, निर्णय तथा विधि निर्माण के अधिकार प्राप्त करना, यहाँ तक कि धर्म के दायरे से निकलकर सामाजिक वर्गों में विभाजित होना और अन्तः शासकों, प्रशासकों या नौकरशाहों का दर्जा प्राप्त कर लेना।
2. सामाजिक वर्गों के आन्तरिक द्वन्द ने राज्य को जन्म दिया। प्रशासकों के माध्यम से कानूनों का निर्माण और उनका कार्यान्वयन आरम्भ हुआ। इन्हीं के माध्यम से कराधान की व्यवस्था हुई और अन्ततः अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण इनको नौकरशाह कहलाया जाने लगा।

3. राज्य के विकास ने आर्थिक अथवा वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ाईं। वित्त प्रबन्धन के सारे दायित्व प्रशासकों को सौंपे गये। वाणिज्यिकी प्रशासन-प्रबन्धन ने नौकरशाहों को राज्य के लिए अपरिहार्य बना दिया।
4. तकनीकी और यांत्रिकी विकास ने आर्थिक औद्योगिक विकास के नये दरवाजे खोल दिये। पूंजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आ गई। यहां वर्ग-टकराव और तेज हो गया नौकरशाही की भूमिका भी बदल गई अब नौकरशाहों का पूंजीपतियों, सामन्तियों और शासकों के हितों की रक्षा करना परम् का धर्म हो गया। यहाँ तक कि यांत्रिकी और नौकरशाही का एक नया सम्बंध सामने आ गया, जिसे ब्योरियों क्रेसी के साथ-साथ टेक्नॉक्रेसी या शिल्पतिज्ञ कहा गया।

मार्क्स बनाम नौकरशाही के संदर्भ में यह याद रखना है कि नौकरशाही, राज्य और आर्थिक अथवा भौतिक परिवेश का आपस में गहरा सम्बन्ध है। आर्थिक व्यवस्था ने राज्य के स्वरूप, चरित्र और लक्ष्य को निश्चित किया है। राज्य के हितों की रक्षा के लिए नौकरशाही एक उपकरण के रूप में काम करती है।

यहाँ सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मार्क्सवादी नजरिए से नौकरशाही का पहला और अन्तिम आधार राज्य है। जब तक राज्य का अस्तित्व है तब तक नौकरशाही का भी अस्तित्व है। मार्क्स ने राज्य के विलुप्तिकरण के सिद्धांत से इसी सत्य की ओर इशारा किया है। उसके अनुसार समाजवादी या साम्यवादी व्यवस्था में राज्य विलुप्त हो जायेगा, तब नौकरशाही भी अर्थहीन हो जाएगी।

नौकरशाही किस तरह राज्य अथवा उत्पादन के स्वामियों की रक्षा करती है, इस बात को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने लिखा- नौकरशाही का चरित्र ही दूबकारी है। वह पूंजीपतियों, सामन्तियों तथा सत्ता धारियों के हितों की रक्षा के लिए समाज के कमजोर तबकों का दमन करती है। नौकरशाही अपनी नियंत्रकीय शक्ति के माध्यम से सत्ताधारी वर्ग के हितों को आगे बढ़ाती है। उसकी प्रकृति रहस्यमयी है। वह अपनी इस विशेषता से सत्ताधारियों की वास्तविकताओं को गोपनीय और रहस्यमय बनाए रखती है। और समाज और सत्ताधारियों के मध्यम अलगाव को गहरा करती है, तथा सत्ताधारियों की रक्षा करके, कमजोर तबकों को कुचल कर और व्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखकर, नौकरशाही स्वयं अपने अस्तित्व को बनाए रखती है, क्योंकि मार्क्स के अनुसार नौकरशाही परजीवी है।

## 6.6 नौकरशाही, राज्य और हीगेल

मार्क्स के समान हीगेल ने भी नौकरशाही का आधार राज्य को ही माना है, लेकिन जहाँ राज्य एवं नौकरशाही के बारे में मार्क्स का नजरिया नकारात्मक है, वही हीगेल दोनों संस्थाओं को सकारात्मक रूप में लेता है।

हीगेल के अनुसार नौकरशाही राज्य का एक मुख्य शासी निकाय है। राज्य सामाजिक व्यवस्था का अन्तिम विकास है तथा मनुष्य की आत्म अभिव्यक्ति का सर्वोच्च अन्तिम चरण है। जब राज्य अस्तित्व में आ जाता है तब स्वतः जन क्रियाएँ आरंभ होती हैं। इस परिवेश में शासक नौकरशाह तथा नारियों के स्वामी राजनीतिक अनिकताओं की भूमिका अदा करते हैं।

हीगेल के अनुसार राज्य तथा लोक समाज में अन्तर है। लोक समाज विशेष वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन राज्य जनहित की अभिव्यक्ति है। नौकरशाही दोनों निकायों को जोड़ने का काम करती है। अतः हीगेल की नजर में भी नौकरशाही का आधार राज्य ही है, लेकिन उसकी भूमिका सकारात्मक और रचनात्मक है। राज्य की प्रकृति में सार्वभौमिकता है। इसलिए नौकरशाही भी सार्वभौमिक है: यह सामान्य हितों की रक्षा करती है और समाज की प्रत्येक बात को कानून की कसौटी से देखती है।

हीगेल नौकरशाही के तीन आधार मानता है- (क) नौकरशाही निश्चित परिभाषित पदानुक्रम पर आधारित सम्बंधों की एक व्यवस्था है, जिस में विशिष्टीकरण के साथ पद सत्ता भी है (ख) नौकरशाही का आधार समाज का मध्य

वर्ग है। वे मध्य वर्ग से आकार वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था का अंग बन जाते हैं (ग) इस समावेश के बाद नव नियुक्त अधिकारी एक विनियोगक यांत्रिकी के अनुसार काम करते हैं, जिसका अर्थ है आन्तरिक व बाहरी दबावों के अनुसार काम करना। यह दबाव युवा नौकरशाहों के आचरण और स्वभाव को निश्चित करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मार्क्स और हीगेल दोनों ही राज्य को नौकरशाही का आधार मानते हैं। मार्क्स राज्य को दमनकारी मानता है और नौकरशाही को इस दमन का एक उपकरण (apparatus)। लेकिन हीगेल राज्य को ईश्वर की एक प्रतिछाया मानता है, जिसका लक्ष्य मनुष्य का नैतिक और भौतिक उत्थान है और नौकरशाही इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक सहयोगी की भूमिका अदा करती है।

### 6.7 ऐन्थॉनी डाउन्स और नौकरशाही

ऐन्थॉनी डाउन्स ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'इनसाइड ब्योकुरियॉकरेसी' (Inside Bureaucracy) में नौकरशाही का विश्लेषण किया है। उसने यह स्वीकार किया है कि नौकरशाही एक बदनाम शब्द बन चुका है, जबकि सच यह है कि नौकरशाही का उद्भव ब्योरोज (Bureause) से हुआ है जो आज सम्पूर्ण सभ्य समाज की प्रशासनिक व्यवस्था पर छाया हुआ है।

विवादों से बचने के लिए उसने नौकरशाही के स्थान पर आधिकारीतंत्र तथा नौकरशाहों के स्थान पर 'अधिकारी' (officials) कहना पसंद किया है।

डाउन्स के अनुसार 'ब्योरोज' नौकरशाही या अधिकारीतंत्र का पहला आधार है। उसने ब्योरोज का विशद विश्लेषण किया है -

1. ब्योरोज का अर्थ है सरकारी कार्यालय, जिनका रूप भले ही विभागीय हो, सम्भागीय अथवा आयोगीय हो।
2. ब्योरोज अधिकारियों के समूह हैं जिनका प्रायः आकार बड़ा होता है, जो स्वतः अपना बड़ा आकार ग्रहण करते रहते हैं।
3. ब्योरोज संगठन का एक विशिष्ट रूप है जिनमें वे सारी विशेषताएँ होती हैं जिनसे एक संगठन पहचाना जाता है।
4. ब्योरोज की विशेषता उनकी सार्वभौमिकता है। समाज के प्रत्येक पहलू- आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक पहलुओं पर उनकी गहरी छाप है। वे इन क्षेत्रों में निति-निर्माण का कार्य करते हैं।

डाउन्स के अनुसार ब्योरोज का आधार 'संगठन' है। लोक प्रशासन में संगठन मात्र एक ढांचा या संरचना नहीं है। संगठन एक स्पष्ट परिभाषित इकाई है जो निश्चित सिद्धांतों पर टिका होता है। अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने इस पर विस्तार से लिखा है, जिनमें मार्च, साइमन, बलाओं और स्कॉट ने संगठन की औपचारिकता को मुख्य रूप से दर्शाया है। लेकिन डाउन्स वह पहला चिन्तक है, जिसने ब्योरोज और संगठन में गहरा सम्बंध स्थापित किया है। उसके अनुसार ब्योरोज का पूर्ण व्यवहार संगठन निश्चित करता है।

कर्मचारी किसी भी संगठन की आत्मा है। इस मानवीय पहलू के बिना ब्योरोज या संगठन पर चर्चा करना अर्थहीन है। ऐन्थॉनी कर्मचारीगण (Personell) को अधिकारी अथवा 'आफिशियल्ज' कहता है। इनमें और नौकरशाहों में कोई अन्तर नहीं है। इन अधिकारियों की अनेक विशेषताएँ हैं: (1) ये अधिकारी सर्वोपरि 'आत्मनहित से प्रेरित होते हैं, यद्यपि जन हित भी इनका ध्येय होता है। (2) अधिकारी एवं कर्मचारी पूर्ण कालिक आधार पर काम करते हैं; (3) संगठन के भीतर ही उनकी पदोन्नति होती है; (4) वे अपने से उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करते हैं (5) नौकरशाह एक बड़े आकार के ब्योरोज का सदस्य होता है (6) नौकरशाह किस महारत से अपने कर्तव्य को अन्जाम देता है, यह पदोन्नति का मापदण्ड होता है, तथा (7) नौकरशाह का ध्येय, शक्ति प्राप्त करना, अपनी आय

बढ़ाना, अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना, अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना, सुख सुविधाएँ प्राप्त करना और अपने कार्य पर गर्व करना विशेष महत्व रखता है।

डाउन्स की नजर में नौकरशाही का चौथा आधार पर्यावरण है। यहाँ पर्यावरण का अर्थ है वह स्थिति जिस में अधिकारी काम करते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अधिकारी परिस्थितियों के अनुसार काम करते हैं। पर्यावरण अधिकारियों का वास्तविक संसार होता है। वे इस संसार को बदलते नहीं हैं, बल्कि उसके अनुसार स्वयं को बदलते हैं। उनको इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि राजनीतिक व्यवस्था का क्या रूप है- वे लोकतंत्र में, राजतंत्र में, कुलीन तंत्र में और अधिनायक तंत्र में स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेते हैं- समाजवाद में वे समाजवादी, पूंजीवाद में वे पूंजीवादी, और साम्यवाद में वे साम्यवादी नजर आते हैं। धर्म निरपेक्षता में वे धर्म निरपेक्ष, और धर्मपरकता में वे धर्मान्धी भी बन सकते हैं। लेकिन यह सब चोले आस्थायी होते हैं। स्थायी होता है उनका अपना निजि स्वार्थ जो ब्योरोज के बढ़ने और विकसित होने से पूरा होता है।

डाउन्स ब्योरोज की सफलता के लिए संगठन की पदसोपनीयता पर जोर देता है। यही वही बिन्दु है जिस पर सब से अधिक बल मैक्स वेबर ने दिया था। पद सोपनीय संरचना से आदेश, आदेश के अनुपालन और उत्तरदायित्व के मध्य समन्वय और अनुशासन के माध्यम से सन्तुलन पैदा होता है। इस सिद्धांत से संवाद में आसानी होती है। सूचना एवं संचार में प्रवाह बना रहता है। और इस तरह ब्योरोज का ध्येय पूरा होता है।

संक्षेप में डाउन्स ने नौकरशाही का सब से महत्वपूर्ण आधार ब्योरोज को ही माना है। उसने ब्योरोज के आचरण पर खुल कर लिखा है उसका मानना है कि ब्योरोज पैदा नहीं होते हैं, वे बनाए जाते हैं। उसके अनुसार उत्साही अथवा जोशीले नौकरशाह नित्य नये ब्योरोज को बनाने की सोचते रहते हैं, ताकि उनको पदोन्नति के अवसर मिलते रहें और युवा नौकरशाहों के लिए रास्ते खुलें।

## 6.8 पर्यावरणीय सिद्धांत और नौकरशाही

नौकरशाही के आधारों में पर्यावरणीय सिद्धांत एक मजबूत और निर्णायक आधार है। यह एक ऐसा आधार है जो भौतिक भी है और मनोविज्ञानिक भी। नौकरशाही के मानवीय पहलू को यदि प्रभावित करने वाला कोई तत्व है तो वह पर्यावरणीय तत्व ही है, जो मनुष्य के पूरे व्यवहार को तैय करता है।

नौकरशाही मानवों का एक ऐसा समूह है जो अत्याधिक जागरूक एवं संवेदशील होता है। कुछ तो वह स्वयं एक विशिष्ट चिन्तन का मालिक होता है और कुछ प्रशिक्षण के माध्यम से उसके व्यवहार को ढाला जाता है। संक्षेप में, नौकरशाही और उसका पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः इस प्रक्रिया के गतिज को समझना नौकरशाही की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने के लिए जरूरी है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण जैसे शब्द को वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। जिस तरह पेड़-पौधे अपने पर्यावरण से प्रभावित होकर फलते-फूलते हैं, इसी तरह प्रशासन भी अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होकर अपनी दिशा और दशा तैय करता है।

प्रशासन पर वरचस्व नौकरशाही का होता है। अतः प्रशासन पर पर्यावरणी के प्रभाव का अर्थ है, नौकरशाही के आचरण को प्रभावित करना। इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन गॉस, राबर्ट ए0ढल और राबर्ट मर्टन ने किया, लेकिन इस दृष्टिकोण का सब से प्रभावशाली चिन्तक फ्रेड रिग्म् है। उसने प्रशासन का आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, तकनीकी, राजनीतिक और संचार तत्वों के साथ सम्बंध निश्चित करके यह सिद्ध किया कि प्रशासनिक व्यवस्था को, जिस पर नौकरशाही का नियंत्रण है, पर्यावरण प्रभावित करता है।

नौकरशाहों के विचार, उन की सोच और आचरण सब पर पर्यावरणीय परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ता है और बदले में वे अपने आचरण से समाज में भी बदलाव लाते हैं। इसलिए किसी प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही की भूमिका अहम होती है, क्योंकि वे नीति-निर्माण, निर्णय-निर्माण तथा विधि निर्माण को प्रभावित करते हैं।

## 6.9 नौकरशाही के आधार का व्यवहारिक पहलू

नौकरशाही की विशेषता, चरित्र, स्वरूप अथवा उसके आधारों के बारे में अब तक जो कुछ लिखा गया है वह नौकरशाही के सिद्धांतकारों अथवा विश्लेषण कर्ताओं के अनुमानों, परिकल्पनाओं और औपचारिक विश्वासों का परिणाम है, जो औपचारिकताओं से भरपूर है। नौकरशाहों या प्रशासनिक अधिकारियों का अपना एक अलग संसार है जिसमें रहकर वे काम करते हैं, जिसमें किसी बाहरी शक्ति का दखल नहीं है और यदि है भी तो वह उसे कूड़ेदान में फेंक देते हैं।

नौकरशाह इस परिकल्पना पर चलते हैं कि प्रशासन एक वैज्ञानिक परिस्थिति के एक मनोवैज्ञानिक स्थिति भी है, जैसे प्रशासकों के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। एक दृष्टि से ये व्यवहार परिकतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित होते हैं। नौकरशाह मशीन नहीं है, न ही वे रोबो है वह हाड़-मांस के मनुष्य हैं, जिनकी अपनी इच्छाएँ हैं, अभिलाषाएँ हैं इनकी अपनी कल्पनाएँ हैं, अपने लक्ष्य हैं, अपने हित हैं जिन से यह प्रभावित होते हैं। इनका व्यवहार परिस्थितियों का भी दास है। अतः यह औपचारिकताओं का कम अनौपचारिकताओं का सहारा अधिक लेते हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो विलम्ब की बीमारी बढ़ेगी और भ्रष्टाचार के रूप में उभरेगी।

राजनीतिज्ञों के फैसले अटपटे, मनमाने और राजनीतिक लाभ या हानि से प्रेरित होते हैं। यदि उन फैसलों के अनुसार नौकरशाही चलती है तो उसका अन्जाम भयावाह भी हो सकता है और नौकरशाह जानते हैं कि यदि फैसलों का सकारात्मक स्वरूप सामने आया तो उसका श्रेय राजनीतिक निर्णय निर्माणता को मिलेगा, यदि दाँव उल्टा पड़ता है तो नौकरशाही को कोसा जायेगा। इसलिसे नौकरशाही नीति निर्माण से लेकर निर्णय-निर्माण तक फूंक-फूंक कर कदम बढ़ाती है, क्योंकि असफलता की गाज उस पर गिरेगी, उसका बुरी स्थिति में स्थानान्तरण होगा, पदोन्नति रोक दी जायेगी अथवा उसे अन्य दूसरे तरीकों से उत्पीड़ित किया जायेगा। इस स्थिति से बचने के लिए नौकरशाही औपचारिकता तथा अनौपचारिकता दोनों माध्यमों से काम लेकर, अत्याधिक उत्साही, निर्माण, बाद-दिमाग, सटकी, या फिर सजग, गतिशील, कर्मठ अथवा कल्पना वादी या आदर्शवादी राजनेता की मनीवृत्ति के अनुसार प्रशासनिक कार्यों का संचालन करता है। डेविड ईस्टन, लासवैल, विलियम राइकर इत्यादि राजनीति शास्त्रियों ने इसी व्यवहारपरकता पर जोर दिया है।

### अभ्यास प्रश्न-

1. ब्योरियॉक्रेसी का क्या अर्थ है?
 

क. सरकार	ख. संगठन
ग. प्रशासन	घ. अधिकारीतंत्र
2. मैक्स वेबर ने नौकरशाही के जिस प्रतिमान (मॉडल) का सिद्धांत प्रस्तुत किया उसका नाम क्या है?
 

क. विधिक	ख. तार्किक
ग. ब्योरोज	घ. विधिक तार्किक
3. नौकरशाही 'परजीवी' है, यह कथन किसका है?
 

क. हीगेल का	ख. ऐजेल्ज का
ग. मार्क्स का	घ. बाकुमिन का
4. किसने नौकरशाही को आफिशियज या अधिकारी कहना उचित समझा?
 

क. एन्थॉनी डाउन्स ने	ख. डेविड इस्टन ने
ग. मार्क्स ने	घ. इनमें से कोई नहीं
5. नौकरशाही के आधारों में कौन सा आधार नहीं है?
 

क. पदानुक्रम	ख. नौकरशाह का राजनीति
--------------	-----------------------

### 6.10 सारांश

नौकरशाही पर आधारों के दृष्टिकोण से किसी प्रशासनिक चिन्तकों कोई प्रथक रूप से सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया है। नौकरशाही पर मैक्स वेबर से लेकर एन्थोनी डान्जस ने जो कुछ लिखा है उसके प्रकाश में नौकरशाही के अनेक आधार उभर कर सामने आते हैं।

- नौकरशाही एक संरचना भी है, एक सिद्धांत भी है और एक मानसिकता भी।
- व्योक्रियोक्रेसी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री डा० गोरने ने किया। बाद में यह शब्द लोक सेवा के लिये प्रयोग होने लगा।
- मैक्स वेबर वह पहला विचारक है जिसने नौकरशाही पर विस्तृत चर्चा की और नौकरशाही का एक विशिष्ट सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसने आदर्श नौकरशाही का एक चित्रण प्रस्तुत किया जिस पर उसका प्रसिद्ध प्रतिमान या मॉडल आधारित है। इस प्रतिमान को उसने विधिक-तार्किक का नाम दिया।
- मैक्स वेबर ने नौकरशाही की उसके हर पहलू से चर्चा की: नौकरशाही के अभिलक्षण नौकरशाही पर टिके उसके विश्वास वेबेरियन नौकरशाही का सार हैं।
- कार्ल मार्क्स एक ऐसा चिन्तक है, जिसने प्रत्येक संस्था को अपने वर्ग संघर्ष के नजरिये का परिणाम बताया है जो उत्पादन के मालिक और राजनीतियों के हितों की रक्षा करता है।
- हीगेल के अनुसार नौकरशाही सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं इस विचार की मार्क्स ने आलोचना की है और कहा कि नौकरशाही केवल पूंजीपातियों, भू स्वामियों तथा शासकों के हितों की रक्षा करती हैं।
- नौकरशाही के अनेक आधार निश्चित किये जा सकते हैं जिनमें व्योरोज संगठन, निर्णय निर्माण की प्रक्रिया, कर्मचारी, पर्यावरण, व्योरोज की पद सोपनीयता विशेष हैं।
- नौकरशाही औपचारिकताओं तथा अनौपचारिकताओं दोनों तत्वों पर टिकी हुई है। जहाँ तक उसके औपचारिक स्वरूप का सम्बन्ध है वह सैधांतिक है, लेकिन उसकी अनौपचारिकता उसके व्यवहारिक पहलू को दर्शाता है, जो यथार्थ पर टिकी हुई है।
- रिग्स ने पर्यावरणीय परिवेश को प्रशासन और नौकरशाही का आधार माना है। पर्यावरणीय परिवेश नौकरशाही के व्यवहार को निश्चित करता है।

### 6.11 शब्दावली

**व्योरोज-** इसका अर्थ है सरकारी कार्यालय। यह प्रशासन की पहली कड़ी है जो प्रशासनिक तकाजों की पूर्ती करते हैं। व्योरोज से व्योरियाक्रेसी बना है। एन्थोनी डान्जस ने व्योरोज से जुड़ी प्रशासनिक व्यवस्था को एक संस्था मानकर उसे नौकरशाही माना है। लेकिन क्योंकि नौकरशाही को बदनाम माना जाता है, इसलिये उसने नौकरशाहों को अधिकारी या officials कहा है।

**निर्वैयक्तिक (Impersonal)-** इसका अर्थ है कि सत्ता, शक्ति और अधिकार इनका सम्बंध पद सहेजों व्यक्ति ग्रहण करता है। एक नौकरशाह या अधिकारी जो कुछ है वह पद के कारण सत्ता, शक्ति तथा अधिकार का स्रोत है। कोई अन्य व्यक्ति इसका स्रोत नहीं है। इस तरह अधिकारी का स्वयं में अपना कोई अस्तित्व नहीं है। अस्तित्व है उसका पद जो कानूनी रूप में परिभाषित है। अधिकारी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है और यदि है तो उसका सम्बंध उसके पद से नहीं है। व्यक्तिगत तौर पर वह किसी अन्य व्यक्ति का नौकर नहीं है, न ही वह किसी अन्य का

है।

पर्यावरण (Environment)- प्रशासनिक दृष्टि से पर्यावरण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिवेश या वह स्थिति है, जिसमें एक ब्योरोज में लगे लोग काम करते हैं। यहाँ इसका अर्थ प्रकृति या वातावरण से नहीं है। प्रशासनिक पर्यावरण अधिकारियों या नौकरशाहों के व्यवहार को निश्चित और निर्धारित करता है।

### 6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ, 2. घ 3. ग, 4. क, 5. ख

### 6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. अवस्थी अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धांत।
3. त्रिलोकनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डा० रविन्द्र प्रसाद: प्रशासनिक चिन्तक
5. अमरेश्वर अवस्थी: लोक प्रशासन तथा भारत में लोक प्रशासन

### 6.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Awasthi Awasthi: Bureaucracy and Development.
2. Albrow Martin : Bureaucracy Lawdor.
3. Blou Peter : Bureaucracy in Modern Society.
4. Downs Anthony: Inside Bureaucracy.

### 6.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. वेबर का विधिक तार्किक नौकरशाही का सिद्धांत क्या है?
2. मार्क्स नौकरशाही को वर्ग-संघर्ष का परिणाम मानता था, क्यों?
3. नौकरशाही के कितने आधार हैं? समझाइये।
4. पर्यावरणीय सिद्धांत क्या है? वह किस तरह नौकरशाही को प्रभावित करता है।

## इकाई- 7 लोक सेवाओं का वर्गीकरण

### इकाई की संरचना

- 7.0 प्रस्तावना
- 7.1 उद्देश्य
- 7.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ
- 7.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त
- 7.4 पद वर्गीकरण की उपयोगिता
- 7.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू
- 7.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ
- 7.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ
- 7.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस
- 7.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन
- 7.10 सारांश
- 7.11 शब्दावली
- 7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 7.15 निबंधात्मक प्रश्न

### 7.0 प्रस्तावना

लोक सेवा आधुनिक प्रशासन का आधार है। लोक सेवा को तार्किक और वैज्ञानिक बनाने का समय-समय पर प्रयास होता है। पद वर्गीकरण इन्हीं प्रयासों का एक नतीजा है। प्रशासनिक व्यवस्था में 'पद' का बहुत महत्व है। सारी शक्तियाँ, अधिकार, उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य पद से सम्बन्धित हैं। जो व्यक्ति पद को ग्रहण करता है, उसको उस उत्तरदायित्व और कर्तव्य को निभाना होता है, जो पद में विद्यमान है। पदासीन व्यक्ति पद छोड़ सकता है, और वह महत्वहीन बन जाता है, लेकिन पद बना रहता है। उसका महत्व कम नहीं होता है। प्रशासन को अधिक तार्किक बनाने के लिये, तथा पदों में भिन्नता लाकर पदों की पहचान बनाए रखने के लिए पद वर्गीकरण की व्यवस्था की गई है। आज यह व्यवस्था सभी विकसित और विकासशील देशों की प्रशासनिक पहचान है। इस इकाई में पद वर्गीकरण के अर्थ, उसकी, विशेषता, उपयोगिता तथा उसके नकारात्मक पहलुओं की विवेचना की गई है। भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस में वर्गीकरण के व्यावहारिक पहलुओं पर भी नजर डाली गई है।

### 7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक सेवा की प्रशासन व्यवस्था में पद वर्गीकरण का अर्थ, महत्व एवं उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों, शर्तों और उसकी सकारात्मक भूमिका की जानकारी ले सकेंगे।
- भारत लोक सेवाओं के क्षेत्र में पद वर्गीकरण की क्या स्थिति है, यह जान पायेंगे।

- भारत, ब्रिटेन तथा फ्रांस के पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन संक्षेप में कर सकेंगे।
- पद वर्गीकरण के नकारात्मक पहलुओं को भी समझ सकेंगे।

## 7.2 लोक सेवा में वर्गीकरण का अर्थ

भारत में लोक सेवाओं के विकास के साथ अनेक बाधाएँ भी बनी रहती हैं। उन्हीं में से एक वर्गीकरण की समस्या है। 1992 तक भारत में तीन अखिल भारतीय सेवाएँ, 51 केन्द्रीय सेवा ग्रुप 'ए' तथा अनेक राज्य स्तरीय सेवाएँ थीं।

भारतीय प्रशासनिक संरचना में प्रशासनिक अधिकारियों की एक निश्चित पदसोपनीयता के अनुसार परिभाषित स्थिति है। इन अधिकारियों के अलग-अलग प्रकार के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं। किसी भी पद का आकार व्यक्ति न होकर कर्तव्य व उत्तरदायित्व होता है। व्यक्ति पद रिक्त कर सकता है, तब वह व्यक्ति शून्य हो जाता है, लेकिन पद का महत्व बना रहता है। पद ही किसी को जिलाधीश, कमिश्नर, अधीक्षक या लिपिक बनाता है। रिक्त पद अपनी महत्ता नहीं खोता है, रिक्त व्यक्ति महत्वहीन हो जाता है।

जिन लोक सेवाओं के एक समान उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं, उन्हें एक वर्ग या श्रेणी में रखा जाता है। दूसरी प्रकृति के पदों पर आसीन सेवियों को यदि उनमें समानता है तो उनके लिये दूसरी श्रेणी होती है। यहाँ भी मापदण्ड उत्तरदायित्व और कर्तव्य होते हैं। अतः अनिवार्य है कि प्रशासनिक कार्यों की विभिन्न के आधार पर सेवाओं को भी श्रेणीबद्ध किया जाये। इसी विभिन्नता को स्पष्ट रूप से पहचानने के लिये सेवाओं का वर्गीकरण अनिवार्य हो जाता है। यही लोक सेवाओं का वर्गीकरण है।

वर्गीकरण की परिभाषा: लगभग सभी विकसित एवं विकासशील देशों में लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया है। प्रशासन के इस बिन्दु का इतना अधिक महत्व है कि अनेक प्रशासनिक चिन्तकों ने शब्द 'वर्गीकरण' की व्याख्या करने तथा उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए डिमांक तथा डिमांक के अनुसार लोक प्रशासन में "वर्गीकरण का अर्थ है, तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पदसोपनीयता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।" दूसरी ओर पिप्नर ने लिखा "वर्गीकरण से हमारा तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी में रखे जायें, चाहे किसी विभाग या सेवा से जुड़े हुये हों।" प्रो० व्हाइट के अनुसार सेवा की कार्मिक आवश्यकता जिस संरचना पर टिकी होती है, वह पदवर्गीकरण की योजना कही जा सकती है। जब लोक सेवाओं में उत्तरदायित्वों और कार्यों का तार्किक विश्लेषण किया जाता है, तब जो निष्कर्ष निकलकर आता है, उसे वर्गीकरण कहा जाता है। व्हाइट के अनुसार वर्गीकरण के माध्यम से बहुत गुंथे हुए पद स्पष्ट हो जाते हैं। लोक सेवा बड़ी विषम होती है, उसकी जटिलता को सरलता में बदलना वर्गीकरण का काम है। इससे क्रमिक स्थितियाँ निर्धारित होती हैं, जिसके द्वारा एक नया कार्मिक अगल सोपानों पर आगे बढ़ता है।

पदों की विशेषता में पदों का सम्बन्ध उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यताओं का भी समावेश है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है और पद सदा विद्यमान रहता है, भले ही पद रिक्त रहे। वर्गीकरण व्यक्ति के महत्व को नहीं दर्शाता है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन सा व्यक्ति किसी पद पर कार्यरत है। वर्गीकरण में यह बात भी सारहीन होती है कि पदासीन व्यक्ति की योग्यता क्या है, और उसको क्या वेतन मिल रहा है। वेतन का अन्तर श्रेणी का अन्तर नहीं होता है।

आज प्रशासनिक दृष्टि से विकसित लेकिन विषम समाज में वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लोक सेवकों की एक लम्बी फौज है, इसलिए अनिवार्य है कि उन्हें श्रेणीबद्ध करके पंक्तिबद्ध किया जाए ताकि लोक सेवियों को पहचानने में सुविधा हो। लाखों कर्मचारियों के बारे में अलग-अलग विचार करना संभव नहीं है। प्रो० व्हाइट का इस सम्बन्ध में कहना है "नियुक्ति, वेतन का प्रश्न, पदोन्नति की पंक्ति, स्थानान्तरण की आवश्यकताओं तथा

प्रतिदिन के विषय को तुरन्त एवं सावधानी से सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि पदों को वर्गों में समूहीकृत कर दिया जाये।”

### 7.3 वर्गीकरण के सिद्धान्त

वर्गीकरण लोक सेवाओं का महत्वपूर्ण पहलू है। यह कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर किया जाता है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1. **सेवा के आधार पर-** इसके अन्तर्गत विभिन्न लोक सेवाओं के आधार पर तरह-तरह के वर्गों का निर्माण किया जाता है; जैसे भारतीय विदेश सेवा, भारतीय वन सेवा, भारतीय पुलिस सेवा आदि।
2. **किसी पद या विषय या कर्मक्षेत्र-** इस सिद्धान्त के अनुसार पदों को कार्यों के क्षेत्र से जोड़ा जाता है अथवा उस विषय को ध्यान में रखा जाता है, जिसका सम्बन्ध पद से होता है। इन दो बातों के आधार पर (कार्यक्षेत्र या विषय) पद वर्गीकरण किया जाता है। जैसे- शिक्षा, राजस्व, स्वास्थ्य, समाज कल्याण इत्यादि।
3. **नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड-** इस सिद्धान्त का सम्बन्ध संगठन की पदसोपनीय व्यवस्था से है। जिन पदों का ऊपर से अधिक नियंत्रण और निरीक्षण हो, उनको निम्न स्तर का पद माना जाता है, लेकिन निरीक्षण की यदि यह मात्रा कम से कम हो तब वे पद उच्च श्रेणी के माने जाते हैं।
4. **उत्तरदायित्व का सिद्धान्त-** जैसा कि लिखा जा चुका है, पद का सम्बन्ध कर्तव्य और उत्तरदायित्व से है और जिस अधिकारी को अधिक उत्तरदायित्व का पद दिया जाता है, वह अधिकारी उतना ही बड़ा होगा और उसके अधिकार और शक्तियाँ उतनी ही अधिक होंगी।
5. **कार्य की प्रकृति-** पद का सम्बन्ध कार्यों से होता है। प्रत्येक कार्य की एक प्रकृति होती है। कुछ कार्य बड़े विषम और जटिल होते हैं, लेकिन कुछ अपनी प्रकृति से सरल होते हैं। सरल कार्य का पद छोटा माना जाता है, और जटिल कार्य का पद बड़ा माना जाता है। अतः जटिल पद पर आसीन अधिकारी बड़ा माना जाता है और सरल पद का कर्मचारी छोटा माना जाता है।
6. **योग्यता के आधार पर-** अनेक ऐसे पद हैं जिनके लिये ऊँची योग्यता, शिक्षा और अनुभव निर्धारित है, ऐसे पद बड़े होंगे और उन पर पदासीन अधिकारी भी ऊँचे माने जायेंगे। लेकिन सामान्य योग्यताओं वाले पद नीचे माने जायेंगे।

उक्त इन छः सिद्धान्तों के आधार पर ही भारत में लोक सेवाओं के पदों को वर्गीकृत किया गया है।

### 7.4 पद वर्गीकरण की उपयोगिता

वास्तविकता तो यही है कि किसी देश का शासन पूरी तरह लोक प्रशासन पर टिका होता है। इस तथ्य को सब से पहले वुडरो विल्सन ने अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध 'दि स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में स्वीकार किया था। विल्सन प्रशासन को वैज्ञानिक बनाना चाहता था। उसका यह निबन्ध ही लोक प्रशासन के शास्त्र का आरंभ माना जाता है। मैक्स वेबर दूसरा चिन्तक है, जो नौकरशाही को लोक प्रशासन की आत्मा मानता है। उसने नौकरशाही को तार्किकता की नजर से देखा और उसे एक ओर कानून से जोड़ा तो दूसरी ओर तार्किकता से।

भारत में पद वर्गीकरण का विचार समान कार्य के लिये समान वेतन के सिद्धान्त के साथ पनपा। वर्गीकरण सामान्यतः मनमाने व्यवहार पर एक प्रहार है। इसमें न्याय की भावना है। यह सब को लाभ पहुँचाता है। लोक सेवा में ये एक मनोवैज्ञानिक उपचार है। टकराव की संभावना को दूर करता है। मनमानी से भ्रम पैदा होता है, जो प्रशासन के लिये घातक है। वर्गीकरण आर्थिक नियंत्रण के लिये जरूरी है। इस पद्धति के निम्नलिखित उपयोगिता है-

1. **भर्ती कर सरलीकरण-** विभिन्न विभागों में कितनी भर्ती होनी है, वर्गीकरण से यह बात सरलता से जानी जा सकती है। भर्ती संस्थान विभाग की इस मांग के अनुसार भर्ती के लिये अनिवार्य कदम उठाता है।
2. **प्रशासनिक स्पष्टता-** वर्गीकरण से प्रशासन क्रमबद्धता और व्यवस्था के साथ चलता है। इस सिद्धान्त से उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्यों को समझने में आसानी रहती है तथा व्यवस्था और अनुशासन बना रहता है।
3. **पदोन्नति में सरलीकरण-** वर्गीकरण से श्रेणियों की क्रमिकता का पता रहता है। इस तरह यह जानना आसान होता है कि किस वर्ग के किस कर्मचारी को किस श्रेणी पर पदोन्नत करना है। अक्सर पदोन्नति स्वतः नहीं होती, योग्यता और काम के प्रति निष्ठा अपनी भूमिका अदा करती है। यह सिद्धान्त व्यक्ति को पदोन्नति के लिये चुस्त दुरुस्त रखता है।
4. **बजट बनाने में सुविधा-** विभागों को यह मालूम होता है कि किसी सम्भाग में कितने कर्मचारी हैं और उनका पद एवं वेतन क्या है। वर्गीकरण के आधार पर वार्षिक बजट का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।
5. **लोक सेवियों में सहयोग एवं समन्वय-** वर्गीकरण से प्रत्येक वर्ग के कर्मियों में यह एहसास पैदा होता है कि वे प्रशासनिक सेवाओं के संदर्भ में एक ही परिवार के सदस्य हैं। उनके हित समान हैं और वे अकेले नहीं हैं।
6. **कर्तव्यों तथा दायित्वों का स्पष्ट विभाजन-** वर्गीकरण से लोक सेवाओं के प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों को निश्चित करने में सुविधा होती है और कार्य-सम्पन्नता के मापदण्ड तय किये जा सकते हैं।

उक्त बिन्दुओं से यह सिद्ध होता है कि किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में प्रशासन का कार्य बिना वर्गीकरण के संचालित नहीं किया जा सकता। फाइनर के अनुसार “सभी देशों का अनुभव बताता है कि प्रशासनिक वर्गीकरण का क्या महत्व है। बिना वर्गों या श्रेणियों के न तो तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है और न ही पदों और पदासीन अधिकारियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।”

### 7.5 वर्गीकरण की शर्तें और नकारात्मक पहलू

1. **लोक सेवाओं में वर्गीकरण-** लोक सेवाओं में वर्गीकरण एक पेंचीदा विषय है। थोड़ी सी असावधानी पूरी प्रशासनिक संरचना को बिगाड़ सकती है। अतः सब से पहले वर्गीकरण की मांगों को समझना होगा। वर्गीकरण करते समय जिन बातों को ध्यान में रखना होगा, वे इस प्रकार हैं-
  - वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का उलझाव न हो। गुंथा हुआ वर्गीकरण भ्रम पैदा कर सकता है।
  - प्रत्येक श्रेणी या वर्ग की स्पष्ट रूप से अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिये।
  - पदोन्नति एक बड़ा मनोवैज्ञानिक विषय है। पदोन्नति के नियमों को स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।
  - कर्तव्यों एवं दायित्वों को श्रेणीबद्ध करना चाहिये। ऐसा विभाजन भ्रमित करने वाला न हो।
  - शैक्षणिक योग्यताओं, अनुभव और आयु का निर्धारण स्पष्ट नियमों के अनुसार तय होना चाहिये।
  - पदों, वर्गों और सेवाओं को अलग-अलग शीर्षकों में परिभाषित होने चाहिये।
2. **वर्गीकरण का नकारात्मक पहलू-** यद्यपि वर्गीकरण लोक सेवा की एक अनिवार्य शर्त है, लेकिन यह सिद्धान्त दोष मुक्त नहीं है। इसके अनेक गुण तथा विशेषताएं हैं, लेकिन इसकी निम्नलिखित हानियाँ भी हैं-

- प्रत्येक पद के कर्तव्यों एवं दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण और उनका मूल्यांकन संभव नहीं है। भारत जैसे देश के संदर्भ में यह आलोचना सत्य है। अप्रथक नौकरशाही में प्रथक या संगठित पद नहीं हो सकते।
- वर्गीकरण के कारण कर्मचारियों में यदि कुछ समय के लिए फेर बदल किया जाता है तो कर्मचारी उसका विरोध करते हैं। वे अपने पद और कर्तव्यों को कानूनी अधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनमें 'लकीर के फकीर- वाली भावना आ जाती है।
- वर्गीकरण मनुष्य को एक मशीन या वस्तु बना देता है। इसमें न तो व्यक्ति के गुणों का ध्यान रखा जाता है और न उनकी भावनाओं का। इस तरह लोक सेवक हतोत्साहित रहते हैं और उनका मनोबल टूटता रहता है। यह स्थिति अच्छी प्रतिभा और बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों को निराश करती है। इस तरह प्रशासन में शिथिलता आती है और कार्यकुशलता का हास होता है।
- विकासशील देशों में विकास की गति तेज होती है। इसी गति के अनुपात में लोक-सेवकों के दायित्वों में परिवर्तन लाना जरूरी होता है, जो एक जटिल काम है।

उक्त दोषों का यह अर्थ नहीं है कि वर्गीकरण अनावश्यक है। लगभग सभी प्रशासनिक विचारकों ने लोक प्रशासन में वर्गीकरण को अनिवार्य बताया है। विशेष रूप एल.डी. व्हाइट तो पद-वर्गीकरण को "जीवनवृत्ति के रूप" में देखते हैं।

3. **पद-वर्गीकरण-** पद-वर्गीकरण सेवी वर्ग प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन सभी देशों में पद-वर्गीकरण के आधार एक समान नहीं हैं। फ्रांस का उदाहरण दिया जा चुका है। अन्य देशों में दो प्रमुख पद वर्गीकरण है- (अ) स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification), एवं (ब) दायित्व वर्गीकरण (Duties Classification), भारत, पाकिस्तान, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, मलेशिया आदि देशों में स्थिति वर्गीकरण प्रचलित है। अधिकारी का दर्जा या उसकी व्यक्तिगत स्थिति-स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है। यहाँ पद सम्बन्धी दायित्व या कर्तव्य आधार नहीं होता है। कनाडा, अमरीका, फिलिपाइन्स, ताइवान में दायित्व वर्गीकरण प्रचलित है। दायित्व वर्गीकरण के समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

## 7.6 भारत में पद वर्गीकरण: ब्रिटिश संदर्भ

पद वर्गीकरण भी भारत को अंग्रेजों से विरासत में मिला है। प्राचीन या मुगल काल में पद-वर्गीकरण की कोई परम्परा नहीं थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में कर्मियों को दो भागों में विभाजित किया गया था-एक भाग था संविदाबद्ध (covenanted) लोक सेवकों का और दूसरा भाग था, असंविदाबद्ध (Uncovenanted) कर्मियों का। एचीसन आयोग (1886-87) की सिफारिशों के अनुसार लोक सेवकों को तीन वर्गों में बांटा गया- (क) इम्पीरियल सेवा, (ख) प्रान्तीय सेवा, तथा (ग) अधीनस्थ सेवा। इस वर्गीकरण की कमियों को देखते हुए इस्लिंग्टन आयोग (1912-15) ने त्रिवर्गीय वर्गीकरण को समाप्त कर दिया और लोक सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया-उच्च वर्ग सेवा तथा निम्न वर्ग सेवा।

सन् 1926 में 'इम्पीरियल' शब्द के स्थान पर 'भारतीय' शब्द का प्रयोग आरंभ हुआ। साथ ही 'उच्च' तथा 'निम्न' के स्थान पर 'प्रथम श्रेणी' तथा 'द्वितीय श्रेणी' कहा जाने लगा। अब दो प्रकार के लोक सेवक थे- 'भारतीय' (Indian) वह लोक सेवक कहलाए गये जो भारत मन्त्री के द्वारा नियुक्त किए जाते थे और दूसरे 'केन्द्रीय' लोक सेवक, जो गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त होते थे। एक ओर विशेषता यह थी 'राजपत्रित'

(Gazetted) और 'अराजपत्रित' (non-gazetted) के आधार पर भी वर्गीकरण था। यह परम्परा आज भी भारत में चल रही है।

सन् 1930 के बाद भारत सरकार की सेवाओं का वर्गीकरण 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में किया गया। अखिल भारतीय सेवा में दो सेवायें प्रमुख थीं- इण्डियन सिविल सर्विस (I.C.S.) तथा इण्डियन फॉरेन सर्विस (I.F.S.) केन्द्रीय सेवाओं को प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, अधीनस्थ सेवा और निम्न सेवा में विभक्त किया गया। प्रान्तों में भी वर्गीकरण का यही आधार रखा गया।

स्वतंत्रता के बाद यद्यपि वर्गीकरण के प्रचलित स्वरूप को नकारा नहीं गया, लेकिन लोक-सेवाओं की श्रेणियों में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। आज केन्द्रीय सरकार में उच्च सेवाओं की दो श्रेणियाँ हैं- अखिल भारतीय सेवायें, एवं केन्द्रीय लोक सेवायें। वर्तमान भारत में सेवाओं को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है- अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं- इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी सेवायें शामिल हैं; राज्य सेवाएं, इनमें भी प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणियाँ आती हैं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं, यहाँ भी सेवाओं का चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है; तथा विशिष्ट सेवाएं, जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।

### 7.7 लोक-सेवा वर्गीकरण: भारतीय संदर्भ

पिछले पन्नों में भारत में सेवाओं के वर्गीकरण के संक्षेप में समझाया गया। जिसके अनुसार अखिल भारतीय सेवायें; केन्द्रीय सेवाएं; राज्य सेवाएं; केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं तथा विशिष्ट सेवाओं का उल्लेख किया गया है। आगे हम विस्तार से इन सेवाओं को समझाने का प्रयास करेंगे-

**1. अखिल भारतीय सेवाएं-** अखिल भारतीय सेवायें संविधानिक मान्यता रखती हैं। संविधान में विशेष रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा का उल्लेख किया गया है। संविधान ने भारतीय संसद को यह भी अधिकार दिया है कि वह कानून के दायरे में अन्य सेवाओं की भी स्थापना करे। इस अधिकार के अन्तर्गत भारतीय संसद ने 'भारत वन सेवा' की स्थापना की है।

अखिल भारतीय सेवा प्रथम श्रेणी की सेवा है। इसके सदस्यों की भर्ती, प्रशिक्षण, वेतन तथा अन्य शर्तों का निर्धारण केन्द्रीय सरकार करती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए भी केन्द्रीय सरकार को ही अधिकार है।

साधारणतः अखिल भारतीय सेवायें अपने-अपने कार्यकाल के अधिकतर समय में राज्य सरकार की सेवा में रहती हैं। वस्तुतः इनकी नियुक्ति विभिन्न राज्यों के काडरों अथवा संवर्गों पर होती है। जब केन्द्रीय सरकार को इन अधिकारियों की सेवा की आवश्यकता होती है तो वे राज्य सरकारों से इन्हें उधार लेती हैं। चौथे वेतन आयोग ने अखिल भारतीय सेवाओं को छह श्रेणियों में बाँटा था। यह हैं-

- उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-सचिव
- उच्चतम वेतनमान- स्थिर या फिक्स्ड-अतिरिक्त सचिव
- उच्चतम वेतनमान-संयुक्त सचिव
- चयनित वेतनमान
- वरिष्ठ वेतनमान
- कनिष्ठ वेतनमान

प्रारम्भ से सभी लोक सेवक अधिकारी कनिष्ठ वेतनमान में ही नियुक्त किये जाते हैं। धीरे-धीरे उन्हें वरिष्ठ वेतनमान तथा उच्चतम वेतनमान दिया जाता है। लेकिन यह पदोन्नति नहीं कही जा सकती।

2. **केन्द्रीय सेवाएं-** जो अधिकारी भारत सरकार (केन्द्रीय सरकार) के विभिन्न विभागों में कार्य करते हैं, उनका सम्बन्ध केन्द्रीय सेवाओं से होता है। केन्द्रीय सेवायें दो श्रेणियों में विभक्त होती हैं-प्रथम श्रेणी की सेवायें तथा द्वितीय श्रेणी की सेवायें। केन्द्रीय सेवाओं की प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत लगभग 33 सेवायें आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- (1) भारतीय लोक-परीक्षण एवं लेखा से; (2) भारतीय विदेश सेवा; (3) भारतीय डाक सेवा; (4) भारतीय डाक-तार संचार सेवा; (5) केन्द्रीय इंजीनियरिंग सेवा; (6) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (7) केन्द्रीय राजस्व सेवा; (8) भारतीय विदेश सेवा; (9) केन्द्रीय सूचना केन्द्र; तथा (10) भारतीय सांख्यिकी सेवा। अन्य 23 सेवायें भी महत्वपूर्ण हैं। यह सेवायें प्रथम श्रेणी में आती हैं।  
द्वितीय श्रेणी की केन्द्रीय लोक सेवायें 24 वर्गों में विभाजित हैं। इन में प्रमुख हैं- (1) केन्द्रीय सचिवालय सेवा; (2) केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा; (3) आय-कर सेवा; (4) भारतीय जलवायु सेवा; (5) केन्द्रीय एक्साइज सेवा; (6) सीमा शुल्क सेवा; (7) भारतीय सर्वेक्षण सेवा; (8) केन्द्रीय यांत्रिक सेवा; (9) सामान्य केन्द्रीय सेवा; तथा (10) भारतीय भू-सर्वेक्षण।
3. **राज्य सेवाएं-** ऐसी लगभग 15 सेवायें हैं (चौथे वेतन आयोग के अनुसार) इनमें (1) राज्य प्रशासनिक सेवा; (2) राज्य पुलिस सेवा; (3) राज्य शिक्षा सेवा; (4) राज्य सचिवालय; (5) राज्य स्वास्थ्य सेवा; (6) राज्यकृषि सेवा; (7) राज्य श्रम सेवा; (8) राज्य वन सेवा; (9) राज्य उद्योग सेवा; तथा (10) राज्य सिंचाई सेवा प्रमुख हैं।
4. केन्द्रीय सचिवालयीय सेवाओं को अलग दर्जा दिया गया है। इनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के अधिकारी व कर्मचारी आते हैं।
5. विशिष्ट सेवाओं में वे सेवायें हैं जिनमें तकनीकी ज्ञान या विशेष बौद्धिक क्षमता की आवश्यकता होती है। तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी की सेवायें (केन्द्रीय) अधीनस्थ सेवायें कही जाती हैं। यह विभागों के सामान्य कार्यों का संचालन करती हैं। उच्च अधिकारियों के आदेशों का पालन करना इनका उत्तरदायित्व है।

### 7.8 पद वर्गीकरण का तुलनात्मक अध्ययन: ग्रेट-ब्रिटेन-फ्रांस

लोक सेवाओं का विचार ही ब्रिटिश प्रशासन की देन है, क्योंकि यहाँ प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लोक सेवाओं की व्यवस्था है। वर्तमान में ब्रिटिश लोक सेवाओं को छः वर्गों में विभक्त किया गया है। यह इस प्रकार हैं-

1. **प्रशासनिक वर्ग-** यह भारतीय प्रशासनिक सेवा के समान है और सम्पूर्ण ब्रिटिश लोक सेवा का आधार है। इसमें जो अधिकारी आते हैं, उनमें स्थाई सचिव से लेकर सहायक प्रधान प्रमुख हैं। अपने कार्यों और कर्तव्यों से यह वर्ग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रशासनिक स्तर पर निर्णय-निर्माण, नीति-निर्धारण और विभागीय संचालन का उत्तरदायित्व इसी वर्ग पर है। यह अधिकारी कठिन प्रतियोगिता परीक्षा से गुजर कर चयनित होते हैं। 25 प्रतिशत पदों की भर्ती पदोन्नति द्वारा होती है।
2. **अधिशाली वर्ग-** इस वर्ग के लोक सेवकों का मुख्य कार्य दिन प्रतिदिन के सरकारी कामकाज का निस्तारण करना है। राजस्व संग्रह, क्षेत्रीय और स्थानीय कार्यालयों के प्रबन्ध आदि का दायित्व विशेष रूप से अधिशाली वर्ग पर ही होता है। इस वर्ग के अधिकारियों को कुछ प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इस तरह प्रशासनिक कार्यों तथा दिन प्रतिदिन के कार्यों में अन्तर प्रायः बहुत कम होता है। समाज के आवश्यकताओं को देखते हुए सरकारी कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ है। काम-काज में जटिलता भी आई है और इस तरह प्रशासनिक वर्ग तथा अधिशाली वर्ग के कार्यों का अन्तर घटा है।
3. **विशिष्ट वर्ग-** इस वर्ग में व्यावसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी स्टाफ समाविष्ट होता है। इस वर्ग की बौद्धिक क्षमता एवं योग्यता सम्पन्न व्यक्ति जैसे वैरिस्टर, सॉलिस्टर, इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक,

लाइब्रेरियन, सहायक शिल्पी आदि आते हैं। यह वर्ग प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर चयनित न होकर मान्य योग्यता, विशिष्ट प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर साक्षातकरी के माध्यम से चुना जाता है।

4. **लिपिक वर्ग-** इस वर्ग में प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर 16-17 वर्ष के युवक-युवतियों को चुना जाता है। इनका काम है रिकॉर्ड रखना, नियमों के अनुसार पत्राजात, दावों आदि की जाँच पड़ताल करना। अधिकार वर्ग के आदेशानुसार दिन प्रतिदिन के कार्यों का निपटारा करना, तथा तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करना इनका विशेष कार्य है।
5. **लेखक सहायक वर्ग-** इस वर्ग में सहायक लिपिक, टाइपिस्ट और कम्प्यूटर और डुप्लीकेट मशीनें चलाने वाले होते हैं।
6. **सन्देशवाहक एवं निम्न वर्ग-** इस वर्ग में संदेशवाहक, दफ्तरी, सफाई कर्मचारी आते हैं।

पद वर्गीकरण के संदर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से फ्रांस में लोक सेवाओं के पद वर्गीकरण का बहुत महत्व है। फ्रांस में लोक सेवा संरचना की चार इकाईयाँ हैं-श्रेणियाँ, कोप्स, सेवायें तथा ग्रेड्स।

श्रेणियाँ प्रशासन में मुख्य रूप से व्यक्ति के शैक्षणिक पृष्ठभूमि पर आधारित होती हैं तथा देश के प्रशासन में व्यापक भूमिका निभाती हैं।

कोर्प्स एक व्यापक नाम है। सभी लोक सेवक जिस सेवा के आजीवन सदस्य बनते हैं, वह सेवा एक कोर्प्स का अंग होती है। कोर्प्स एक फ्रेंच शब्द है जो वर्गों का पर्यायवाची हो सकता है। लेकिन कोर्प्स की तुलना में वर्गों का महत्व कम होता है। ऐसे वे तमाम समूह जिन में लोक सेवाओं के समान ग्रेड्स तथा समान नियमों और योग्यताओं के द्वारा प्रशासित होते हों, वे कोर्प्स की परिभाषा में आते हैं। प्रत्येक कोर्प्स एक सील बन्द इकाई के समान है। एक सेवा में लम्बरूप में विभिन्न कोर्प्स की एक श्रृंखला होती है। ग्रेड्स की इकाईयाँ हैं, जिन का अस्तित्व प्रत्येक कोर्प्स में होता है।

1946 के अधिनियम को फ्रांस की लोक सेवाओं के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम माना जाता है। इस अधिनियम ने जिन चार प्रकार की सेवाओं का उल्लेख किया है, उनमें से दो व्यावसायिक वर्ग की थी। इनके प्रथम को असैनिक प्रशासक तथा दूसरे को प्रशासनिक सचिव कहा गया। इन दोनों सेवाओं के नीचे अधिकारियों के दो वर्ग हैं। इन दोनों वर्गों के कर्मचारी लिपिक वर्ग तथा संदेशवाहक वर्ग के होते हैं। फ्रांस की उच्चतम लोक सेवा का स्वरूप इस प्रकार है-

1. **असैनिक प्रशासक-** इस वर्ग की संरचना ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासनिक वर्ग के मॉडल को ध्यान में रखकर की गई है। इस वर्ग के सभी सदस्य एक जैसे अनुशासनात्मक नियमों के अधीन रहते हैं, तथा एक ही समूह एवं आजीवन सेवा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह एक ही कोर्प्स के सदस्य माने जाते हैं, भले ही इनका सम्बन्ध किसी भी विभाग से हो। इनकी सेवायें पाँच रैंक में विभाजित हैं- Administrators-adjoint, Administrative Class iii, Administrative Class ii, Administrative Class i and Class Exceptional. मार्सल डेबरे के अनुसार प्रशासनिक मामलों के व्यवहारों को सरकार की सामान्य नीति के अनुरूप ढालना, कानूनों और नियमों का प्रारूप तैयार करना, उनके कार्यान्वयन के लिए निर्देश तैयार करना तथा लोक सेवाओं के मध्य समन्वय पैदा करना, असैनिक प्रशासकों का उत्तरदायित्व है। प्रशासनिक श्रेणी के अधिकारियों का काम प्रशासनिक आधार पर लिये गये निर्णयों तथा निर्मित की गई नीतियों के अनुसार कार्यों का कार्यान्वयन करना होता है। इस वर्ग के कर्मचारी अत्यन्त शिक्षित, योग्य, प्रशिक्षित और गतिशील होते हैं।
2. **निष्पादक सचिव-** यह फ्रांस की उच्च सेवाओं की द्वितीय श्रेणी है। यह ग्रेट ब्रिटेन के निष्पादक वर्ग से समानता रखती है। इस श्रेणी में सभी उच्चतर गैर लिपिकीय कार्य, जैसे अनुवादक कार्य, लेखा कार्य शामिल कर लिये जाते हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा इस श्रेणी के सदस्यों की भर्ती की जाती है।

3. **एकीकृत प्रशासनिक सेवा-** फ्रांस में स्थायी सचिव के रूप में एक ही कार्यालय का विकास नहीं हो पाया है। सभी मंत्रालयों में अनेक निदेशालय हैं तथा प्रत्येक की अध्यक्षता एक महानिदेशक करता है। इस पद पर आने वाला अधिकारी ग्राण्ड कोर्प्स का सदस्य होता है।
4. **कोर्प्स का अस्तित्व-** फ्रांस में लोक सेवाओं के पुनर्गठन के बाद भी कोर्प्स का महत्व कम नहीं हुआ है। यद्यपि कोर्प्स की व्यवस्था ने लोक सेवा के विकास के प्रवाह को रोका है, लेकिन फ्रेंच राजनीतिज्ञों तथा प्रशासनिक चिन्तकों ने कोर्प्स को एक बहुमूल्य विरासत के रूप में संजोये रखा है। इस फैसले के कुछ बुरे परिणाम भी निकले हैं-लोक सेवा के बहाव में रूकावट आयी है। उच्च स्तर पर प्रशासनिक एकरूपता नहीं आ सकी। सभी कोर्प्स पर अधिकारियों का अधिकार है, परिणाम स्वरूप पदोन्नति व्यवस्था महत्वपहीन हो गई है। कुल मिलाकर कोर्प्स व्यवस्था पूरी तरह फ्रांस लोकसेवा पर हावी है।

### 7.9 पद वर्गीकरण का मूल्यांकन

1. समालोचकों द्वारा यद्यपि पद वर्गीकरण को लोक सेवा के विकास के लिए अनिवार्य बताया है, लेकिन समय-समय पर इस सिद्धान्त की अलोचना भी की है। जिन बिन्दुओं पर पद वर्गीकरण की ओलाचना हुई है, वे इस प्रकार हैं-
  - आलोचकों की मान्यता यह है कि पद वर्गीकरण का आधार वैज्ञानिक नहीं है।
  - पद वर्गीकरण में ग्रेडों की संख्या बहुत अधिक है। भारत में ऐसे ग्रेडों की संख्या 36 है।
  - पद वर्गीकरण के कारण एक सेवा में कार्य करने वाले कर्मचारियों को दूसरी सेवा में कार्य करने का कोई अधिकार नहीं होता है, यद्यपि सेवा के नियम सबके लिये एक होते हैं, जिनको 'सिविल सर्विस नियम' कहा जाता है।
  - ऐपल्बी ने भारतीय वर्गीकरण व्यवस्था के छः दोष बताए हैं' कठोरता; बौद्धिक अनुप्रेरणा; बड़ी सीमा तक श्रंखलाग्रस्त; अन्तर- विभागीय ईर्ष्या; सामान्य लोगों से प्रभावित; तथा विकास के प्रवाह में बाधिता।
2. भारतीय परिवेश में पद वर्गीकरण- इस प्रश्न पर कि क्या भारतीय परिवेश में लोक सेवा के क्षेत्र में पद वर्गीकरण लागू किया जाना चाहिये? वास्तव में यह प्रश्न आज भारत में विवादास्पद बना हुआ है। विशिष्ट सेवाओं द्वारा इसका समर्थन किया जाता है, लेकिन सामान्य सेवाओं के क्षेत्र में इसका विरोध होता रहा है। यहाँ यह याद रखना होगा कि प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) द्वारा पद वर्गीकरण पद्धति का समर्थन किया गया था।

वास्तविकता यह है कि पद वर्गीकरण की जड़े पूरी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में बहुत गहरी हैं। उनको एक झटके से उखाड़ फेंकना असंभव है। और यदि यह संभव हो भी जाए तब उसकी वैकल्पिक व्यवस्था क्या होगी, यह किसी को मालूम नहीं है। समालोचकों का मानना है कि इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निर्णय लेने के पूर्व पद-वर्गीकरण के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष का पूर्ण परीक्षण अनिवार्य है।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. पद वर्गीकरण में 'कोर्प्स' शब्द का प्रयोग किस देश ने किया?
 

क. अमरीका	ख. फ्रांस
ग. ब्रिटेन	घ. रूस
2. वर्गीकरण में पदों का सम्बन्ध किससे है?
 

क. शक्ति से	ख. प्रभाव से
-------------	--------------

- ग. उत्तरदायित्व से घ. अधिकार से
3. किसके शासनकाल में संविदाबद्ध (Covenant) तथा असंविदाबद्ध (Unconvenant) की परम्परा पड़ी?
4. क. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में ख. ब्रिटिश शासनकाल में  
ग. मुगल शासनकाल में घ. 1947 के बाद भारतीय शासन के आरम्भिक काल में
5. भारत में पद वर्गीकरण का आधार क्या है?  
क. सेवा ख. वेतन  
ग. ग्रेड घ. अधिकार
6. पद वर्गीकरण के आधार पर भारत में कितने प्रकार की भारतीय लोक सेवाएँ हैं?  
क. पाँच प्रकार की ख. छः प्रकार की  
ग. चार प्रकार की घ. दो प्रकार की

### 7.10 सारांश

लोक प्रशासन में पद वर्गीकरण सभी विकसित और विकासशील देशों की विशेषता है। आज यह लोग सेवाओं का एक अभिन्न अंग है। संसार में पद वर्गीकरण की विशेषताएं, उसके सिद्धांत और उसके सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू इस प्रकार हैं-

- लोक सेवा की भाषा में पद वर्गीकरण का अर्थ है “तुलनात्मक कठिनाइयों एवं उत्तरदायित्वों के अनुसार पद सोपनियता के आधार पर पदों को छांटना और श्रेणीबद्ध करना।”
- वर्गीकरण का तात्पर्य यह है कि समान कार्य तथा समान उत्तरदायित्व वाले पद एक ही श्रेणी में रखे जाएं, चाहे वे किसी विभाग अथवा सेवा से जुड़े हों।
- पदों का संबंध उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों से है। इसमें योग्यता का भी समावेश रहता है। वर्गीकरण सदा पदों का होता है, और पद सदा विद्यमान रहता है, भले ही पद रिक्त ही रहें।
- आज के विषम समाज में पद वर्गीकरण का महत्व बहुत बढ़ गया है। लाखों लोक सेविओं को श्रेणीबद्ध करके उन्हें पहचानने में सुविधा होती है। लोक सेवकों की सेवा शर्तों को सरलता से सुलझाने में वर्गीकरण की एक अहम भूमिका रहती है।
- वर्गीकरण कुछ निश्चित सिद्धांतों पर किया जाता है। इनमें सेवा, विषय या कर्म क्षेत्र, नियंत्रण एवं निरीक्षण का मापदण्ड, कार्य की प्रकृति, योग्यता इत्यादि मुख्य हैं।
- पद वर्गीकरण की उपयोगिता को लगभग सभी देशों तथा प्रशासनिक विचारकों ने स्वीकार किया है। मैक्स बेबर ने लोक सेवाओं को “तार्किकता” से जोड़ कर एक तरह लोक सेवा के औचित्य को स्वीकार किया।
- पद वर्गीकरण से भर्ती का सरलीकरण, प्रशासनिक स्पष्टता, पदोन्नति में सुविधा, बजट बनाने में आसानी, लोक सेवा में सहयोग एवं समन्वय तथा कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट विभाजन होता है।
- वर्गीकरण की सफलता के लिए कुछ शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है, जैसे वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए। प्रत्येक श्रेणी की अलग-अलग व्याख्या होनी चाहिए। पदोन्नति निश्चित एवं स्पष्ट होने चाहिए। भ्रमित करने वाले न हों।

- पद वर्गीकरण के अनेक नकारात्मक पहलू हैं, जैसे कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का स्पष्ट निर्धारण करना संभव नहीं है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों में असंतोष पैदा करता है। यह व्यवस्था मनुष्य को एक मशीन बना देती है, जिससे मनोवैज्ञानिक तनाव पैदा होता है। पद वर्गीकरण विकास की गति के साथ गतिशील नहीं है, जिससे विकास में एक बांधा आती है।
- भारत को पद वर्गीकरण की व्यवस्था विरासत में मिली है। पहले 'कंवेनेन्टेड' तथा 'अनकंवेनेन्टेड' की परम्परा को ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् 'राजपत्रित' और 'अराजपत्रित' वर्ग सामने आये जो आज भी लोक सेवा में विद्यमान हैं। 1930 के बाद भारतीय लोक सेवाओं को 'अखिल भारतीय' तथा 'केन्द्रीय' वर्गों में विभक्त किया गया।
- ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ऐसे दो देश हैं, जहाँ से लोक सेवा में पद वर्गीकरण की परम्परा शुरू हुई। ब्रिटेन में प्रशासनिक लोक सेवाओं को श्रेणियों, सेवाओं, ग्रेड्स तथा कोर्प्स में विभाजित किया गया है। इनमें कोर्प्स सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है।
- पद वर्गीकरण के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है। वर्गीकरण में ग्रेडों से संख्या बहुत होती है, जिससे भ्रम की स्थिति पैदा होती है। लोक सेवा के अधिकारियों को दूसरी सेवा में जाने का अवसर नहीं मिलता, जिनसे उनका प्रशासनिक जीवन निरीह हो जाता है।
- नकारात्मक पहलू होने के बाद भी पद वर्गीकरण का महत्व कम नहीं आंका जा सकता। अभी तक इस सिद्धान्त का विकल्प नहीं खोजा जा सका है।

### 7.11 शब्दावली

कोर्प्स (Copers)- लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह एक फ्रेंच शब्द है, जिसका अर्थ है विभागों का समूह। फ्रेंच लोक सेवा में पद वर्गीकरण की दृष्टि से कोर्प्स सब से बड़ी इकाई है और उच्च लोक सेवक किसी न किसी कोर्प्स से जुड़े रहते हैं।

स्थिति वर्गीकरण (Rank Classification)- अधिकारी का दर्जा या उसकी स्थिति वर्गीकरण का आधार होता है।

दायित्व वर्गीकरण (Duty Classification)- इसका अर्थ है कि लोक सेवा में पद का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर दायित्वों से होता है। दायित्वों की भिन्नता पदों की विभिन्नता को दर्शाती है।

### 7.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, 2. ग, 3. क, 4. क, 5. ख

### 7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
2. अवस्थी-अवस्थी: भारतीय प्रशासन, 1997
3. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी: तुलनात्मक लोक प्रशासन।
4. डिमॉक, एम.ई.: मॉडर्न पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन।
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993

### 7.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Ferrel Heady : Public Administration : A Comparative Perspective.

---

White, L.D. : Introduction to the Study of Public Administration.

F. Ridley and J. Blondel : Public Administration in France.

---

### 7.15 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. पद वर्गीकरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए पद वर्गीकरण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
2. पद वर्गीकरण के क्या लाभ हैं? तथा भारत में लोक सेवा में पद वर्गीकरण की स्थिति क्या है?
3. ग्रेट ब्रिटेन तथा फ्रांस में पद वर्गीकरण की में तुलना कीजिये।

## इकाई- 8 भारत में लोक सेवा का विकास

### इकाई की संरचना

- 8.0 प्रस्तावना
- 8.1 उद्देश्य
- 8.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल
  - 8.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था
  - 8.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल
- 8.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर
- 8.4 सन् 1935 से लेकर सन् 1947 तक प्रशासनिक विकास
- 8.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास
- 8.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ
- 8.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में
- 8.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं
- 8.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध
- 8.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति
- 8.11 सारांश
- 8.12 शब्दावली
- 8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.16 निबंधात्मक प्रश्न

### 8.0 प्रस्तावना

भारत को लोक सेवाएं ब्रिटिश शासन से विरासत में मिली हैं। वैसे प्राचीन काल में भी विशेष रूप से कौटिल्य के समय किसी न किसी रूप में लोक सेवाओं के दर्शन होते रहे हैं। इस्लामी शासन काल अथवा मुगल शासन काल में भी लोक सेवाओं की परम्परा थी। मुगल काल के पतन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर लोक सेवा की नींव डाली, लेकिन जब ब्रिटिश ताज के शासन का दौर आरंभ हुआ तब विधिवत् रूप से भारत में लोक सेवा का युग आरंभ हो गया। इसके बाद बड़ी तेजी के साथ लोक सेवाओं में सुधार होने लगे।

एचीसन आयोग (1886), इस्लिंग्टन आयोग (1912), माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (1918), भारत सरकार अधिनियम (1919), ली आयोग (1923) भारत में लोक सेवा के सुधार और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। भारत में अनेक महत्वपूर्ण प्रशासनिक कदम उठाये गये, जिसमें लोक सेवा आयोग की स्थापना (1926) तथा भारत सरकार अधिनियम (1935) मील का पत्थर माने जाते हैं।

1935 से लेकर 1945 तक लोक सेवा पूरी तरह विकसित हो चुकी थी। लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया था। आज भारत में अखिल भारतीय लोक सेवाओं का जो रूप है, वह 1935 के अधिनियम की देन है। भारतीय लोक सेवाएं सतत् विकास की ओर अग्रसर हैं और वे संवैधानिक मर्यादा को ध्यान में रखते हुये भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत कर रही है।

## 8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में लोक सेवाओं के विकास के इतिहास से परिचित होंगे।
- मुगल शासन काल तथा ईस्ट इण्डिया काल के प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में जानकारी ले सकेंगे।
- प्रशासनिक सुधारों के दौर (1858) से लेकर 1947 तक की प्रशासनिक घटनाओं का अध्ययन कर सकेंगे,
- ब्रिटिश संदर्भ में आप भारत की लोक सेवाओं की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवा के विकास की क्या स्थिति है, इसको आप जान सकेंगे।
- लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्धों की भी जानकारी ले पायेंगे।

## 8.2 भारत में लोक सेवाओं के विकास का इतिहास: प्राचीन काल

लोक सेवा की अवधारणा भारत के लिए नई नहीं है। वह बिन्दु जहाँ से भारत का इतिहास से आरंभ होता है, वहीं से लोक सेवा की कहानी भी आरंभ होती है। 300 वर्ष ईसा पूर्व लिखे गये कौटिल्य के अर्थशास्त्र को सेवी वर्ग की महत्ता, विशेषता तथा व्यवहारिकता पर सर्वोत्तम एक प्राचीनतम ग्रन्थ (Treatise) माना जाता है। कौटिल्य व्यवहारिक राजनीति का पहला लेखक था, जिसने कोरे सिद्धान्त से सम्पन्न शासक या प्रशासक को राज्य के लिये घातक बताया था। वह पहला भारतीय चिन्तक था, जिसने कुलीन वर्ग (Elite Class) को लोक सेवा सौंपने की सलाह दी थी। कुलीन वर्ग के सदस्य जन्म से बुद्धिमान, बहादुर, ज्ञानी, शिक्षित, धनी तथा स्वाभी भक्त होते हैं। कौटिल्य का सुझाव था कि राजा को ऐसे योग्यता सम्पन्न लोगों को मंत्री और अधिकारी बनाना चाहिये। अर्थशास्त्र में सेवी वर्ग की सेवा की शर्तों का भी उल्लेख है।

### 8.2.1 मुगल शासन काल की प्रशासनिक व्यवस्था

प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था मध्य काल तक चलती रही। स्थानीय हिन्दु रजवाड़ों में महाकाव्यों तथा स्मृतियों की प्रशासनिक झलक मध्यकाल तक देखने को मिलती रही। लेकिन तभी भारत में मुगलों के आगमन के बाद प्राचीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था विलुप्त होने लगी। भारत में सेन्ट्रल एशिया, तुर्की, इरानी और अरब प्रशासनिक चिन्तन का दौर आरम्भ हो गया। मुगल काल में अनेक प्रशासनिक क्षेत्रों में लोक सेवाओं को संगठित किया गया। क्योंकि अब भारत छोटे राज्यों के दौर से निकलकर साम्राज्य की ओर अग्रसर था, तब उसी आकार की अनिवार्यताओं और मांगों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था को रूप दिया गया। अब पहली बार शासक और शासितों के सम्बन्ध स्थापित हुए तथा दूसरी ओर मुगल बादशाहों ने स्थानीय रजवाड़ों को भी मान्यता दी जिसने एक तरह से संघीय राज्य व्यवस्था को जन्म दिया, इसलिये एकीकरण की दृष्टि से प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित हुई।

मुगल बादशाहों ने मुगल सूबेदारों तथा हिन्दु रजवाड़ों को अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक व्यवस्था संगठित करने की छूट दी जिसके परिणाम स्वरूप स्थानीय स्तर पर कई प्रकार की लोक सेवाएँ गठित की गयीं, तथा उनके कार्यों, शक्तियों एवं दायित्वों का निर्धारण किया गया। क्योंकि इस समय का भारतीय समाज कृषि प्रधान था, इसलिये अधिकतर लोक सेवाओं का सम्बन्ध जमींदारी, रय्यतदारी, लगान इत्यादि से अधिक था।

मुगलों की एक विशेषता यह थी कि उन्होंने भारतीय प्रशासनिक प्राचीन परम्पराओं का भी सम्मान करते हुये, अपनी व्यवस्थाओं में उनका समावेश किया। जिसका नतीजा यह निकला कि मुगल कालीन भारतीय प्रशासन

अरब-तुर्की परम्पराओं तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओं की एक नई व्यवस्था बन गयी। तत्कालीन सैनिक और पुलिस अधिकारी 'अमीर' तथा राजकोष अधिकारी 'अमील' अरब परम्पराओं के प्रतीक थे। लेकिन उस समय की भू-राजस्व व्यवस्था भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप बनी रही।

### 8.2.2 ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रशासनिक काल

18वीं सदी में मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। शासन की बागडोर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ में आ गई। अब समय बदल रहा था। भारत औद्योगिक और वाणिज्यिक युग की ओर बढ़ने लगा था। कम्पनी ने भारत की प्राचीन और मुगलों की मध्यकालीन प्रशासनिक परम्पराओं को ध्वस्त करते हुये, एक नई इबारत लिखना आरंभ की। अपनी प्रकृति के अनुसार उसने लोक सेवा में 'योग्यता' को रौंद कर 'लूट-प्रथा' आरंभ कर दी। देश की सत्ता जिस गवर्नर जनरल के हाथ में आती थी वह प्रशासन के लिये अपने अधिकारी नियुक्त करता था। यह एक प्रकार से प्रशासनिक सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रहार था। हाँ, इतना जरूर हुआ कि वारेन हेस्टिंग्स, लार्ड कार्नवेलिस तथा लार्ड वेलेजली जैसे गवर्नर जनरलों ने लोक सेवा और लोक सेवियों को योग्यता की नजर से देखा और प्रशासन के सुधार के लिये कुछ सराहनीय कदम उठाये। लोक सेवकों की चयन प्रक्रिया तथा उनके प्रशिक्षण पर जोर दिया। लोक सेवाओं को कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड (लिखित वचन तथा अलिखित वचन) के रूप में सेवाओं को दो वर्गों में विभाजित कर दिया।

धीरे-धीरे यहाँ भी स्थिति बदलने लगी। कम्पनी के जिन अधिकारियों के हाथ में सत्ता थी, वे घमन्डी, रंगभेद में विश्वास करने वाले और भारतीयों को अपना दास समझने वाले लोग थे। परिणामस्वरूप जब रंग-भेद, सामाजिक अलगाव और आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी तो अचानक 1857 में धैर्य का प्याला टूट गया, जो एक भयानक विद्रोह के रूप में सामने आया। लेकिन इस स्थिति को 1854 में सर चार्ल्स वुड तथा लार्ड मैकाले ने पहले ही भांप लिया था। इसलिये प्रशासनिक सुधारों का दौर आरंभ हो गया।

1857 के विद्रोह के फलस्वरूप कम्पनी का शासन समाप्त हो गया तथा सत्ता ब्रिटिश क्राउन के पास पहुँच गयी। लार्ड मैकाले की सिफारिशों के अनुरूप सारी सरकारी शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित हो गयीं। अब सत्ता का एक नया चेहरा सामने आया। सर एडमण्ड ब्लण्ट ने लिखा: "उच्च ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी वास्तव में भारत के स्वामी बन गये। वे अन्य किसी सत्ता के प्रति उत्तरदायी न होकर परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन गये।"

### 8.3 प्रशासनिक सुधारों का दौर

1858 में भारत सरकार अधिनियम सामने आया जिसके तहत भारत सचिव को भारतीय लोक सेवा में प्रवेश के लिये नियम बनाने का अधिकार सौंपा गया। इधर, क्योंकि लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग जोर पकड़ रही थी, इसलिए 1831, 1861 और 1870 में भारतीय लोक सेवा अधिनियम पारित किये गये। 1876 में तत्कालीन वायसराय लार्ड लिटन ने लोक सेवा के भारतीयकरण की ओर कुछ कदम उठाये लेकिन वे भारतीयों की उच्च पदों पर पहुँचने की आकाँक्षायें पूरी नहीं कर सके। तत्पश्चात् भारतीयों के दबाव के कारण प्रशासनिक सुधारों की एक झड़ी लग गयी: एचीसन आयोग 1886; इस्लिंगटन आयोग 1912; माग्टेग्यू चेम्स फोर्ड रिपोर्ट 1918; भारतीय सरकार अधिनियम 1919; स्टाफ चयन मण्डल 1922; ली आयोग 1923; लोक सेवा आयोग 1926; तथा 1935 का लोक सेवा से सम्बन्धित अधिनियम-इन सब आयोगों ने भारतीय लोक सेवा के विकास में एक अहम भूमिका अदा की। यहाँ इन सभी आयोगों तथा अधिनियमों की विशेषताओं को संक्षेप में समझने का प्रयास किया जायेगा।

एचीसन आयोग, 1886: इस आयोग की मुख्य सिफारिशें थीं (क) कवेनेन्टेड तथा अनकवेनेन्टेड सेवाओं के अन्तर को मिटाकर उसके स्थान पर सामान्य सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत की जाए-भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा एवं अधीनस्थ सेवा। भारतीय लोक सेवा में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड में प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित की जायें जो भारतीयों और योरोपीय प्रत्याशियों को परीक्षा में खुले तौर पर बैठने का अधिकार दें। अन्य दो प्रकार की सेवायें केवल भारतीयों के लिए सुरक्षित हों तथा प्रान्तीय स्तर पर उनकी परीक्षाएँ आयोजित की जायें। इस तरह इन सिफारिशों में भारतीयों को लोक सेवा में प्रवेश के अनेक अवसर मिल गये।

इस्लिंगटन आयोग, 1912: 1912 में भारतीय लोक सेवाओं पर लार्ड इस्लिंगटन की अध्यक्षता में एक शाही आयोग गठित किया गया। इसकी सिफारिशें इस प्रकार थीं (क) लोक सेवाओं में भर्ती के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ प्रतियोगी परीक्षाएँ कराई जायें, (ख) उच्चतम लोक सेवाओं के 25 प्रतिशत पद भारतीयों के लिये रखे गए। इन पदों पर अंशतः सीधे तथा अंशतः पदोन्नति द्वारा भर्ती की जाये। यह सिफारिशें 1917 में प्रकाशित की गयीं तब तक परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं, इसलिये यह सिफारिशें महत्वहीन हो गयीं।

माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1918: भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए 1918 में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट को मील का एक पत्थर माना जाता है। इसकी तीन सिफारिशें महत्वपूर्ण थीं: (अ) सिविल सर्विस परीक्षा भारत एवं इंग्लैण्ड में एक साथ ली जाए। (ब) भारतीय सिविल सेवा में भारतीय प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिये प्रारम्भ में वरिष्ठ स्तर के 1/3 पदों पर भर्ती भारत में की जाए तथा प्रत्येक वर्ष इसमें डेढ प्रतिशत भारतीयों की वृद्धि की जाये। (स) भारतीय लोक सेवा के अधिकारियों के वेतनमान, सेवानिवृत्ति वेतन, अवकाश तथा भत्तों में वृद्धि की जाये। 1919 के अधिनियम में इन सिफारिशों को स्वीकार करते हुये क्रियान्वित किया गया।

भारत सरकार अधिनियम, 1919, यह वह पहला अधिनियम है, जिसने भारतीय लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिये रास्ता साफ किया, लेकिन भारतीय सचिव ने इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया।

ली आयोग, 1923: 1923 में ब्रिटिश सरकार ने लॉर्ड ली की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया जिसका उद्देश्य लोक सेवाओं की संरचना, सेवा की शर्तें तथा अधिकारियों की नियुक्ति के तरीकों पर विचार करना था। इस आयोग की सिफारिशें लोक सेवा का सम्बन्ध केवल उच्चतर सेवाओं से था। आयोग ने पहला सुझाव यह दिया कि लोक सेवा आयोग की स्थापना शीघ्र-अतिशीघ्र की जाये। लोक सेवा आयोग के कार्य दो प्रकार के हों (1) लोक सेवाओं के लिए भर्ती करना तथा भर्ती के लिये उपयुक्त योग्यताओं का स्तर निर्धारित करना, (2) लोक सेवाओं की सुरक्षा एवं अनुशासनात्मक नियन्त्रण।

ली आयोग ने विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से लोक सेवाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया- (1) प्रशासन के सुरक्षित भाग से सम्बन्धित सेवायें, जैसे आईसीएस, आईपीएस, भारतीय वन सेवा इत्यादि। यह भी सिफारिश की गयी कि नियुक्ति तथा नियंत्रण की शक्तियाँ भारत सचिव के पास रहें; (2) हस्तान्तरित क्षेत्र की सेवायें, जैसे भारतीय शिक्षा सेवा, भारतीय कृषि सेवा, भारतीय पशु चिकित्सा सेवा इत्यादि। इन पदों पर नियुक्तियाँ अखिल भारतीय आधार पर की जायें, तथा (3) भारतीय सरकार के अधीन केन्द्रीय सेवायें, जैसे राजनीति विभाग, आबकारी विभाग तथा धर्म विभाग की लोक सेवाएं। इन सभी सेवाओं पर नियुक्तियाँ भारत सचिव द्वारा की जायें।

लोक सेवा आयोग की स्थापना 1926, फरवरी 1926 में भारत सचिव ने लोक सेवा आयोग की स्थापना कर दी। इसमें चार सदस्य तथा एक सभापति था। सर रास बार्कर इस आयोग के प्रथम सभापति नियुक्त किये गये। अभी यह एक स्वतंत्र निकाय नहीं था। इसे गृह विभाग के साथ संलग्न किया गया। अभी इस आयोग को केवल परामर्शदाता का ही दर्जा दिया गया। साइमन कमीशन ने स्वीकार कि आयोग शक्तियों की दृष्टि से मात्र एक छाया ही था। वह भर्ती के मामले में अन्तिम निर्णायक नहीं था।

1935 का भारत सरकार अधिनियम, 1935 का भारत सरकार अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक अहम घटना मानी जाती है। कूपलैण्ड के अनुसार 1935 का अधिनियम “रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक

महान कहानी थी।” इस अधिनियम के तहत भारत को भविष्य में संघात्मक व्यवस्था मिली। संघीय कार्यपालिका, संघीय व्यवस्थापिका तथा संघीय न्यायापालिका की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

#### 8.4 1935 से लेकर 1947 तक प्रशासनिक विकास

1935 में भारत में ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार अधिनियम को लाकर एक अहम संवैधानिक और प्रशासनिक कदम उठाया। जैसा कि लिखा जा चुका है यह अधिनियम रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक महान सफलता था। इस अधिनियम में द्वैध-शासन को अब केन्द्रीय स्तर पर लागू करने का प्रावधान एक महत्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के माध्यम से भारत में संघीय कार्यपालिका, संघीय विधान मण्डल तथा संघीय न्याय पालिका की स्थापना की गयी। प्रान्तों में स्वायत्त की स्थापना के लिये भूमिका तैयार की गई। गवर्नर की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित किया-स्वेच्छा सम्बन्धी शक्तियाँ, व्यक्तिगत शक्तियाँ और परामर्शपरक शक्तियाँ विशेष रूप से मन्त्रियों के संदर्भ में।

1935 के भारत अधिनियम के तहत ब्रिटिश संसद द्वारा जो विभिन्न अधिनियम पारित किये गये, प्रशासनिक विकास की दृष्टि से उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है-

1. भारत में उत्तरदायी तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना तथा उनकी सदस्य संख्या और प्रकृति का क्रमिक विकास;
2. इन संस्थाओं द्वारा शासन को उत्तरदायी बनाकर जनतंत्रीय रूप देना;
3. भारतीय प्रशासन का भारतीयकरण और भारतीयों की प्रशासन में भागीदारी को बढ़ाना; तथा
4. सेवी वर्ग की उपयोगिता को स्वीकार करना, उनकी विशेष भूमिका स्वीकार करना तथा उनके हितों की रक्षा करना।

भारत में आज जो केन्द्रीकृत अखिल भारतीय सेवाओं का रूप है, वह भी 1935 के भारत अधिनियम की देन है। इसका कारण गवर्नर के वे विशेष अधिकार थे, जो 1935 के अधिनियम ने उनको दिये थे। 1935 के अधिनियम ने वास्तव में भारत के भावी संविधान की आधारशिला रख दी और इसके साथ भारतीय प्रशासन के विकास को भी आगे बढ़ाया। हमें यह स्वीकार करना होगा कि वर्तमान में जो संवैधानिक और प्रशासनिक विकास की तस्वीर है, वह अंग्रेजी शासन की देन है। हमें यह व्यवस्था विरासत में मिली है। विकास की यह कहानी 1935 से 1947 तक अंग्रेजों के माध्यम से चलती रही।

#### 8.5 प्रशासनिक संस्थाओं का विकास

सन् 1858 से लेकर 1919 (भारत परिषद् अधिनियम) से गुजरता हुआ। 1935 के ऐतिहासिक भारत अधिनियम के चैनल के रास्ते होता हुआ भारत का प्रशासनिक विकास 1947 तक पहुँचा और तब से अब तक प्रगति के पथ पर अग्रसर है। संक्षेप में विकास की इस कहानी को समझने के लिये अधोलिखित बिन्दुओं का अध्ययन अनिवार्य है-

1. **केन्द्रीय सचिवालय का विकास-** मौजूदा सचिवालय ब्रिटिश शासन की देन है। प्रशासनिक एकता स्थापित करने, प्रशासनिक इकाइयों में समन्वय पैदा करने तथा प्रशासनिक कार्यों में एकरूपता लाने के लिये 1833 में एक चार्टर अधिनियम के द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन सचिवालय की स्थापना की गई। यह विभिन्न विभागों की एक संयुक्त संस्था थी, जिसका 1843 से 1919 और तत्पश्चात् 1947 तक इस का पुनर्गठन और विभिन्न सुधारों के माध्यम से इसका वर्तमान स्वरूप सामने आया। अनेक महत्वपूर्ण विभागों का जन्म सचिवालय के माध्यम से ही हुआ। 1947 तक सचिवालय में 19 विभाग थे। यह सिलसिला आगे तक चलता रहा।

2. **वित्त प्रशासन-** वित्त प्रशासन का इतिहास पुराना है, लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में यह पूरी तरह भ्रष्टाचार और लूट खसोट से ग्रस्त हो गया। इसलिये वित्त का केन्द्रीकरण करने का प्रयास किया जाने लगा। सर्वप्रथम 1870 में वित्तीय विकेन्द्रीकरण के दिशा में लार्ड मयो द्वारा एक निश्चित योजना तैयार की गयी। 1877 में एक योजना के अन्तर्गत भूमि कर, स्थानीय चुंगी, स्टाम्प, स्टेशनरी, कानून तथा न्याय और सामान्य प्रशासन की कुछ व्यय मदें प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दी गयीं। तत्पश्चात् 1882 से लेकर 1907 तक अनेक सुधारात्मक उपायों के आधार पर वित्त प्रशासन को केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय निकायों अथवा सरकारों में विभाजित कर दिया गया। इसी तरह वित्तीय साधनों का भी विभाजन कर दिया गया। विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में चार्ल्स हॉब हाउस आयोग (1907) का बड़ा योगदान है। नतीजा यह निकला कि 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय बजट केन्द्रीय सरकार से अलग कर दिये गये।

### 8.6 लोक सेवा का विकास: ब्रिटिश संदर्भ

लोक सेवा का जो रूप आज भारत में है, वह विकास का परिणाम है, प्राचीन भारत में लोक सेवायें अविकसित थी, क्योंकि उस समय का समाज सरल था। मुगल या मुस्लिम शासन काल में लोक सेवा को नये आयाम मिले लेकिन उनका रूप उतना वैज्ञानिक नहीं था, जितना धीरे-धीरे ब्रिटिश काल में सामने आया। ब्रिटिश शासन काल का दौर औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियाँ बढ़ने के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से आरंभ हुआ लेकिन लोक सेवाओं के क्षेत्र में लूट-प्रथा के चलते प्रशासनिक प्रगति के लिये एक बाधा बन गया। तत्कालीन लोक सेवकों की प्रकृति और व्यवहार के कारण ही सामाजिक अलगाव की नींव पड़ी, भारतीयों में बेचैनी बढ़ी जो अन्तः 1857 की बगावत के रूप में फूटी। यह बगावत ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पतन और अन्त का कारण बनी। परिणामस्वरूप 1858 में ब्रिटिश महारानी या ताज का शासन आरंभ हुआ और इस एहसास के साथ कि लोक सेवायें ही शासन के पतन या उत्थान का कारण बनती हैं, उनके विकास के लिये कदम उठाये जाने लगे।

अब इस तथ्य को स्वीकार किया जाने लगा कि लोक सेवाओं को योग्यता पर आधारित होना चाहिये। इस नजरिये से वारेन हेस्टिंग्स का नाम याद रखना होगा। यह ऐसा गवर्नर जनरल था जिसने भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिये मजबूत लोक सेवाओं की आधारशिला रखी। यहाँ से ब्रिटिशकालीन लोक सेवा के विकास की कहानी कुछ इस तरह है:

वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजली तथा लार्ड मैकाले कम्पनी काल के ऐसे गवर्नर जनरल थे, जिन्होंने पूरी निष्ठा के साथ लोक सेवाओं के स्वरूप, प्रकृति और स्वभाव को बदलने का प्रयास किया। इन्हीं के दौर में भू-राजस्व की वसूली तथा शान्ति व्यवस्था को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये; 1781 में जिलाधीश, मजिस्ट्रेसी तथा न्याय प्रशासन को एकीकृत करने का काम हुआ। लार्ड क्लाइव ने भी प्रशासनिक सुधार के लिये प्रयास किये, लेकिन जब उसे सफलता नहीं मिली तब लार्ड कार्नवालिस ने 1785 से 1793 तक अनेक सुधारात्मक कदम उठाये।

फोर्ट विलियम कालिज की स्थापना लोक सेवाओं के प्रशिक्षण के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम था। भारत से प्रशासक प्रशिक्षण के लिये फोर्ट विलियम जाने लगे। 1833 में भारत में समस्त व्यक्तियों के लिये समान रूप से खुली प्रतियोगिता की पद्धति को स्वीकृति मिली। भारतीय लोक सेवाओं का इतिहास 1854 को भी याद रखना होगा। तब लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने आई.सी.एस. के लिये जो सिफारिशों की वे आज भी भारतीय लोक सेवाओं के गठन और कार्यप्रणाली की आधारशिला है।

1886 में भारत के वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना की जिसकी सिफारिशों के आधार पर सामान्य लोक सेवा को भारतीय लोक-सेवा, प्रान्तीय सेवा और अधीनस्थ सेवा-तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर दिया गया। इस तरह कवेनेण्टेड तथा अनेवेनेण्टेड सेवाओं का अन्तर समाप्त हो गया।

1918 में गठित माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड समिति ने एक रिपोर्ट तैयार की, जो लोक सेवाओं के सुधार के लिये एक वरदान सिद्ध हुई। इस रिपोर्ट की महत्वपूर्ण सिफारिशें थीं: (1) लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ कराई जाए, (2) वरष्ठि पदों पर एक-तिहाई भर्ती भारत में की जाये, ताकि भारतीयों की संख्या में वृद्धि हो, (3) आई.सी.एस. की सेवा शर्तों-सुरक्षा, वेतन तथा पदोन्नति में सुधार किये जायें। 1919 के भारत शासन अधिनियम के बाद इसे लागू किया गया।

1920 का वर्ष भारतीय लोक सेवाओं के लिये संकट का काल था। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान मण्डलों में इन सेवाओं के तौर तरीकों की कटु आलोचना होने लगी; लोक सेवा के अधिकारी व्यक्तिगत रूप से भर्त्सना का निशाना बनने लगे। भारतीय मंत्रियों ने इन लोक सेवकों को प्रायः अपंग बना दिया। 1920 में असहयोग आन्दोलन ने लोक सेवाओं पर कड़ा प्रहार किया। यहाँ तक कि अंग्रेज अधिकारी भारत छोड़ने का मन बनाने लगे। इधर इन सेवाओं के भारतीयकरण की मांग फिर उठने लगी। इस स्थिति से निपटने के लिए एक उच्च लोक-सेवा विषयक शाही आयोग की नियुक्ति लार्ड ली की अध्यक्षता में की गई। इस आयोग ने लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के कारण तीन सकारात्मक नतीजे सामने आये; (1) राज्यों में लोक सेवा आयोगों की स्थापना की गई; (2) चिकित्सा सेवाओं के लिये एक प्रथम आयोग बनाने की सिफारिश की गई; तथा सभी अन्य सेवाओं को भारत मंत्री के क्षेत्राधिकार से निकाल दिया गया और इन पर गवर्नर जनरल और गवर्नरों का नियंत्रण स्थापित किया गया।

हमको यह स्वीकार करना होगा कि ब्रिटिश काल के भारत में अंग्रेज निरन्तर भारतीय नजरिये से तथा भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं में सुधार करते रहे। 1935 का अधिनियम इसे तथ्य का सर्वोत्तम उदाहरण है।

### 8.7 लोक सेवा का विकास: स्वतंत्र भारत में

वास्तव में 1935 का भारत सरकार अधिनियम इस परिकल्पना पर आधारित था कि निकट भविष्य में भारत आजाद होगा और सत्ता भारतीयों के हाथों में होगी। इस तरह 1935 का अधिनियम का भारतीय संविधान की आधारशिला के रूप में सामने आया। नतीजा यह निकला कि स्वतंत्रता के साथ ही लोक सेवाओं का स्वरूप भारत सरकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप बदलने लगा। जो नई तस्वीर सामने आई उसका सार था-

1. आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवा, जैसे आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना; आई.एफ.एस. (भारतीय विदेश सेवा) तथा भारतीय वन सेवा की स्थापना।
2. तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को एहसास था कि देश का चहुमुखी विकास पूरी तरह गतिशील प्रशासन पर निर्भर करता है, इसलिये उन्होंने 1951 में गोरवाला और 1953 में ऐपल्बी को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार लोक सेवाओं के लिये अपना प्रतिवेदन देने के लिये नियुक्त किया। इनकी सिफारिशों के अनुसार 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई।
3. 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने लोक सेवा में सुधार के लिये जो सुझाव दिये, उनके तहत 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया। 1956 में गृह मंत्रालय ने एक प्रशासनिक सतर्कता सम्भाग की स्थापना की। इसी वर्ष एक वेतन आयोग की नियुक्ति की गई, जिसका उद्देश्य केन्द्रीय एवं अखिल भारतीय सेवाओं के वेतन स्तर एवं सेवा शर्तों का पुनरीक्षण करना था। लोक सेवाओं में प्रशिक्षण की दृष्टि से नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन तथा विशेषीकृत प्रशिक्षण अभिकरण स्थापित किये गये। राज्यों में भी इसी प्रकार की प्रशिक्षण संस्थायें स्थापित की गयीं।

प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की स्थापना लोक सेवाओं के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसका वास्तविक उद्देश्य लोक सेवाओं के संगठन तथा कार्य विधि में अनिवार्य सुधार लाना था। इस आयोग ने जो अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसमें प्रमुख सिफारिश यह थी कि लोक-कल्याणकारी राज्य में बढ़ती हुई लोक सेवाओं पर नियंत्रण के लिये एक केन्द्रीय अभिकरण (एजेन्सी) का होना जरूरी है। प्रशासनिक सुधार आयोग का प्रतिवेदन स्वीकार करते हुये भारत सरकार ने 27 जून 1970 को कैबिनेट सचिवालय में सेवी वर्ग विभाग की स्थापना की 1972 में एक अधिसूचना द्वारा सेवी वर्ग विभाग को वे सभी कार्य सौंप दिये गये, जिनकी सिफारिश आयोग ने की थी। संक्षेप में इन सिफारिशों में (1) सामान्य सेवी वर्ग सम्बन्धी नीति की रचना करना; (2) प्रतिभाओं की खोज वरिष्ठ प्रबन्ध के लिये सेवी वर्ग का विकास तथा वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति की कार्यवाही; (3) मानव शक्ति नियोजन, प्रशिक्षण एवं आजीवन सेवा का विकास; (4) सेवी वर्ग प्रशासन में विदेशी सहयोग; (5) सेवी वर्ग प्रशासन में शोध कार्य; (6) कर्मचारी वर्ग में अनुशासन पैदा करना; (7) संघीय लोक सेवा आयोग, तथा राज्य सरकारों इत्यादि के मध्य कड़ी का कार्य करना; तथा स्थापना मण्डल के परामर्श से केन्द्रीय सचिवालय में कार्य करना। वर्तमान में सेवी वर्ग विभाग गृह मंत्रालय का एक स्वतंत्र विभाग है। अब यह प्रधानमंत्री के अधीन रहकर कार्य करता है।

### 8.8 स्वतंत्र भारत में लोक सेवाएं: स्वरूप और विशेषताएं

अनेक बार बताया जा चुका है कि आधुनिक भारतीय लोक सेवा ब्रिटिश शासन की देन है। यह सतत् विकास का परिणाम है। अंग्रेजों ने भारत को भले ही लूटा-खसोटा हो, लेकिन प्रशासन के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। यहाँ भारतीय लोक सेवाओं के कुछ ऐसे पहलुओं पर बात की जायेगी जो एक साधारण विद्यार्थी को समझना चाहिये। यह प्रमुख बिन्दु इस तरह हैं-

1. भारतीय लोक सेवा में भर्ती योग्यता के आधार पर की जाती है। योग्यता की जांच खुली प्रतियोगिता द्वारा होती है, जिसका माध्यम लोक सेवा आयोग है। यह संस्था स्वतंत्र, निष्पक्ष और गैर राजनीतिक है।
2. उच्च लोक सेवा में भर्ती की आयु 21 से 32 वर्ष है। सिफारिश यह भी की गई है कि भर्ती की अधिकतम सीमा 32 वर्ष से घटाकर 27 वर्ष कर देनी चाहिये। यह भी आवश्यक है कि उच्च लोक सेवा के उम्मीदवार अपने विचारों में परिपक्व हों, कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न हों, दृढ़ निश्चय के धनी हों तथा अच्छा सामान्य ज्ञान रखते हों। परीक्षा में दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं हैं-लिखित व्यवस्था और साक्षात्कार व्यवस्था।
3. लोकसेवा के लिये चुने हुये प्रत्याशियों के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था।
4. नौकरी में सुरक्षा, अच्छे वेतन की व्यवस्था और पदोन्नति के न्यायोचित अवसर प्रदान करना ताकि लोक सेवियों की कार्यक्षमता का विकास हो और उनका मनोबल ऊँचा रहे।
5. भारतीय लोक सेवा का 'बहुदेशीय स्वरूप' है। अधिकारी समय-समय पर अलग-अलग पद ग्रहण करते रहते हैं। इस तरह उनको प्रत्येक विभाग का ज्ञान रहता है। विशेषकर आई.ए.एस. एक बहु पदीय सेवा है। अधिकारी प्रशासन की प्रत्येक शाखा से परिचित हो यह लोक सेवा का उद्देश्य है।
6. केन्द्रीय एवं प्रान्तीय लोक सेवाएं 'प्रथम', 'द्वितीय', तृतीय तथा चतुर्थ वर्गों में विभाजित होती हैं। इनके वर्गों के अनुसार इनके कार्य, पद और शक्तियाँ होती हैं। भारत में इस समय तीन अखिल भारतीय सेवायें हैं- आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस.।
7. लोक सेवा के पद प्रत्यक्ष भर्ती और पदोन्नति दोनों पद्धतियों से भरे जाते हैं।
8. भारतीय सेवी वर्ग प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि कुछ सेवायें संघ तथा राज्य दोनों के लिये समान रूप से गठित की गई हैं, जैसी कि अखिल भारतीय सेवायें। ये अधिकारी पूर्णतः केन्द्रीय अथवा

राज्यों की सेवा में नहीं होते हैं, लेकिन दोनों में से किसी एक के अन्तर्गत विभिन्न समयों में कार्य करते हैं। इन सेवाओं में भर्ती समान अर्हताओं और वेतनमान और और अखिल भारतीय आधार पर की जाती है।

### 8.9 लोक सेवा और राजनीति के सम्बन्ध

लोक सेवकों एवं राजनीतिज्ञों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति एक विवादास्पद विषय रहा है। मार्क्स का तो दृष्टिकोण यह था कि नौकरशाही अपने अस्तित्व के लिए पूरी तरह राजनीतिज्ञों पर न केवल निर्भर रहती है, बल्कि राजनीतिज्ञों की यथास्थिति को बनाये रखने के लिए सतत् प्रयास भी करती रहती है। इसलिए मार्क्स ने नौकरशाही को परजीवी (Parasitic) कहा था। नौकरशाही न केवल राजनीतिज्ञों की सहायता करती है, बल्कि वह समाज के सभी प्रभुत्व वाले तबकों की यथास्थिति को बनाये रखती है।

नौकरशाही की एक और विशेषता है, जिसकी ओर मार्क्स ने इशारा किया है, वह है नौकरशाही की 'गोपनीयता और रहस्यमयता'। वह राजनीतिज्ञों की वास्तविक चालों और इरादों को साधारण जन समाज से छुपाती है। "वह राजनीतिज्ञों की हरकतों पर पर्दा डालती है और उनकी चालों को रहस्यमय बनाये रखती है।" इस तरह नौकरशाही राजनीतिज्ञों, सत्ताधारियों और पूँजीपतियों तथा जन-समाज में दूरियाँ बनाये रखती है और अलगाव पैदा करती है।

पश्चिमी जगत तथा लोक सेवा और राजनीति के रिश्ते, पश्चिमी जगत में नौकरशाही के प्रति दृष्टिकोण बहुत कुछ हद तक उदारवादी रहा है। यहाँ लोगों ने मैक्स वेबर द्वारा प्रस्तुत नौकरशाही की रूपरेखा को स्वीकार किया। वेबर ने नौकरशाही और तार्किकता को सिक्के के दो पहलू माना था। वह नौकरशाही और तार्किकता (rationality) को अप्रथक्कारी मानता है। इसलिए पश्चिमी जगत में राजनीति एवं नौकरशाही में कम से कम टकराव देखने को मिला। यहाँ तक महसूस होने लगा कि 'व्यक्तित्व' के अनुसार कभी तो नौकरशाही राजनीति पर हावी हो जाती थी और कभी राजनीति नौकरशाही पर। प्रायः टकराव स्थिति अधिक बनी रहती थी, इसलिये वेबर ने नौकरशाही की "राजनीतिक तटस्थता" को सफल नौकरशाही की एक शर्त माना। और इस तरह राजनीति एवं प्रशासन में द्विविभाजन (dichotomy) का सिद्धान्त स्वीकार किया जाने लगा।

भारतीय संदर्भ, 15 अगस्त 1947 को भारत विभाजन के साथ आजाद हो गया। अंग्रेजों से विरासत में जो स्वतंत्र भारत को मिला उनमें न्याय व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त जो सर्वोत्तम संस्था प्राप्त हुई, वह प्रशासन व्यवस्था थी। प्रशासन व्यवस्था में भी लोक सेवा सर्वोपरि थी। लोक सेवा को भारत ने उसकी सम्पूर्ण मानसिकता सहित ग्रहण कर लिया।

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व नौकरशाही के रूप में आई.सी.एस. थे, जिनका और लोक सेवा दोनों का स्वरूप ब्रिटिश था, इसलिये दोनों में द्वन्द्व और टकराव की संभावना कम थी। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन में नौकरशाही और राजनीतिज्ञों सहयोग और समन्वय बिलकुल चुस्त-दुरूस्त था।

स्वाधीनता के बाद आई.सी.एस. का स्थान आई.ए.एस. और राज्य स्तर पर पी.सी.एस. ने ले लिया, लेकिन व्यक्ति तो बदल गये, प्रशासनिक सोच और आचरण नहीं बदला। इसलिये, स्वतंत्रता के प्रारम्भिक दिनों में नवीन प्रशासनिक ढाँचे में अधिकारियों की मानसिक स्थिति कुछ अजीबोगरीब थी। उन्हें शासन के नवीन राजनीतिक तत्व-मन्त्रियों के साथ सद्भावना और सहयोग के साथ काम करने में कुछ कठिनाई महसूस होती थी। आई.ए.एस. अधिकारी स्वयं को राजनीतिज्ञों से उच्चतर समझते थे और वे यह सोचते थे कि सरकार उनकी इच्छानुसार चलना चाहिये। लेकिन उस समय के राजनेता भी कोई साधारण व्यक्तित्व के नहीं होते थे। स्वतंत्रता की जंग उन्होंने ने लड़ी थी और जीती थी। इसलिये नौकरशाही और राजनीति में टकराव स्वाभाविक था।

स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रधानमंत्री को भी इन अधिकारियों को नियंत्रण में रखने और अपनी नीतियों को उनसे क्रियान्वित कराने में कठिनाई का सामना करना पड़ता था, लेकिन जैसे-जैसे लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होती गयीं। धीरे-धीरे परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक अधिकारियों का यह रवैया भी बदलता गया। स्वयं

प्रशासन का लोकतांत्रिकरण होता चला गया और 'नौकरशाही' अपने स्वरूप और मानसिकता को बदल कर 'लोक सेवक' बनती चली गई। इन अधिकारियों के कर्तव्यों और कार्यों में इस प्रकार के परिवर्तन लाए गये हैं कि वे जन समाज की आवश्यकताओं, संवैधानिक तकाजों और राजनीतिज्ञों के इरादों या इच्छाओं में ताल-मेल विठाकर काम करने लगे। अब जनता में और अधिकारियों में संवाद बढ़ रहा था, दूरी घट रही थी और इस तरह देश अपनी मंजित की ओर बढ़ रहा था। आज यह कहा जा सकता है कि भारतीय लोक सेवाओं का लोकतांत्रिकरण हो चुका है। अब लोक सेवा का विकास, लोकतंत्र के विकास और भारत के विकास का प्रतीक बन गया है।

### 8.10 लोक सेवा विकास की वर्तमान स्थिति

स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन हुए हैं। प्रशासन की नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी हैं। संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है, जिसका अर्थ है कि संविधान की प्रस्तावना को मूल भावना के अनुसार देश की सभी संस्थाओं को अपना काम करना है। यह बात अखिल भारतीय और राज्य सेवाओं के विकास के लिये भी अनिवार्य है। लोक सेवाओं का उत्तरदायित्व और कर्तव्य उत्तरदायी सरकार को मजबूती देने के लिये जरूरी है।

संवैधानिक तकाजों के अनुसार राज्य का कर्तव्य है कि सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, स्तर और अवसर की समानता का वातावरण मिले। सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास और पूँजी की स्वतंत्रता प्राप्त हो। लोक सेवा को संविधान की इस भावना का सम्मान करना होता है।

इस संदर्भ में यह याद रखना आवश्यक है कि भारतीय लोक सेवा के विकास का इतिहास, उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर उसके अतीत ने उस पर गहरी छाप छोड़ी है। अतीत की प्रशासनिक विरासतें और वर्तमान का प्रशासनिक स्वरूप अप्रथक्कीकरण है। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं, और प्रशासन को निरन्तरता देती हैं। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है।

भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह ब्रिटिश प्रभाव देखने को मिलता है, उनमें से प्रमुख हैं-सचिवालय व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक सेवार्यें, संसदीय एवं न्याय प्रणालियाँ। इनमें यदि सब से अधिक प्रभावित संस्था है तो वो लोक सेवा ही है। बहुत कुछ लोकतांत्रिक होने के बाद भी भारतीय लोक सेवार्यें कहीं न कहीं अपने स्वभाव, अपने व्यवहार और अपनी सोच ने ब्रिटिश लोक सेवा के आज भी समीप है।

भारतीय लोक सेवा का एक नकारात्मक पहलू भी है। जहाँ ब्रिटिश लोक सेवक कुलीन परम्पराओं के अनुसार चलते थे, वहाँ आज ये मध्यवर्गीय लोक सेवी वर्ग समाज की नकारात्मक प्रवृत्तियों से पूरी तरह जुड़ा हुआ है। भारत के चहुमुखी विकास के बाद भी कुछ क्षेत्रों में स्थिति अस्पष्ट तथा भ्रमित है। देश की राजनीतिक अस्थिरता, राजनीति के अपराधीकरण, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धर्मान्धता और भ्रष्टाचार का बढ़ता प्रभाव-यह सब कुछ लोक सेवकों को भ्रमित करता है। कानून की स्थिति में गिरावट, हिंसा का बढ़ता प्रभाव, प्रशासन का गिरता स्तर-यह न केवल लोक सेवा के विकास में एक बाधा है, बल्कि लोकतान्त्रिक मूल्यों के भी विपरीत है। इन बातों का प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. एचीसन आयोग किस सन् में गठित किया गया?

क. 1886

ख. 1857

ग. 1860

घ. 1868

2. लोक सेवा आयोग की स्थापना किस सन् में हुई?
 

क. 1924	ख. 1948
ग. 1926	घ. 1928
3. 1935 में कौन-सा ऐतिहासिक अधिनियम आया?
 

क. भारत परिषद अधिनियम	ख. भारत सरकार अधिनियम
ग. भारत लोक सेवा अधिनियम	घ. इनमें कोई नहीं।
4. 1966 में कौन-सा आयोग गठित किया गया?
 

क. प्रशासनिक सुधार आयोग	ख. इस्लिंगटन आयोग
ग. ली आयोग	घ. एचीसन आयोग
5. गोरवाला और ऐपेल्बी को किस प्रधानमंत्री ने प्रशासनिक अध्ययन के लिये आमंत्रित किया?
 

क. लाल बहादुर शास्त्री ने	ख. मोरारजी दिसाई ने
ग. श्रीमती इन्दिरा गांधी ने	घ. पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने

### 8.11 सारांश

- लोक सेवाओं के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया गया है-प्राचीन भारत में वैदिक काल से लेकर कौटिल्य के काल तक, मध्य युग में इस्लामी काल से लेकर मुगल शासन काल तक, तथा आधुनिक काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी काल से लेकर ब्रिटिश काल तक यह विकास चला।
- लोक सेवाओं का वर्तमान काल 1935 से आरंभ होकर, स्वाधीनता के वर्षों से गुजरते हुये अब तक यथावत् चल रहा है। 1858 से लेकर आज तक विकास की जो कहानी है, इसे लोक सेवा या प्रशासनिक सुधारों की कहानी माना जा सकता है। 1831, 1961, 1970, 1876 से चल कर 1918, 1922, 1923, 1926 और 1935 तक सुधारों को सतत् विकास का सिलसिला चलता रहा। आज भी यह विकास जारी है, नई संस्थाओं ने जन्म लिया है, नये प्रशासनिक विचार उभरे हैं, नई चुनौतियाँ सामने आयी हैं और उनका पूरे साहस से समाधान खोजा गया है।
- 1935 से लेकर आज तक अनेक प्रशासनिक संस्थाओं का विकास हुआ है-केन्द्रीय सचिवालय, वित्त प्रशासन, लोक सेवा आयोग, भारतीय विदेश विभाग, भारतीय वन विभाग आदि प्रमुख हैं।
- लोक सेवा का आधुनिक इतिहास ब्रिटिश शासन से आरंभ होता है। इसलिये आज भारत का लोकसेवा का जो स्वरूप है, वह ब्रिटिश काल की विरासत है, जिसकी अवहेलना करके नया भारत एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता है। वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवेलिस, लार्ड क्लाइव, लार्ड वैलेजी तथा लार्ड मैकाले जैसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरलों में भारत में प्रशासनिक और लोक सेवाओं की बुनियाद रखी।
- इतना ही नहीं 1886 में भारतीय वायसराय लार्ड डफरिन ने चार्ल्स एचिसेन के माध्यम से लोक सेवा को भारतीय लोक सेवा, प्रान्तीय सेवा और अधीनस्थ सेवा तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया। तत्पश्चात् 1918 में माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर लोक सेवा की परीक्षा भारत और इंग्लैण्ड में एक साथ होने लगी, वरिष्ठ पदों पर एक तिहाई भर्ती भारतीयों के लिये सुरक्षित की गई। 1919 के भारत अधिनियम इन शर्तों से लागू किया गया।
- स्वतंत्र भारत लोक सेवा की तस्वीर धीरे-धीरे बदलने लगी। आई.सी.एस. के स्थान पर आई.ए.एस. तथा आई.पी.एस. ने स्थान ग्रहण कर लिया।

- गोरवाला और ऐपल्बी की सिफारिशों के आधार पर 1954 में दिल्ली में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना की गई। 1970 में कार्मिक विभाग का गठन किया गया तथा 1956 में सतर्कता सम्भाग की स्थापना की गयी। इसी वर्ष में वेतन आयोग और प्रशासनिक सुधार आयोग अस्तित्व में आया।
- स्वतंत्र भारत में लोक सेवाओं के सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। भर्ती के नियम तय किये गये, प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई, नौकरी की शर्तों को तैयार किया गया तथा लोक सेवाओं को वर्गीकृत किया गया।
- लोक सेवा के विकास के कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। आज के मध्य वर्गीय लोक सेवक समाज की उन सभी बुराईयों का प्रतिबिम्ब है, जो किसी भी समाज को खोखला करती हैं-जातिवाद, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, हिंसा, आपराधीकरण तथा भ्रष्टाचार और इन सब बातों में राजनीतिज्ञों, अपराधियों और नौकरशाही का गठजोड़-वे पहलू हैं जो देश के विकास में बाधा डालते हैं।

### 8.12 शब्दावली

द्विविभक्तिकरण (dichotomy)- लोक प्रशासन में द्विविभक्तिकरण शब्द का प्रयोग प्रशासन और राजनीति के विभक्तिकरण से लिया जाता है। यह एक विवादास्पद विषय है, जिसके बारे में राजनीति शास्त्री एवं प्रशासनिक चिन्तक एकमत नहीं हैं। कुछ चिन्तक राजनीति और प्रशासन के गठजोड़ को एक बुराई मानते हैं और कुछ एक अनिवार्यता। वेबर प्रशासन और राजनीति के द्विविभक्तिकरण का समर्थक है।

ताज या क्राउन (Crown)- साधारण अर्थ में ताज वह आभूषण है जो राजा या रानी पहनते हैं। लेकिन संवैधानिक अर्थ में ताज एक संस्था है, जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से इंग्लैण्ड के राजतंत्र से है। राजा अथवा रानी नशवर है लेकिन ताज का अस्तित्व बना रहता। मशहूर कहावत है कि जपदह पे कमकए स्वदह सपअम जीम ापदह इसका अर्थ है कि राजा शरीर के रूप में तो मर गया, लेकिन राजा राजतंत्र की संस्था के रूप में जीवित है।

### 8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क,
2. ग,
3. ख,
4. क,
5. घ

### 8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, हरिशचन्द्र: प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं, 971
2. सुब्रह्मण्यम, बी: भारतीय प्रशासन, 1974
3. पायली, एम0वी0: भारतीय संविधान, 1966
4. अवस्थी एवं महेशवरी: लोक प्रशासन, 1992
5. फड़िया, बाबू लाल: भारत में लोक प्रशासन, 1993

### 8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Avasthi and Avasthi : Indian Administration.
2. Ravindara Prasad, d : Administrative Thinkers.
3. fffPiner and Presthus : Public Administration.
4. Gladden, G.E. : Dynamics of Public Administration, 1971

---

**8.16 निबंधात्मक प्रश्न**

---

1. कौटिल्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम क्या है? उसमें लोक सेवी वर्ग की किन विशेषताओं पर बल दिया गया है?
2. ब्रिटिश काल में लोक सेवा के विकास के लिये वारेन हेस्टिंग्स-कार्न वलिस, लार्ड क्लाइव तथा लार्ड मैकाले जैसे गवर्नर जनरलों ने क्या कदम उठाये?
3. गोरवाला और ऐपलबी ने लोक सेवा के सुधार के लिये क्या सिफारिशें कीं?
4. स्वतंत्रता के बाद लोक सेवा के सन्दर्भ में आई.सी.एस. के स्थान पर कौन सा कैडर स्थापित किया और कितने वर्गों में विभाजित किया गया?
5. स्वतंत्र भारत में लोक सेवकों तथा राजनीतिज्ञों के सम्बन्ध कैसे हैं? इनका नकारात्मक स्वरूप क्या है?

## इकाई- 9 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ

### इकाई की संरचना

- 9.0 प्रस्तावना
- 9.1 उद्देश्य
- 9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण
  - 9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण
  - 9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर
- 9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद
- 9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क
- 9.5 विशेषज्ञों के तर्क
- 9.6 विवाद का समाधान
- 9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव
- 9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल
- 9.9 निष्कर्ष
- 9.10 सारांश
- 9.11 शब्दावली
- 9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 9.15 निबंधात्मक प्रश्न

### 9.0 प्रस्तावना

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद ब्रिटेन की फुल्टन, समिति 1965 की देन है, जिसने पहली बार सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ नामों को अपने प्रतिवेदन में उद्धृत किया। भारत में यह विवाद ब्रिटेन से ही आया है। विवाद केवल यह है कि अधिक महत्व किसका है? सामान्यज्ञ का या विशेषज्ञ का, विशेष रूप से शासकीय व्यवस्था के संदर्भ में। सामान्यज्ञ के तर्क हैं कि प्रशासन बिना उनके नहीं चल सकता; नीति-निर्माता वही हैं; वही मंत्रियों को परामर्श देते हैं, इसलिए वे श्रेष्ठ हैं; वे गरिमामय हैं और वे प्रतिष्ठित हैं।

विशेषज्ञों का तर्क है कि वे भी अपने क्षेत्र में दक्ष हैं, वे यांत्रिकी में निपुण हैं, देश का आर्थिक, वैज्ञानिक और संरचनात्मक विकास उनके कंधों पर है। लेकिन सरकार सामान्यज्ञों की तुलना में उनकी अवहेलना करती है, वेतन, भत्ते और अन्य सुख सुविधाओं में वे सामान्यज्ञों से पिछड़े हुये हैं। इस तरह यह विवाद विशेषज्ञों में एक मनोसंकट की स्थिति पैदा करता है, जो विकास में बाधा पहुँचाता है।

### 9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके के उपरान्त आप-

- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अर्थ समझ सकेंगे।
- सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ विवाद का कारण और परिणाम समझ सकेंगे।
- अपने-अपने पक्ष में सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों के तर्क जान पायेंगे।

- विवाद को सुलझाने के लिए सरकार की ओर से क्या उपाय सुझाये गये हैं, इनकी जानकारी ले सकेंगे।
- विवाद के समाधान के लिए विभिन्न आयोगों की क्या सिफारिशें हैं, उनसे परिचित होंगे।

## 9.2 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ: चरित्र-चित्रण

लोक प्रशासन की सरलतम भाषा में सामान्यज्ञ वे प्रशासनिक कर्मचारीगण (Personnel) हैं, जो राज्य की प्रशासनिक सेवाओं को अन्जाम देते हैं। इनका इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी आधुनिक सभ्यता। कौटिल्य ने अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में राज्य के जिन महत्वपूर्ण कर्मियों को राज्य की प्रगति के लिए अनिवार्य बताया था, वे यही सामान्यज्ञ थे। भारत में चाहे मुस्लिम काल हो या मुगलकाल हर चरण में सामान्यज्ञ प्रशासकों का वरचस्व बना रहा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दौर में भी लूट प्रथा के अनुसार एक तरह से प्रशासनिक सत्ता सामान्यज्ञों के हाथ में थी। 1858 में जब ताज या ब्रिटिश संसद के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर आई तो प्रशासन का वह सारा स्वरूप जो ब्रिटेन की विशेषता थी, भारत पर छा गया। इस नये ब्रितानी स्वरूप को लोक सेवा, नौकरशाही अथवा नागरिक सेवा का नाम दिया गया, जिसका आधार आई.सी.एस. अधिकारी थे।

आरंभ में इंग्लैण्ड के 20-21 वर्ष के शिक्षित, प्रतिभाशाली युवाओं को आई.सी.एस. की प्रतियोगी परीक्षा में सफलता के बाद भारत में प्रशासनिक लोक सेवा के लिए चुना जाता था। यह अधिकारी एक निश्चित उद्देश्य-ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा एवं सेवा तथा आत्महित के लिए भारत आते थे और निश्चित समय तक सेवा करके अपने देश लौट जाते थे। यह अधिकारी स्वयं को बहुत श्रेष्ठ समझते थे और इसी श्रेष्ठता के भ्रम से ग्रस्त रहकर प्रशासन करते थे। इन्होंने कभी भी भारत को आत्मसात नहीं किया, बल्कि पूरी तरह सामाजिक अलगाव की नींव डालकर भारत से विदा होते थे।

ब्रिटिश आई.सी.एस. की इस मानसिकता और आचरण ने धीरे-धीरे भारतीयों को विचलित करना आरंभ कर दिया। लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग तेज होने लगी। भारतीयों की मांग को गम्भीरता से लिया जाने लगा। 1886 में चार्ल्स एचीसन की अध्यक्षता में एक आयोग स्थापित किया गया। इस आयोग ने सामान्य लोक सेवा को भारतीय नागरिक सेवा, प्रान्तीय सेवा तथा अधीनस्थ सेवा में वर्गीकृत कर दिया। तत्पश्चात् माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर 1919 में लोक सेवा की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ ली जाने लगी, और इस तरह भारतीय लोक सेवा में भारतीयों की संख्या बढ़ाने का रास्ता खुला। जब लोक सेवा के भारतीयकरण की मांग और तेज हो गयी तो लार्ड ली आयोग की स्थापना की गई। इसका परिणाम यह निकला कि 1935 से लोक सेवाओं के भारतीय करण का मार्ग पूरी तरह प्रशस्त हो गया। स्वतन्त्रता के बाद आई.सी.एस. के स्थान पर नवीन अखिल भारतीय सेवाएँ, यथा- आई.ए.एस. और आई.पी.एस. की स्थापना की गयी। 1951 में आई.एफ.एस. की सेवा भी अस्तित्व में आ गयी।

यह सब कुछ लिखने का उद्देश्य यह है कि समय के साथ-साथ राजनीतिक सत्ता और व्यवस्था बदलने के बाद यद्यपि प्रशासनिक क्षेत्र में मानवीय तत्व बदल गये, संरचना बदल गयी, लक्ष्य बदल गये, लेकिन जो नहीं बदल सकी, वह है लोक सेवियों की मानसिकता और उनका आचरण। लोक सेवा ने पूरी तरह नौकरशाही का चोला पहन लिया है। ब्रिटिश काल में इसने अभिजात वर्ग (Elite Class) का रूप धारण कर लिया था, लेकिन अब क्योंकि नौकरशाही मध्यवर्ग से है, इसलिए यह अभिजात वर्गीय तो नहीं हो सकी, लेकिन वो स्वयं को श्रेष्ठतम् समझने लगी। आज भी यह साधारण लोगों से दूर सिविल लायंस के विशाल बंगलों में निवास करती है। एक मंत्री से मिलना आसान है, लेकिन एक जिलाधीश या कमीशनर से मिलना बहुत कठिन है।

### 9.2.1 विशेषज्ञ: प्रकृति और आचरण

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के कारण राज्य में एक नया वर्ग उदित हुआ। यह वर्ग था तकनीशियनों, वैज्ञानिकों, विधिशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों का। ये वे वर्ग थे जो उद्योगों के क्षेत्र में अपना सक्रिय योगदान देते थे। आगे चलकर इन्हीं वर्गों में स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कर्मी भी जुड़ गये। जैसे-जैसे आर्थिक जगत का विकास होता गया, इन कर्मियों का भी महत्व बढ़ता गया। यहाँ तक कि जहाँ लोक सेवकों को सामान्यतः कहा गया, इन विशिष्ट कर्मियों को विशेषज्ञ कहा जाने लगा। इस तरह शासकीय समाज तकनीकी दृष्टि से सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ में आज विभक्त हो चुका है।

‘सामान्यवादी’ एवं ‘विशेषज्ञ’ शब्दों की कोई स्पष्ट सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। समझ में केवल इतना ही आ सकता है कि जो लोक सेवा में प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होते हैं, वे सामान्यज्ञ की श्रेणी में आते हैं। इनकी कोई विशेष पृष्ठभूमि नहीं होती और यह सरलता से नियमानुसार शासन के एक विभाग या शाखा से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित होते रहते हैं। अधिकांशतः इनका कार्य प्रबन्धन का होता है। कुछ समालोचकों का मानना है कि इनका कार्यक्षेत्र पोस्टकोर्ब (POSDCORB)- नियोजन, संगठन, पर्यवेक्षण, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट-निर्माण की परिधि में आता है।

यदि सामान्यज्ञ को समझ लिया जाये तो विशेषज्ञ को समझना आसान होगा। एक लोक सेवक (IAS) किसी एक प्रशासनिक कार्य में निपुण, दक्ष और अनुभवी हो जाए, तब उसे भी विशेषज्ञ माना जाएगा। लेकिन सामान्यतः वो अधिकारी जो अपनी विशिष्ट तकनीकी शिक्षा के आधार पर लोक सेवा आयोग से प्रतियोगी परीक्षा द्वारा चयनित होता है और चयन के बाद प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजर कर वह विशिष्ट तकनीकी पद पर नियुक्त होता है और उसी विशेष विभाग में उसकी पदोन्नति होती रहती है, तो वह अधिकारी विशेषज्ञ कहलाएगा। इस तरह विशेषज्ञ को जो बात सामान्यज्ञ से पृथक करती है, वह है उसकी विशिष्ट शिक्षा और प्रशिक्षण। विशेषज्ञ अपने क्षेत्र में ‘दक्ष’, तकनीकी दृष्टि से प्रतिभाशाली और समय के साथ अनुभवी होता है।

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने विशेषज्ञ सेवाओं को कार्यात्मक सेवाओं की संज्ञा दी है। फुल्टन समिति (ब्रिटेन की लोक-सेवा समिति, 1966-68) ने उन कर्मचारियों को विशेषज्ञों का नाम दिया है, जो अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार शासन में एक से अधिक विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं। इस श्रेणी के अधीन अधिवक्ता, चिकित्सक, अभियान्त्रिक, वैज्ञानिक, लेखाकार, अर्थशास्त्री, ड्राफ्टमैन आदि आते हैं।

### 9.2.2 विशेषज्ञ और सामान्यज्ञ में अन्तर

संक्षेप में सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ का अंतर स्पष्ट करना जरूरी है। भारतीय लोक-प्रशासन संस्थान ने सेवीवर्ग प्रशासन पर एक सेमिनार का आयोजन किया था। विषय था ‘सामान्यवादी अधिकारियों’ एवं ‘विशेषज्ञ’ अधिकारियों को परिभाषित करना। यद्यपि सेमिनार इस उद्देश्य में असफल रहा, लेकिन कुछ तथ्य स्पष्ट हुए-

- ऐसे तमाम लोक सेवक जिन्होंने अखिल भारतीय लोक सेवा की अनिवार्य प्रतियोगिता सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की हो, तथा तत्पश्चात् अनिवार्य प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण की हो, उनको चयनित और प्रशिक्षित करके मध्यस्तरीय निरीक्षणात्मक पदों पर नियुक्त कर दिया जाता है, ऐसे कर्मचारी को सामान्यज्ञ अधिकारी कहा जाता है। इन अधिकारियों के लिए सामान्यतः अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक अर्हतायें निर्धारित नहीं हैं।
- दूसरी व्यवस्था यह है कि मध्यस्तरीय पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है, जिन्होंने सम्बन्धित पद के लिए निर्धारित अनिवार्य तकनीकी या व्यावसायिक योग्यता प्राप्त की हो। ये व्यक्ति अपनी शिक्षा एवं विशिष्टता के आधार पर उन्हीं पदों पर नियुक्त होते हैं, जिनके लिए इनका चयन हुआ है। ऐसे

अधिकारियों को विशेषज्ञ कहा जाता है। इनके कार्य अपनी प्रकृति से तकनीकी होते हैं। यह अपने कार्यक्षेत्र में 'दक्ष' या माहिर होते हैं, इसलिए इनको विशेषज्ञ का दर्जा दिया गया है।

### 9.3 सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद

विवाद चाहें कहीं भी हों-व्यक्तियों के मध्य, दलों के मध्य या वर्गों के मध्य, उनके कारण चार हो सकते हैं- मनोवैज्ञानिक, भौतिक, कार्यात्मक अथवा परिस्थितीय। कहीं न कहीं यह चारों कारण सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के टकराव में भी देखने को मिलते हैं। विश्व के अनेक लोकतांत्रिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञों के मध्य अनेक मुद्दों पर विवाद और टकराव की समस्या व्याप्त है। विशेष तौर से इंग्लैण्ड, अमरीका और भारत इस प्रशासनिक द्वन्द से पूरी तरह ग्रस्त हैं। इस विवाद की पृष्ठभूमि 1965 में ब्रिटेन की 'फुल्टन समिति' ने तैयार की थी। उसने अपनी सिफारिश में पहली बार 'सामान्यज्ञ' तथा 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया और दोनों वर्गों के कार्यों एवं दायित्वों का विश्लेषण करते हुए 'सामान्यज्ञ' की श्रेष्ठता को इंगित करके दोनों वर्गों में टकराव और द्वन्द को हवा दे दी। संघर्ष की यह बीमारी भारत में भी पहुँच गई, यहाँ तक कि इस विवाद ने डॉ० शाह को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया, जिसके फलस्वरूप देश में इंजीनियरों ने हड़ताल कर दी।

सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के मध्य संघर्ष के अनेक कारण हैं। इनमें पहला है- मनोवैज्ञानिक, दूसरा भौतिक है, तीसरा कार्यात्मक और चौथा परिस्थितीय।

1. **मनोवैज्ञानिक कारण-** अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से, अपनी परम्पराओं से, अपनी विरासत से और अपनी मानसिकता से सामान्यज्ञ स्वयं को श्रेष्ठतम समझता है, न केवल किसी एक वर्ग के मुकाबले बल्कि पूरे समाज के संदर्भ में। इंग्लैण्ड में जहाँ इसका विधिवत् जन्म हुआ, वहाँ इसने बहुत जल्दी अभिजात वर्ग का रूप ले लिया; स्वयं को 'स्वर्ग-जन्मा' मानने लगा; उपनिवेशों में इस वर्ग के अधिकारियों ने केवल स्वामियों की तरह ही व्यवहार किया और उपनिवेशी निवासियों को लगभग अपना गुलाम बना लिया। आश्चर्य की बात यह है कि जब लोक सेवाओं का भारतीयकरण हो गया और भारतीय युवा आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करके विभिन्न पदों पर अधिकारी बने तो उन्हें भी अंग्रेजों के रंग-रूप को छोड़कर वह सब कुछ विरासत के रूप में ग्रहण कर लिया जो नौकरशाही की पहचान थी।

स्वतन्त्रता के बाद भी स्थिति नहीं बदली। केवल आई.सी.एस. का नाम आई.ए.एस. हो गया। मानसिकता ज्यों की त्यों वही बनी रही। भारतीय आई.ए.एस. अधिकारी, पूरी तरह 'उत्कृष्ट मनोग्रंथि' के आवेश में जकड़े रहे। उनकी 'सनक' (Complex) में कोई सुधार नहीं हुआ।

दूसरी ओर विशेषज्ञ सामान्यज्ञ की मानसिकता के विरुद्ध प्रतिकार (Counter-reaction) भावना से मजबूर होकर मनःसंकट (Psychic Crisis) में पहुँच जाते हैं। वे किसी भी रूप में स्वयं को कमतर नहीं समझते हैं, और किसी भी स्थिति में वे सामान्यज्ञों के आधिपत्य में रहना सहन नहीं कर सकते। तब सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव होना स्वाभाविक है। सामान्यज्ञों की प्रतिष्ठा को सदा बनाए रखना और विशेषज्ञों को उनके अधीन रखना अन्याय है।

2. **भौतिक कारण-** भौतिक कारणों को आर्थिक भी कहा जा सकता है। भौतिक कारणों में सबसे अहम वेतन विसंगतियाँ हैं। विशेषज्ञों का तर्क है कि उनके कार्य और उत्तरदायित्व किसी भी रूप में सामान्यज्ञों (आई.ए.एस.) से कम नहीं है। उनका कहना है कि वे दक्षता के ऐसे कार्य करते हैं, जो सामान्यज्ञ नहीं कर सकते, जबकि वे सामान्यज्ञों के प्रशासनिक कार्यों को पूरी निपुणता के साथ अंजाम दे सकते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी सामान्यज्ञों को विशेषज्ञों की तुलना में वेतन अधिक दिया जाता है तथा उनको तरह-तरह के भत्ते भी दिए जाते हैं। पदोन्नति के मामले में भी सामान्यज्ञ अधिक भाग्यशाली हैं। एक आई.ए.एस. को जल्दी-जल्दी पदोन्नति देकर 5 वर्ष बाद जिलाधीश व 15 वर्ष के बाद केन्द्र सरकार में सह-सचिव तथा

- राज्य में आयुक्त बना दिया जाता है। इसके विपरीत विशेषज्ञ को उच्च पद पर पहुँचते-पहुँचते 20-25 वर्ष लग जाते हैं।
3. **कार्यात्मक कारण-** कार्यात्मक कारण में मुख्य मुद्दा नीति-निर्माण और निर्णय-निर्माण के क्षेत्र का है। नीति-निर्माण अथवा निर्णय-निर्माण का कार्य सामान्यज्ञों को मिला हुआ है। यहाँ तर्क यह है कि विशेषज्ञों द्वारा एकत्रित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर जो कुल कार्य का 90 प्रतिशत है, सामान्यज्ञ निर्णय-निर्माण और नीति-निर्माण का काम करके अपने महत्व और श्रेष्ठता को सिद्ध करते हैं। यह अनुचित और अतार्किक है। विशेषज्ञों का तर्क है कि नीति-निर्माण का काम भी विशेषज्ञ को मिलना चाहिए, जिसमें उनकी भूमिका अधिक रहती है। विशेषज्ञों का यह तर्क तो उचित है, लेकिन शासन स्तर पर केवल सामान्यज्ञ को दक्षता और श्रेष्ठता को स्वीकार किया जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों वर्गों में टकराव होना स्वाभाविक है।
  4. **परिस्थितिय कारण-** शासन में एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक संगठन अथवा निकाय है, जिसे सचिवालय कहते हैं। केन्द्र और राज्य के सचिवालय शासन के विभिन्न मंत्रालयों से जुड़े होते हैं। मंत्रालयों में मंत्री होते हैं, लेकिन सचिवालयों में सचिवों की एक श्रृंखला होती है। इन सचिवों एवं मंत्रियों में एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, जो संवाद और सूचना के माध्यम से निरन्तर जारी रहता है। यह सचिव सामान्यज्ञ से होते हैं और क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप से मंत्रियों के सम्पर्क में रहते हैं, इसलिए इनका महत्व भी अधिक हो जाता है।

दूसरी ओर प्रत्येक राज्य और केन्द्र में मुख्यालय स्तर पर निदेशालय होते हैं, जिनके मुखिया निदेशक होते हैं। स्थिति यह होती है कि सचिव और निदेशक का रिश्ता पदसोपनीय आधार पर होता है। एक तरह से निदेशक सचिव के अधीन होता है। वह अपनी मर्जी से अपने विभाग के मंत्री से नहीं मिल सकता है। यदि मंत्री चाहता है तो वह निदेशक को बुलाकर बात कर सकता है लेकिन प्रायः वह विभाग के सचिव के माध्यम से ही राजनीतिक स्तर पर बात करता है। क्योंकि निदेशक विशेषज्ञ होता है और विभाग का अधिकांश कार्य निदेशालय के ही माध्यम से होता है, इसलिए विशेषज्ञ को तब बड़ी मानसिक चोट पहुँचती है, जब सामान्यज्ञ (सचिव) उसको आदेश देता है। ये ऐसा परिस्थितिय कारण है जो सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के टकराव की तीव्रता को बढ़ाता है।

#### 9.4 अपनी श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सामान्यज्ञों के तर्क

सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य का विवाद तब और आसानी से समझ में आयेगा जब स्वयं इन दोनों वर्गों के प्रवक्ताओं के मन को टटोला जाए। सर्वप्रथम हम सामान्यज्ञों के तर्कों को लेते हैं-

1. सामान्यज्ञ स्वयं को ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानते हैं। वे अपनी श्रेष्ठता की जड़े ब्रिटिश शासन काल में खोजते हैं। वे समझते हैं कि वे ब्रिटिश लोक सेवियों (ICS) के आधिकारिक वारिस हैं। उनके मौलिक वर्ग (नौकरशाह) ब्रिटिश साम्राज्य की धरती पर ब्रिटिश राजा के शासन के बाद प्रशासन के 'शाह' हैं। उनका दावा है कि वे भारत में आज भी अपने पूर्वजों की प्रशासनिक विरासत को संजोए हुए हैं।
2. सामान्यज्ञों का दूसरा तर्क यह है कि वे ऐसे प्रशासनिक काम करते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध जनहित से है, इसलिए वे जन सम्पर्क में रहते हैं, जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं से परिचित रहते हैं। इसलिये, विभिन्न विभागों के निकायों पर सामान्यज्ञों का वर्चस्व स्वाभाविक होता है।
3. सामान्यज्ञों का दावा है कि नीति-निर्माण की वैधानिकता की बारीकियों को वे ही जानते हैं। यह उनका उत्तरदायित्व है कि नीतियाँ सम्बन्धी ऐसे निर्णय लें, जो कानूनी दृष्टि से सटीक हो, जो संविधान की मर्यादा को भी बनाये रखें और जिनके नतीजे जन-हित में भी हों।

4. लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनेता अपनी नीतियों, विश्वासों, विचारधाराओं तथा वायदों (मैनिफेस्टो) के आधार पर निर्वाचित होकर आते हैं तथा सत्ता ग्रहण करके उनका यह कर्तव्य होता है कि वे जनता से किए वायदों को पूरा करें। सामान्यज्ञों का कहना है कि केवल वे ही सत्ताधारियों द्वारा किये गये वायदों को पूरा कर सकते हैं। राजनेता अपने राजनीतिक अस्तित्व के लिए सामान्यज्ञों पर ही निर्भर रहते हैं।
5. सामान्यज्ञों का मंत्रियों से प्रत्यक्ष संवाद रहता है। विशेषज्ञों में मंत्रियों को समझाने की, विश्वास दिलाने की अथवा आश्वस्त करने की महारत नहीं होती है। विशेषज्ञ अड़ियल और दंभी होते हैं। और वे न तो मंत्री की दशा को समझते हैं न उसको विश्वास दिला सकते हैं। वे सदा अभिनीत से प्रभावित रहकर मंत्री को परामर्श देते हैं।
6. पाल एपल्वी विशेषज्ञ को संकीर्ण प्रवृत्ति का मानता है। वह किसी भी समस्या को तकनीकी दृष्टि से देखता है, ओर उसी संदर्भ में फैसले लेता है। अतः वह लचीलेपन से दूर रहता है। नतीजा यह निकलता है कि सामान्यज्ञ और विशेषज्ञ के नजरियों में सामंजस्य बिठाना कठिन होता है।

### 9.5 विशेषज्ञों के तर्क

1. विशेषज्ञों के भी अपने पक्ष में और सामान्यज्ञों के महत्व के विरुद्ध अनेक मजबूत तर्क हैं। उनकी पहली शिकायत ये है कि शासन की नजर में आई.ए.एस. अधिकारियों का अधिक महत्व है। सचिवालय में 50 प्रतिशत से अधिक उपसचिव जैसे उच्च पदों पर आई.ए.एस. की नियुक्ति की जाती है। नतीजा यह निकलता है कि सचिव एवं उप-सचिव के पदों पर सामान्यज्ञों के आसीन रहने से विशेषज्ञों का मंत्रियों से सीधा सम्बन्ध टूट जाता है, जिसके कारण वे तकनीकी विषयों पर अपने सुझावों और दृष्टिकोणों को मंत्रियों तक नहीं पहुँचा सकते। आज भी विशेषज्ञ राजनीतिक संवाद में सामान्यज्ञों की भूमिका अहम होती है, जिसके कारण मंत्री की नजर में सामान्यज्ञ का रूतबा बढ़ता है और विशेषज्ञों का महत्व कम हो जाता है। विशेषज्ञों का तर्क है कि राजनीतिक स्तर पर तकनीकी समस्याओं और आवश्यकताओं की सही व्याख्या केवल विशेषज्ञ ही कर सकता है, लेकिन सामान्यज्ञ उस से यह अधिकार भी छीन लेता है, जिससे समस्या की जटिलता तो बढ़ती ही है, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेषज्ञों में हीनता की भावना पैदा होती है। और ये सच है कि किसी भी स्तर पर असंतोष, तनाव और अवसाद (कमचतमेपवद) को जन्म देता है, जो विकास के लिए घातक होता है।
2. विशेषज्ञ कहते हैं कि सामान्यज्ञ नीति-निर्माण या निर्णय निर्माण के लिए विशेषज्ञों पर निर्भर करते हैं, जो उनके द्वारा एकत्रित एवं संयोजित तथ्यों एवं आंकड़ों के आधार पर फैसले करते हैं। यदि विशेषज्ञ अपनी विशेषज्ञी जिम्मेदारी न निभाएँ तो सामान्यज्ञ राजनीतिज्ञों के सामने असहाय हो जायेंगे।
3. विशेषज्ञों का कहना है कि तकनीकी कार्य जैसे-कृषि, सिंचाई, आर्थिक नियोजन, स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग में सामान्यज्ञ शून्य होते हैं और उनकी कोई भूमिका नहीं होती है।
4. यदि कोई कार्य या योजना सफल होती है तो उसका श्रेय राजनीतिज्ञ और सामान्यज्ञ दोनों लेते हैं, लेकिन अगर इस योजना में असफल हो गये तो सारा दोष विशेषज्ञों के सिर मढ़ दिया जाता है।
5. विशेषज्ञों का एक मजबूत तर्क ये है कि वे भी प्रशासनिक कार्यों को उतनी महारत से कर सकते हैं, जिस तरह सामान्यज्ञ करते हैं, क्योंकि उनकी नजर, तकनीकी और पैनी होती है। जबकि सामान्यज्ञ तकनीकी कामों से अनभिज्ञ होता है। लेकिन दुख की बात यह है कि सामान्यज्ञों को देश के उच्चतम पदों पर बैठाया जाता है, जबकि एक सशक्त और दक्ष विशेषज्ञ को आई.ए.एस. और आई.एफ.एस. के सामने तुच्छ समझा जाता है, भले ही वह देश का महान वैज्ञानिक हो, अर्थशास्त्री हो अथवा वह एक विश्व ख्याति का चिकित्सक हो।

6. विशेषज्ञों का दावा है कि वे ही ऐसा वर्ग हैं जो देश को विकास की बुलन्दियों तक पहुँचाने में सक्षम हैं। वो देश को सैनिक और असैनिक क्षेत्रों में सशक्त और महान बनाने की क्षमता रखते हैं। वो देश के लिए गौरवशाली काम करता है। लेकिन दुख की बात यह है कि यदि वह प्रधानमंत्री का विशेष सलाहकार भी बनता है तो भी केन्द्र के मुख्य सचिव से नीचा समझा जाता है।

उक्त बहस से यह बात साफ है कि सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के मध्य टकराव ने प्रशासकीय व्यवस्था को प्रभावित किया है, जिसके प्रतिकूल परिणाम सामने आए हैं। उदाहरण के लिए विकास के कार्यों (निर्माण कार्य) में वित्त निर्गत न करके सामान्यज्ञ, विशेषज्ञों के काम में बाधा पहुँचाते हैं। बदले में विकास कार्यों में सुस्ती लाकर विशेषज्ञ नीतियों के कार्यान्वयन में विलम्ब करते हैं। और इस तरह आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला शुरू हो जाता है।

### 9.6 विवाद का समाधान

शासन के स्तर पर सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद की तीव्रता को देखते हुए, समस्या को गंभीरता से लिया गया है। उसने समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि इस विवाद में एक प्रशासनिक संकट का रूप ले लिया है। अतः शासन की ओर से इस समस्या के तार्किक समाधान के लिए अनेक परामर्शदात्री समितियों की स्थापना की गई। विशेष रूप से इनमें संसदीय समितियाँ थीं, जिन्होंने इस द्वन्द्व के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है, और इस दृष्टि से प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता पर बल दिया है। सारांश में ऐसी समितियों के सुझाव इस प्रकार हैं-

1. योजना आयोग (1959) की एक सिफारिश में सुझाव दिया गया कि प्रशासन के पुरातन संगठन में इस तरह संशोधित किया जाए कि विशेषज्ञ प्रशासन के सभी स्तरों पर, उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से अपना योगदान प्रदान कर सकें।
2. द्वितीय वेतन आयोग ने सुझाव दिया कि जिस विभाग का कार्य मुख्यतः तकनीकी हो, उस विभाग का सचिव ऐसा व्यक्ति हो, जो प्रशासनिक योग्यता भी रखता हो और क्षेत्र विशेष में तकनीकी ज्ञान भी रखता हो।
3. संसद की प्राक्कलन समिति ने 1969 में अपनी सिफारिश में कहा कि सरकार को चाहिए कि वह वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी विषयों से सम्बद्ध विभागों के प्रशासनिक अध्यक्षों के रूप में तकनीकी पृष्ठभूमि वाले अधिकारियों की भर्ती करे।
4. तृतीय वेतन आयोग ने 1973 के अपने प्रतिवेदन में कहा कि वह प्रशासनिक सेवा में सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समानता की मांग का समर्थन करते हैं। इस संदर्भ में तर्क औचित्यपूर्ण और प्रासंगिक हैं। आयोग ने इंजीनियरी सेवा के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि उनको वे सारी सुविधाएँ दी जायें जिनके वे अधिकारी हैं।
5. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान) 1962 ने सिफारिश की कि तकनीकी विभागाध्यक्षों को सचिवालय में नीति निर्माण में संयुक्त किया जाना चाहिए। समिति के अनुसार विभिन्न शाखाओं की चीफ इंजीनियर नीति निर्माण का काम बखूबी कर सकते हैं। ऐसी ही सिफारिश प्रशासनिक सुधार समिति ने भी की। उसने अपनी सिफारिश (1963) में कहा कि विभिन्न विभागों के चीफ इंजीनियरों को सचिवालय में पदेन सचिव तथा पदेन उपनिदेशक के पद पर लाना चाहिए।

### 9.7 प्रशासनिक सुधार आयोग- 1966 के सुझाव

प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 ने भारत के कार्मिक प्रशासन में सुधार और सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ के द्वन्द्व से उत्पन्न समस्या के समाधान हेतु कुछ सुझाव दिए थे, जो इस प्रकार हैं-

- आई.ए.एस. सेवा के लिए एक कार्यात्मक क्षेत्र निश्चित किया जाये तथा भू-राजस्व कार्यो तथा विनियमात्मक कार्यो को शामिल किया जाए;
- लोक सेवा में वेतन क्रमों में समान उत्तरदायित्व वाले अधिकारियों को समान वेतन क्रम में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के सभी पदों को समान वेतन क्रमांकों में रखा जाये;
- प्रथम श्रेणी के इंजीनियरिंग पदों पर भर्ती प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से करनी चाहिए;
- प्राविधिक पदों के वरिष्ठ स्तर पर विश्व विद्यालय तथा औद्योगिक अनुभव वाले लोगों को रखा जाये;
- गैर-तकनीकी सेवाओं की परीक्षा में स्वास्थ्य (डॉक्टर) एवं प्राविधिक (इंजीनियर) विषयों को भी रखा जाए;
- केन्द्र में सचिवालय में भर्ती राज्य कर्मचारियों से की जाए;
- अनुभवी प्रशासकों एवं विशेषज्ञों की सहायता से सरकार को लोक सेवा के प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय नीति तैयार करनी चाहिए।

प्रशासनिक सुधार आयोग की दिलचस्पी सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के टकराव की समस्या को हल करने में थी। चतुर्थ वेतन आयोग (1986-87) ने 'समानता' के सिद्धान्त पर विराम लगा दिया। उसने अपनी रिपोर्ट में साफ कहा: 'प्रशासनिक अधिकारियों' की श्रेष्ठता को स्वीकार करना चाहिए, विशेषज्ञों को प्रशासनिक अधिकारियों के मुकाबले वरीयता नहीं दी सकती। विशेषज्ञों को दूसरी पंक्ति में रहकर ही काम करना होगा। आयोग ने जान बूझकर विशेषज्ञों को वेतनमान कम कर दिए तथा सामान्यज्ञों के वेतन और भत्तों में बढ़ौतरी के लिए उदार रूख अपनाया। पाँचवे वेतन आयोग ने भी लगभग यही रूख अपनाया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि आयोगों तथा वेतन आयोगों के सदस्य स्वयं सामान्यज्ञ से थे और वे राजनेताओं के अधिक समीप थे।

### 9.8 भारत सरकार की ओर से विवाद के समाधान के लिए पहल

भारत सरकार ने विवाद की गंभीरता और उसे बुरे परिणामों को देखते हुए समाधान हेतु अनेक कदम उठाये हैं। उनमें से महत्वपूर्ण कदम निम्नवत् हैं-

1. **कार्यकाल प्रणाली का कमजोर होना-** परम्परागत प्रणाली यह थी कि सामान्यज्ञ अधिकारियों का जिले या क्षेत्र से सचिवालय एवं सचिवालय से जिले या क्षेत्र में स्थानान्तरण किया जाता था। यह प्रणाली अब समाप्त हो गई है। अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वरिष्ठ अधिकारियों को स्थायी रूप से सचिवालय में ही रखा जाये।
2. **नवीन विशेषज्ञ अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं की स्थापना-** भारत शासन अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत स्वतन्त्रता से पहले काल में केवल दो अखिल भारतीय सेवाएँ थीं- भारतीय सिविल सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय सिविल सेवा के स्थान पर भारतीय प्रशासनिक सेवा अस्तित्व में आ गई। 1963 में भारतीय वन सेवा, भारतीय अभियान्त्रिकी सेवा तथा भारतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा की भी सृष्टि की गई। इस तरह नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना करके विशेषज्ञ सेवाओं के महत्व को स्वीकृति मिली है। यह भी सिफारिश की गई है कि इन सेवाओं के अधिकारियों को अच्छा वेतन तथा अन्य सेवाएँ भी प्रदान की जायें ताकि इनमें श्रेष्ठता का एहसास बढ़े।
3. **प्रशासनिक दायित्व के पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति-** प्रशासनिक पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति सरकार की ओर से एक अच्छी पहल है। जैसे- अब अक्सर शिक्षा विभाग का सचिव शिक्षा शास्त्री या विज्ञान सम्बन्धी मामलों के विभाग का सचिव वैज्ञानिक हो सकता है, यद्यपि राज्यों में यह रूझान अभी

कम देखने को मिलता है, लेकिन कुछ राज्यों में ऐसी पहल शुभ संकेत है। योजना आयोग में तो केवल विशेषज्ञ अधिकारी ही कार्यरत हैं।

भारत सरकार की ओर से सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के विवाद को हल करने के लिए कुछ और संरचनात्मक क्षेत्र में कदम उठाने पर जोर दिया गया है, जिनके मुख्य इस प्रकार हैं-

- पृथक पद सोपान- इस व्यवस्था के अन्तर्गत विशेषज्ञों को अधिक मान्यता मिलेगी, यद्यपि वेतनक्रम सामान्य होगा। स्वीडन, पश्चिमी जर्मनी तथा ऑस्ट्रेलिया में यह प्रणाली प्रचलित है।
- समान्तर पद-सोपान- इस प्रणाली में महानिदेशक (विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ), उच्च सचिव (सामान्यज्ञ) एवं निदेशक (अधीनस्थ विशेषज्ञ) अवर सचिव के साथ मिलकर काम करते हैं।
- संयुक्त पद सोपान- इस व्यवस्था में उच्च-सचिव (सामान्यज्ञ) तथा निदेशक (विशेषज्ञ) संयुक्त रूप से स्थायी सचिव (सामान्यज्ञ) के अधीन काम करते हैं। यहाँ सामान्यज्ञवादी एवं विशेषज्ञ दोनों को ही मन्त्रालय को परामर्श देने का अवसर मिलता है।
- एकीकृत पद सोपान- यह सर्वाधिक क्रान्तिकारी सुझाव है। सुझाव यह है कि सामान्य स्तर की एक प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से लोक सेवा में भर्ती की जानी चाहिए और वेतन एवं सेवा की शर्तें भी समान होनी चाहिए। इस सेवा को भारतीय संघीय सेवा का नाम दिया जा सकता है। भारत में इस प्रणाली पर मंथन हो रहा है, जबकि पाकिस्तान में अगस्त 1973 से एकीकृत लोक सेवा के निर्माण की पहल की जा चुकी है, और सभी को समान अवसर प्रदान किए गए हैं।

लेकिन भारत में वास्तविकता यह है कि सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद के समाधान के लिए जो भी कदम उठाये जाते हैं, कहीं न कहीं भारतीय नौकरशाही उनमें बाधाएँ खड़ी कर देती है, क्योंकि निर्णय-निर्माण का अधिकार उसी को प्राप्त है जिसका विरोध करना राजनीतिक स्तर पर भी संभव नहीं है।

## 9.9 निष्कर्ष

ब्रिटेन, अमरीका तथा फ्रांस में सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ का विवाद काफी हद तक सुलझा लिया गया है, लेकिन भारत में यह अभी तक जारी है। स्वतंत्रता के बाद परिवर्तित परिस्थितियों ने सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों दोनों के महत्व को स्वीकृति दी है। स्पष्ट रूप से प्रशासन में दो क्षेत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण समझे गये हैं- नीति निर्माण तथा नीति कार्यान्वयन। यह दो क्षेत्र विभिन्न विभागों के मंत्रियों को सामान्यज्ञों से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ते हैं। दोनों के मध्य सीधा संवाद होता है। सामान्यज्ञ नीति निर्माण में मंत्रियों को परामर्श देता है; मंत्रियों की अक्षमताओं, भावनाओं तथा जनता से किये गये वायदों को समझाने का प्रयास करता है। इसलिए विशेषज्ञ को नीति निर्माण का कार्य सौंपना अनुचित होगा। लेकिन इतना जरूर है कि तकनीकी क्षेत्र में सामान्यज्ञ का ज्ञान लगभग शून्य होता है। अतः यहाँ विशेषज्ञ को मंत्रियों को परामर्श देने का अधिकार मिलना चाहिए।

जहाँ तक वेतन और भत्तों तथा अन्य सुविधाओं का प्रश्न है। विशेषज्ञ को भी सामान्यज्ञ के समान वेतन तथा भत्ते मिलना चाहिए, क्योंकि विशेषज्ञ अपने कार्यालय से लेकर क्षेत्र में जाकर भी काम करता है।

जहाँ तक सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो यह एक स्वनिष्ठ (subjective) विषय है। समाज या कोई वर्ग अथवा स्वयं व्यक्ति दूसरों के बारे में क्या सोचते हैं और क्यों सोचते हैं, यह सब कुछ परम्पराओं और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज तक जितने नोबेल पुरस्कार मिले हैं वे लगभग विशेषज्ञों को ही मिले हैं। हमारा किसी के प्रति क्या नजरिया है, इस पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई जा सकती। प्रतिष्ठा और महत्व को वेतन या भत्तों से नहीं मापा जा सकता।

फिर भी यह स्वीकार करना चाहिए कि परिस्थिति विशेष में अथवा समस्या विशेष के समाधान के लिए विशेषज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में नीति विषयक प्रश्नों पर निर्णय लेते समय विशेषज्ञों की सलाह पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यहाँ सामान्यज्ञ की स्थिति निर्णायक की तथा विशेषज्ञ की स्थिति सलाहकार की होती है। इन दोनों के नजरियों में तारतम्य स्थापित रहना चाहिए। इसलिए सामान्यज्ञ को विशेषज्ञ से व्यवहार में अत्यंत सतर्क, ज्ञानशील तथा शालीन होना चाहिए। उसे विशेषज्ञ के आत्म-सम्मान को किसी भी तरह ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो दोनों के वेतन, भत्ते और अन्य भौतिक सुविधाएँ समान होना चाहिए। राजनीतिक स्तर पर भी विशेषज्ञों को पूरा सम्मान मिलना चाहिए। तकनीकी क्षेत्रों में नीति निर्णायक विशेषज्ञ होने चाहिए। सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ विवाद को चौथे वेतन आयोग की नजर से कभी भी नहीं देखना चाहिए, जिसने विवाद को कम करने के बजाये और बढ़ाया, जिसकी वजह से विशेषज्ञों की देशव्यापी हड़ताल का सामन करना पड़ा था। पाँचवें और छठे वेतन आयोग का रूख तर्क ओर न्याय पर आधारित है। इन वेतन आयोगों की सिफारिशों की रौशनी में विवाद की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

### अभ्यास प्रश्न-

- आई.ए.एस. का मौलिक नाम क्या है?
 

क. आई.पी.एस.	ख. आई.एफ.एस.
ग. आई.सी.एस.	घ. आई.आर.एस.
- सामान्यज्ञ का अर्थ है-
 

क. असैनिक कर्मचारियों का वर्ग	ख. किसी भी प्रकार के सरकारी कर्मचारी
ग. सामान्य कार्यालयों के कर्मचारी	घ. नौकरशाह
- फुल्टन समिति (1965) का किस देश से सम्बन्ध है?
 

क. अमरीका से	ख. फ्रांस से
ग. ग्रेट ब्रिटेन से	घ. भारत से
- किस समिति ने पहली बार 'सामान्यज्ञ' और 'विशेषज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया?
 

क. प्रशासनिक सुधार समिति (राजस्थान)	ख. प्राक्कलन समिति (1969)
ग. फुल्टन समिति (1965)	घ. हार्थॉर्न समिति
- नीति-निर्माण का उत्तरदायित्व किसका है?
 

क. विशेषज्ञों का	ख. सामान्यज्ञों का
ग. मंत्रियों का	घ. संसद का
- किस वेतन आयोग ने विशेषज्ञों की तुलना में सामान्यज्ञों को वरियता दी?
 

क. चौथे वेतन आयोग ने	ख. पाँचवे वेतन आयोग ने
ग. छठे वेतन आयोग ने	घ. सातवें वेतन आयोग ने

### 9.10 सारांश

लोक प्रशासन में सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ का विवाद एक गंभीर समस्या है। इसने भारत के विकास की गति को धीमा किया है। यह विवाद क्या है, इसे सारांश में समझना होगा-

- मानवीय स्तर पर किसी देश के बहुमुखी विकास की जिम्मेदारी दो प्रकार के सरकारी कर्मचारीगण पर निर्भर करती है- (1) सामान्यज्ञ जिनका काम मुख्यतया प्रशासनिक होता है, तथा (2) विशेषज्ञ जिनका काम तकनीकी होता है।

- सामान्यज्ञों में ऐसे व्यक्ति आते हैं जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा प्राप्त की हो तथा जिनका चयन उनकी योग्यता तथा बौद्धिक क्षमता के आधार पर लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाये।
- विशेषज्ञों में ऐसे युवा आते हैं जिन्होंने एक निश्चित तकनीकी शिक्षा प्राप्त की हो और जो अपनी दक्षता के आधार पर लोक सेवा आयोग से चुनकर आयें।
- सामान्यज्ञों में अधिकांशतः आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ.एस. के अधिकारी होते हैं, जबकि विशेषज्ञों में वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, अर्थशास्त्री, विधिशास्त्री इत्यादि आते हैं।
- सामान्यज्ञों को आमतौर से लोक सेवक या नौकरशाह (Bureaucrats) कहा जाता है, जबकि विशेषज्ञों को आजकल शिल्पी-तांत्रिक (Technocrats) कहा जाता है।
- नौकरशाह या सामान्यज्ञ स्वयं को अधिक शक्तिशाली, प्रभावशाली, प्रतिशिक्षित और महत्वपूर्ण मानते हैं। इनकी मानसिकता अभिजातीय और सामन्ती होती है। यह मानते हैं कि उनकी जड़े अतीत के गौरवशाली इतिहास में हैं, इनको प्रशासन करने का स्वाभाविक और दैवी अधिकार है।
- विशेषज्ञ भी अपनी हैसियत को किसी तरह कमतर नहीं आंकते। उनका दावा है कि वे अपने कार्य में दक्षता और महारत रखते हैं। बिना उनके देश का विकास एक क्षण के लिये भी आगे नहीं बढ़ सकता।
- लेकिन सच यह है कि शासकीय स्तर पर सामान्यज्ञों को अधिक महत्व दिया जाता है। इनका वेतनमान, इनके भत्ते तथा इनकी सुविधायें विशेषज्ञों की तुलना में कहीं अधिक होती हैं।
- सामान्यज्ञ प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त नीति-निर्माण का कार्य भी करते हैं। वे मंत्रियों को परामर्श देते हैं और उनके समीप रहते हैं, इसलिये उनका महत्व विशेषज्ञों से अधिक होता है।
- इसी कारण वे शासकीय तथा सामाजिक स्तर पर अधिक प्रतिष्ठित मानते जाते हैं।
- इस तरह सामान्यज्ञों और विशेषज्ञों में टकराव मनोवैज्ञानिक रूप का होता है, जिसने अनेक बार देश को संकट में डाला है।
- भारत सरकार ने इस विवाद को गंभीरता से लिया है और इसके समाधान के लिए समय-समय पर आयोगों और समितियों द्वारा प्रयास किये हैं।
- अब धीरे-धीरे सरकार की समझ-बूझ से यह विवाद धीमा पड़ता जा रहा है, यद्यपि नौकरशाही की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है।
- वर्तमान युग इलेक्ट्रॉनिकी, डिजिटल (बाइनरी डिजिट से संचालित सूचना संग्रह) कम्प्यूटरिंग का है, जो विशेषज्ञों की देन है और जिसने प्रशासनिकों को भी अतिरिक्त मस्तिष्क प्रदान कर दिया है, ऐसे में विशेषज्ञों का कृतज्ञ होकर और प्रोत्साहन देकर उनका सम्मान करना पूरे समाज का कर्तव्य है।

### 9.11 शब्दावली

सबजैक्टिव (Subjective)- आत्मनिष्ठ, व्यक्तिनिष्ठ अर्थात् कोई व्यक्ति दूसरे के बारे में क्या सोचता है और क्यों सोचता, यह सब कुछ उसके नजरिए पर निर्भर करता है।

Psychic Crisis- मनोसंकट अर्थात् किसी व्यक्ति का किसी घटना, व्यवहार अथवा समस्या को देखकर या महसूस करके मानसिक उथल-पुथल से ग्रस्त हो जाना और ऐसी प्रतिक्रियायें व्यक्त करना जो हानिकारक हो सकती हैं।

Ecological- परिस्थितिय अर्थात ऐसा वातावरण जो व्यक्ति के आचरण और सोच को निश्चित करता है। यह वातावरण, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हो सकता है।

### 9.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग 2. घ 3. ग 4. ख 5. ख 6. क

### 9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी/अवस्थी: भारतीय प्रशासन।
2. Ashok Chandra : Indian Administration.
3. Maheshwari, S.R. : Indian Administration.
4. Sarkaria Report, Part 1 (1998)

### 9.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Maheshwari, S.R. : The Administrative Reforms Commission.
2. Buch, M.N. : Administrative Ineffectiveness.

### 9.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामान्यज्ञ तथा विशेषज्ञ का अन्तर बताते हुए सामान्यज्ञ-विशेषज्ञ विवाद के चार कारणों को स्पष्ट कीजिए।
2. चौथे वेतन आयोग का रूख सामान्यज्ञों के बारे में क्या था? इसका क्या परिणाम निकला?
3. सामान्यज्ञ क्यों स्वयं को विशेषज्ञों से उच्चतर मानते हैं?
4. प्रशासनिक सुधार आयोग, 1966 की सिफारिशों को समझाइए।
5. सरकार की ओर से सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद को सुलझाने के लिये कौन से पदसोपनीय सम्बन्धी सुझाव दिये गये?

## इकाई- 10 कार्मिक नीति

### इकाई की संरचना

- 10.0 प्रस्तावना
- 10.1 उद्देश्य
- 10.2 नीति निर्धारण का अर्थ
- 10.3 कार्मिक नीति
- 10.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी
- 10.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था
- 10.6 कार्मिक विभाग
- 10.7 नवीन नीति परिदृश्य
- 10.8 सारांश
- 10.9 शब्दावली
- 10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.13 निबंधात्मक प्रश्न

### 10.0 प्रस्तावना

किसी भी राज्य की उत्कृष्टता का आधार उसका प्रशासनिक ढांचा होता है। प्रशासन एवं मानव संसाधन ऐसे आयाम हैं जो राज्य की नीतियों एवं मानव समाज के विकास को अपनी दक्षता एवं कार्य कुशलता से प्राप्त करने का कार्य करते हैं। समाज का स्वरूप और राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति भी प्रशासन द्वारा ही निर्मित और निर्धारित होती है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। कार्मिकों का प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण चुनौतीपूर्ण कार्य है। मानव शक्ति का कुशल प्रबंधन प्रशासन को गतिशील बनाता है। इस प्रकार यह प्रशासन का जीवित तत्व या प्राण है।

प्रशासन राज्य की नीतियों को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रशासन इस भूमिका को अपने मानव संसाधन द्वारा निष्पादित करता है। मानव संसाधन का प्रबंध राज्य की प्रबंध प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अंतर्गत कार्मिक नीति की रूपरेखा, कर्मचारियों के विभिन्न पहलुओं का एक निवेश के रूप में एकीकरण करती है। प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में बहुत लंबे समय तक कर्मचारियों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया और उन्हें समस्त गतिविधियों में सहायक मात्र ही माना जाता था। समय के साथ इस अवधारणा में परिवर्तन आया है।

इस अध्याय के माध्यम से पाठकों को नीति निर्धारण के अर्थ, सार्वजनिक कर्मचारी की अवधारणा एवं कार्मिक नीति से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा, भारत में कार्मिक नीति, कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग जैसे विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

### 10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक नीतियों का व्यापक अध्ययन कर पाएंगे, जो बड़े पैमाने पर अपनाई जाती है।
- नीति निर्धारण के अर्थ एवं सार्वजनिक कर्मचारी के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा तथा भारत में कार्मिक नीति के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग विषयों को समझने में भी सक्षम हो पाएंगे तथा
- नवीन नीति परिदृश्य का मूल्यांकन कर पाएंगे।

## 10.2 नीति निर्धारण का अर्थ

नीति निर्धारण की प्रक्रिया प्रशासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है। एपेल्बी के अनुसार नीति निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है। नीतियाँ आवश्यकता के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है। नीतियाँ, व्यवहार के वे नियम हैं जो प्रशासनिक निर्णयों का मार्गदर्शन करती हैं। ये ऐसे आधार-स्तम्भ हैं, जिसके सहारे उद्देश्यों की ओर बढ़ा जाता है।

नीति निर्धारण शब्द का प्रयोग लोक प्रशासन में व्यापक रूप से किया जाता है। नीति निर्धारण और नीति निर्माण भिन्न प्रकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया है। नीतियाँ सामान्य तौर पर यथार्थ और सार्थकता के अधिकार क्षेत्रों से संबंधित मानी जाती है। यह अधिक समय के लिए वैध होती है और व्यापक कार्य के लिए मार्गदर्शक के रूप में भी कार्य करती है। इस प्रकार नीति निर्धारण मानवीय घटना के लिए एक ऐसी सक्रिय प्रक्रिया है जो संबंधित तथ्यों एवं पक्के मूल्यांकन से बनाई जाती है और जिसमें भविष्य के कार्य रूप के लिए रूपरेखा होती है और जिसका लक्ष्य सर्वश्रेष्ठ साधनों द्वारा उद्देश्य की पूर्ति होता है।

नीति निर्धारण शब्द इस प्रकार विविध प्रक्रियात्मक प्रयासों का एक रूप है, जिसमें निम्नलिखित तथ्यात्मक गतिविधियाँ समाहित होती हैं- विषयों का विनियोजन, समस्याओं का निर्धारण, नए विचारों की खोज तथा समस्याओं का विश्लेषण, उद्भवन, संश्लेषण, मूल्यांकन, कार्य योजनाओं को अधिग्रहित करना, तथा कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन तथा उनकी समीक्षा।

यद्यपि नीति निर्धारण से पूर्व सारे तथ्यों पर विचार किया जाता है और सारे आयाम और उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन भी प्रायः कर लिया जाता है, परंतु वास्तविकता में विशिष्ट अनुभव, व्यक्तिगत ज्ञान तथा व्यवसायिक निपुणता के साथ-साथ अन्य प्रवृत्तियाँ भी नीति निर्धारण को प्रभावित करती हैं। भारत में लोक प्रशासन तदर्थ व्यवस्था एवं अन्य बुराइयों से पीड़ित है। स्वतंत्रता के बाद लोक प्रशासन ने भारत में एक लंबा सफर तय किया है। ब्रिटिश काल में प्रशासन जनता से बिल्कुल मुक्त था तथा राष्ट्रीय विकास, आर्थिक नियोजन, सामाजिक प्रगति और जनकल्याण से इसका कोई लेना देना नहीं था। लोक प्रशासन अपने स्वरूप में पुरातन बना हुआ था तथा इसकी कार्यशैली भी अत्यंत औपचारिक थी। यथास्थितिवादी होने के कारण इसकी कार्यशैली विकासोन्मुख और प्रगतिशील नहीं थी। स्वतंत्रता के पश्चात इसमें आमूल परिवर्तन हुए और नए आयामों की ओर इसका रुझान शुरू हुआ। इनमें प्रमुख थे- जनकल्याण, राज्य के कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि, प्रक्रियात्मक परिवर्तन तथा व्यवस्था से जुड़े कर्मचारियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि आदि।

## 10.3 कार्मिक नीति

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की जरूरत भी पड़ती है। किसी संगठन के इन्हीं

कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, प्रोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन का प्रमुख विषय है। लोक सेवकों के संबंध में जो नीति अपनाई जाती है, उसी से संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता का निर्धारण किया जा सकता है। मैक्स वेबर का कहना है एक स्वस्थ सेवी वर्ग संबंधी नीति वह है, जिसमें सभी कार्मिकों के कार्य निर्धारित कर दिए जाएं और उन्हें पूरा करने के लिए कर्मचारियों को पूरा अधिकार सौंपा जाए। कार्य की संपन्नता व्यवस्थित और प्रणालीबद्ध तरीके से हो।

सफल कार्मिक प्रशासन कुशल प्रशासन का आधारभूत तत्व है। यह संगठित मानव शक्ति ही हैं जो किसी भी प्रशासन या व्यवस्था की मूल्यवान संपत्ति है। शासन, प्रशासन और प्रबंधन के समस्त संसाधनों का सदुपयोग, मानवीय कुशलताओं और प्रतिबद्धताओं पर ही निर्भर करता है। नीति निर्धारण एक प्रकार का निर्णय निर्धारण है जो विविध तत्वों के मूल्यांकन द्वारा किया जाता है। इसके अंतर्गत समस्याओं की पहचान, विश्लेषण, कार्यकारी योजनाओं को अपनाया जाना, उसको क्रियान्वित करना तथा उस पर दृष्टि रखना शामिल है। कभी-कभी नीति निर्धारण करने में विशेष प्रवीणता और अनुभव आवश्यक तथ्य प्रतीत होते हैं। एक सफल कार्मिक नीति का संबंध कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवानिवृत्ति आदि से संबंधित है। कर्मचारियों की दक्षता, सुरक्षा और विकास के संरक्षण एवं उसमें कोई भ्रांति या उलझन उत्पन्न ना हो सके, कार्मिक नीति पर निर्भर होता है। संगठन की योजनाओं और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सुविचारित नीति का होना आवश्यक है। यह नीतियां मार्गदर्शक का कार्य करती है, जिसका अनुसरण करते हुए संगठन कर्मचारियों के माध्यम से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। संगठन और कर्मचारियों की मांग और पूर्ति का अनुमान तथा नियोजन को व्यवहारिकता प्रदान करने के लिए गंभीर एवं प्रयासों से कार्मिक नीतियां देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बनाई जाती है।

कार्मिक प्रशासन संबंधी नीति की दिशा में चार सरकारी अभिकर्ताओं का विशेष उत्तरदायित्व होता है, ये हैं- विधानमंडल, मुख्य कार्यकारी, कार्मिक विभाग और सरकारी विभाग। सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में नियोजन, प्रशिक्षण, कल्याण तथा सुरक्षा सम्बन्धित समस्याओं के निदान के लिये कार्मिक विभाग की स्थापना की जाती है। आज के युग में श्रम विधान तथा उद्योगों में श्रमिक संघ की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए कार्मिक विभाग का महत्व और अधिक बढ़ गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के कार्मिक विभाग के दायित्व जिस अधिकारी के द्वारा संभाले जाते हैं, उसे मुख्य कार्मिक कहा जाता है। इसे श्रम विधान, औद्योगिक संबंध, मजदूरी भुगतान की विधियों, संगठन तथा उद्योग की समस्त संक्रियाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। नियोजन, मानव संबंध, कर्मचारियों के पारिश्रमिक एवं श्रम कल्याण संबंधी कार्य आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है।

#### 10.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन की भूमिका में भी विस्तार हुआ है और अब लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है, जो कार्य एवं लक्ष्य की प्रति उन्मुख है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक कर्मचारी एक प्रमुख अंग है। भारतीय प्रशासनिक प्रणाली का केंद्र बिंदु सर्वजनिक कार्मिक प्रशासन है।

भारत में सार्वजनिक संस्थानों में कार्मिक प्रबंध के लिए नियोजित नीति का प्रावधान स्वतंत्रता के पश्चात किया गया है। आरंभ में कार्मिक प्रबंध के लिए कोई नियोजित नीति नहीं थी। निम्न स्तर पर तथा मध्यम स्तर पर कर्मचारियों के संबंध में उपयुक्त नीति का सर्वथा अभाव था। विशेषकर नीति निर्धारण अधिकारों की प्रत्यायुक्ति में तथा रचनात्मकता के प्रवेश करने में उनका उचित स्थान नहीं था। क्रियात्मक नौकरशाही भी मुख्यधारा से कटा हुआ था। कर्मचारियों के उपयुक्त प्रयोग, उनको प्रेरित करने वाले नीतियों एवं कार्य योजनाओं के अभाव के कारण

विकास उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक सिद्ध हुई और कार्मिक प्रशासन लगभग पंगु सा होता चला गया। नौकरशाही के प्रबंध और कर्मचारियों के कार्य कौशल का निष्पक्ष मूल्यांकन के लिए एकसमान नीति का भी सर्वथा अभाव था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कार्मिक प्रणाली तथा लोक प्रशासन की संरचना में सुधार हेतु अनेक आयोगों और समितियों का गठन किया गया। 1960 के दशक के मध्य तक लगभग बारह समितियों और आयोगों द्वारा इस संबंध में सुझाव दिए गए। इन आयोगों और समितियों में निम्नलिखित शामिल हैं-

- सचिवालय पुनर्गठन समिति, 1947
- केंद्रीय (प्रथम) वेतन आयोग 1946-47
- सरकारी मशीन पुनर्गठन रिपोर्ट, 1949
- लोक प्रशासन की रिपोर्ट, 1951
- सरकारी मशीनरी पर रिपोर्ट (कार्य कौशल में सुधार), 1952
- भारत में लोक प्रशासन सर्वेक्षण की रिपोर्ट, 1953
- राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955
- लोक सेवाओं पर रिपोर्ट, 1956
- केंद्र सरकार के कर्मचारियों की सेवा एवं वेतनमान के संबंध में जांच आयोग (दूसरा वेतन आयोग), 1957
- भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की रिपोर्ट, 1962
- भ्रष्टाचार उन्मूलन समिति की रिपोर्ट, 1964 तथा पंचवर्षीय योजनाएं

इन सभी रिपोर्टों ने कार्मिक प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा नई चुनौतियों से निपटने के उपाय हेतु व्यापक सुझाव दिए। इन सुझावों में कार्मिक प्रबंध को सक्रिय बनाने के लिए बेहतर उपायों को अपनाने की सलाह दी गई लेकिन ये सुझाव पर्याप्त नहीं थे और आज तक बहुत सारे सुधारों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रशासन स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात भी अपनी कार्यप्रणाली में आज भी अपनी पुरातन प्रवृत्तियों को बरकरार बनाए हुए हैं तथा सोच एवं कार्यशैली में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया है। कार्मिक प्रणाली में कोई भी नवीन, अपूर्व या सक्रिय नीति आज तक नहीं अपनाया गया। सरकार अब नागरिकों के विविध पहलुओं में सकारात्मक एवं व्यापक भूमिका निभा रही है और यह भूमिका परिवर्तन, जनकल्याण आदि नवीनतम मुद्दों से जुड़ा हुआ है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्र निर्माण की चुनौतियां को देखते हुए भारत में भी प्रशासन के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जाती रही है। भारतीय संविधान में समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का आश्वासन दिया गया है तथा भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों के अंतर्गत राज्य के निरंकुशता से व्यक्तिगत सुरक्षा का प्रावधान भी किया गया है। सभी नागरिकों के लिए मौलिक स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है। भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत भी राज्य का यह मौलिक दायित्व होगा कि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करें जिससे देश के नागरिक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। इस संवैधानिक संस्कृति ने सरकार पर समस्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को एक नया रचनात्मक रूप देने का दायित्व सौंपा है।

### 10.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था

कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान के लिए नीति के अभाव में अन्य व्यवस्थात्मक त्रुटियां भी जिम्मेदार थीं। भारत में कार्मिक नीतियों और कार्य योजनाओं से संबंधित कोई समर्पित संगठन नहीं था। कर्मचारियों के हित में

गृह मंत्रालय तथा वित्त मंत्रालय व्यवस्था विभाग शुरू से ही संयुक्त रूप से प्रबंधात्मक दायित्व संभाल रहे थे और संघ लोक सेवा आयोग एक सलाहकार की भूमिका में था। भारत सरकार का व्यवस्था अधिकारी जो मंत्रिमंडलीय सचिव का अधीनस्थ था, एक सरकारी प्रतिनिधि था, जो उच्च स्तर के कर्मचारियों की नियुक्ति के कार्य की भी देखरेख करता था। इस प्रकार कार्यभार विभाजित थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि समेकित केंद्रीय निर्देशन का अभाव हमेशा बना रहा। प्रगति दायित्वों को लगभग हाशिये पर छोड़ दिया गया था, जिसके कारण कर्मचारी हितों पर ध्यान देना पूरी तरह संभव न हो सका।

1. **कार्मिक अभिकरण पर मूल्यांकन समिति की रिपोर्ट, 1956-** तीसरी लोकसभा की मूल्यांकन समिति ने अपने 93वीं रिपोर्ट में यह टिप्पणी की- 'ऐसी सरकार जिसका उद्देश्य जनकल्याण हो तथा जिसकी प्रशासनिक सेवा बहुत बड़ी हो, उसकी भूमिका निरंतर व्यापक होती जाती है।' इसके लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों पर प्रभावी नियंत्रण किसी एक ही संस्था द्वारा किया जाए। यह समेकित संस्था मंत्रिमंडलीय सचिव के नियंत्रण में कार्य करें और सारी सेवाओं की शर्तों को निर्धारित और भी नियमित करे। इस प्रकार यह समेकित अभिकरण गृह और वित्त मंत्रालय के दोहरे नियंत्रण का स्थान ले ले।

2. **प्रशासनिक सुधार आयोग-** लोक प्रशासन की प्रणाली संबंधित त्रुटियों को दूर करने के लिए, प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए तथा लोक प्रशासन के विविध विषयों पर व्यापक दृष्टिकोण के लिए भारत सरकार ने 1966 में के. हनुमंथप्पा के नेतृत्व में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया, जिसकी अधिकार सीमा संबंधी शर्तें काफी विस्तृत थीं। बीस अध्ययन दलों की सहायता से आयोग ने बीस रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिनमें 5 रिपोर्ट सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रशासन के संबंध में थीं। ये रिपोर्ट थे-

- भारत सरकार की मशीनरी और उसकी कार्य प्रक्रिया पर रिपोर्ट
- सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर रिपोर्ट
- कार्मिक प्रशासन पर रिपोर्ट
- केंद्र और राज्य के संबंधों पर रिपोर्ट तथा
- राज्य प्रशासन पर रिपोर्ट

3. **कार्मिक प्रशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट-** प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट कार्मिक प्रशासन से संबंधित था, जिसका विषय केवल कर्मचारी ही था। इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए तीन समितियों की सहायता या सलाह ली गई जो थे-

- कार्मिक प्रशासन पर पाटिल अध्ययन दल
- भर्ती, चयन, संघ राज्य लोक सेवा आयोग तथा प्रशिक्षण पर थोराट अध्ययन दल तथा
- पदोन्नति, आचार नियम, अनुशासन एवं मनोबल पर नगरकट्टी अध्ययन दल।

आयोग ने कार्मिक प्रशासन से संबंधित देश की भविष्य कालीन कार्यप्रणाली के संबंध में महत्वपूर्ण नीतियों एवं योजनाओं को नया रूप दिया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित विषयों पर नीति संबंधी विशेष सुझाव दिए थे-

- **कार्यात्मकता, विशिष्टवाद तथा अधिकारी वर्ग-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार ऐसा क्रियात्मक क्षेत्र बनाया जाए जिसमें भू राजस्व प्रशासन, शासकीय दायित्वों को निभाना तथा राज्यों में विधायी कार्य सम्मिलित हो। इसके अतिरिक्त सारे कार्यक्षेत्र, जिनकी देखभाल दूसरे सेवाओं के सदस्य

नहीं करते हो, सारे पदों पर, चाहे वह प्रधान कार्यालय में हो या क्षेत्र में हो, क्रियात्मक सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया जाना चाहिए या फिर ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो सेवा में संवर्गित नहीं किए गए हो। उप सचिव अथवा केंद्रीय प्रधान कार्यालय में समान स्तर के पद, जो किसी विशेष क्रियात्मक क्षेत्र में नहीं आते, निम्नलिखित आठ विशिष्ट प्रकार के क्षेत्रों में विभाजित करने का सुझाव दिया गया- आर्थिक प्रशासन, औद्योगिक प्रशासन, कृषि एवं ग्रामीण विकास प्रशासन, सामाजिक एवं शिक्षा प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, रक्षा प्रशासन एवं आंतरिक सुरक्षा तथा नियोजना क्रियात्मक क्षेत्र में प्रबंध संबंधी वरिष्ठ पदों पर पदानुसार क्रियात्मक सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति का सुझाव भी प्रशासनिक सुधार आयोग ने दिया। इसके साथ ही क्रियात्मक क्षेत्र से बाहर वरिष्ठ पदों पर ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो उपरोक्त 8 विशिष्ट क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र के प्रबंध तथा नीति समूह के सदस्य के रूप में कार्य का अनुभव रखते हो और जिन्होंने अपनी सेवा के कम से कम सत्रह साल पूरे कर लिया हो।

- **समेकित वर्गीकरण की रूपरेखा-** प्रशासनिक सेवाओं के सभी पदों को अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित करने की अनुशंसा प्रशासनिक सुधार आयोग ने की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार इन पदों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर देना चाहिए। जैसे पद जिनमें एक समान योग्यताएं आवश्यक हो और जिन का कार्यक्षेत्र लगभग समान हो, उनका वर्गीकरण एक ही श्रेणी में करना चाहिए। श्रेणियों की संख्या 20 से 25 के बीच होनी चाहिए। 9 सामान्य वेतन दरों का निर्धारण प्रथम श्रेणी के सभी पदों का मूल्यांकन करके निर्धारित किया जाना चाहिए। इनमें कनिष्ठ, मध्य स्तर तथा वरिष्ठ, इन तीन स्तरों में विभाजन आवश्यक है। कनिष्ठ से मध्य स्तर में तथा मध्य से वरिष्ठ स्तर में पदोन्नति चयन प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए।
- **संवर्ग प्रबंध नियोजन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार आगामी 5 वर्षों के पूर्वानुमान के आधार पर कर्मचारियों की मांग प्रस्तुत की जानी चाहिए। भर्ती के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा एवं दूसरी ऐसे प्रथम श्रेणी के सेवाओं के लिए, जिसमें कोई अलग तकनीक ना हो, भर्ती एक ही प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जानी चाहिए और इस परीक्षा में प्रत्याशियों को अपनी मनपसंद सेवाओं के क्रमानुसार चुनने की छूट भी होनी चाहिए। एक ऐसी समिति की स्थापना भी होनी चाहिए जो भर्ती के द्रुतगामी तरीके, प्रचार पर किए जाने वाले व्यय में कटौती करने और उच्च स्तर की सेवाओं के लिए होने वाली परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में संशोधन समय-समय पर करने के तरीके भी सुझाए। ऐसी प्रतियोगिता परीक्षा में प्रवेश पाने वालों की ऊपरी आयु सीमा बढ़ाकर 26 वर्ष की जानी चाहिए। ऐसे प्रतिभाशाली अधिकारियों को, जो प्रथम श्रेणी की सेवा में नहीं हैं, आगे बढ़ने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले प्रथम श्रेणी के रिक्त पदों का अनुपात, जहां भी 40 प्रतिशत से कम हो, अनुपात को बढ़ाना चाहिए तथा हर उस अधिकारी को जिसने सेवा काल के 6 वर्ष पूरे कर लिए हैं और जिनकी आयु 35 वर्ष से कम है, उसे एक केवल एक और अवसर प्रथम श्रेणी के पद के लिए प्रतियोगिता परीक्षा मंजूर किया जाना चाहिए। यदि वह सारी शर्तें और शिक्षा के स्तर को पूरा करता हो तो इस बात का विशेष ध्यान आवश्यक नहीं है कि उसने कितने अवसरों का उपयोग किया है।
- **प्रशिक्षण-** सरकार को प्रशासनिक सेवा के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए उद्देश्य और प्राथमिकताएं निर्धारित करने के लिए स्पष्ट और दूरदर्शी नीति होनी चाहिए। सचिवालय में मध्य स्तर के प्रबंधकों के प्रशिक्षण में व्यापक रूप से तीन बातें आवश्यक होनी चाहिए- प्रधान कार्यालय में कार्य में प्रशिक्षण, आठ

विशिष्टताओं में विशेष पाठ्यक्रम और उप-क्षेत्र विशिष्टतावाद प्रशिक्षण। नीति और नियोजन में प्रशिक्षण का प्रावधान सभी विशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण के अंश के रूप में किया जाना चाहिए।

- **कार्य कौशल का मूल्यांकन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रत्येक वर्ष के अंत में हर एक अधिकारी की वार्षिक आख्या जो 300 शब्दों से अधिक का न हो और उसमें उसकी उपलब्धियों का उल्लेख आवश्यक रूप से किया जाए। यह विवरण उस अधिकारी को प्रस्तुत किया जाए, जिससे उसकी गुप्त रिपोर्ट लिखनी है और वह विवरण गुप्त रिपोर्ट का एक अंग माना जाएगा। मूल्यांकन करते समय अधिकारी को उस विवरण पर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा अपनी टिप्पणी लिखने के बाद उसे उच्च पदस्थ अधिकारी को समीक्षा के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। समीक्षा करने वाला अधिकारी इस पर टिप्पणी कर उस अधिकारी की कोटि का निर्धारण करेगा।
- **पदोन्नति-** प्रथम श्रेणी में पदोन्नति के लिए रिक्त स्थानों, जिसमें अखिल भारतीय सेवाएं भी शामिल हैं, में आधे स्थान विद्यमान तरीके और शेष आधे रिक्त स्थान परीक्षा के आधार पर भरे जाएं। ऐसी परीक्षाओं में द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को ही बैठने की अनुमति हो, यदि उन्होंने सेवाकाल पूर्ण कर लिया हो और वार्षिक गुप्त रिपोर्ट में नकारात्मक टिप्पणी न की गई हो।
- **अनुशासन-** दुष्कर्म या अवज्ञा, उपेक्षा, धमकी अथवा हिंसा के प्रयोग, अनुचित आचार जैसे अनुशासन संबंधी मामलों के संक्षिप्त निपटारे के लिए नियमों में आवश्यक रूप से प्रावधान किया जाना चाहिए।
- **न्यायालय पीठ-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रशासनिक सेवा न्यायालय की स्थापना किया जाना चाहिए जिसमें ऐसे मामलों को, जिसमें सेवा से बर्खास्तगी और बड़े पदों से हटा कर छोटे पदों पर नियुक्ति जैसे बड़े दंड दिए गए हो, अंतिम अपीलीय न्यायालय काम करेंगे।
- **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति-** सेवाकाल के 15 वर्ष पूर्ण कर लिए अधिकारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की अनुमति दी जानी चाहिए और उन्हें अनुपात अनुसार पेंशन और आनुतोषिक या अनुग्रह राशि भी दिया जाना चाहिए।
- **प्रोत्साहन-** विशेष कार्य योजना को निर्धारित सीमा में पूरा करने के लिए अधिकारियों को शील्ड अथवा धनराशि देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। व्यक्तिगत मामलों में प्रशंसा पत्र भी दिए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन रिपोर्ट में महत्वपूर्ण सिफारिशों की गई है जो नवीन कार्मिक नीति को नया रूप देने के संबंध में है और जिनका प्रभाव सार्वजनिक सेवाओं पर पड़ता है।

## 10.6 कार्मिक विभाग

लोक सेवकों के चयन, प्रशिक्षण, कार्मिक नीति आदि के संबंध में एक ऐसे निकाय की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक और प्रशासनिक दबावों से मुक्त होकर उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। प्रजातांत्रिक और विकासशील देशों में इस कार्य को संपादित करने के लिए एक विशेष मंत्रालय या निकाय की स्थापना की जाती है। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के कार्मिक प्रकरणों को नियंत्रित, निर्देशित तथा समन्वित करने, केंद्र के कार्यालयों के विरुद्ध प्राप्त जन शिकायतों का निवारण करने तथा केंद्र सरकार से सेवानिवृत्त कार्मिकों के पेंशन संबंधी मामलों में कार्रवाई करने हेतु कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी। इससे पूर्व इस मंत्रालय से संबंधित कार्य कभी मंत्रिमंडल सचिवालय तो कभी गृह मंत्रालय या वित्त मंत्रालय के द्वारा संपन्न किए जाते रहे हैं। मार्च, 1954 में पॉल एच. एपेलबी की सिफारिशों में से एक पर अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में मंत्रिमंडल सचिवालय में संगठन एवं पद्धति (ओ.एंड.एम.) प्रभाग बनाया गया था। मार्च, 1964 में गृह मंत्रालय के अधीन प्रशासनिक सुधार विभाग बनाया गया और संगठन एवं पद्धति (ओ.एंड.एम.) प्रभाग का

कार्यभार मंत्रिमंडल सचिवालय से प्रशासनिक सुधार विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया। दिनांक 7 फरवरी, 1973 को प्रशासनिक सुधार से संबंधित कार्य को मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन दिनांक 1 अगस्त, 1970 को बनाए गए कार्मिक विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया और कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार के रूप में इसे पुनर्नामित किया गया। प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा सक्रियता और दायित्व को बढ़ावा देती है। यह विविध क्षेत्रों में नवीन नीतियों को अंगीकार करने पर भी विशेष बल देती है। कार्मिक विषयों का संचालन करने के लिए पुरानी व्यवस्था प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर आधारित नवीन कार्मिक समस्याओं के समाधान के लिए अपर्याप्त थी। इसलिए सरकार ने अगस्त 1970 में नए कार्मिक विभाग की स्थापना की प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल भारत सरकार की मशीनरी और इसकी कार्य प्रक्रिया पर बनाए गए देशमुखअध्ययन दल ने एक प्रभावशाली केंद्रीय कार्मिक एजेंसी को स्थापित करने का सुझाव दिया था। देशमुख अध्ययन दल के अनुसार भारत सरकार की मशीनरी के लिए आवश्यक सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण था। कार्मिक विभागों से तकनीकी और व्यवस्थापन संबंधी अनेक सेवाओं को अधिक अधिकारियों को स्थान दिए जाने की वकालत इस अध्ययन दल ने की थी ताकि इस अभिकरण के नेतृत्व को मजबूत किया जा सके।

कार्मिक विभाग का संगठनात्मक ढांचा कुछ इस प्रकार था-

- नीति एवं नियोजन कक्ष
- प्रशिक्षण कक्ष/विभाग
- अखिल भारतीय सेवा कक्ष/विभाग
- व्यवस्था/संस्थान कक्ष/विभाग
- सतर्कता कक्ष/विभाग
- व्यवस्था अधिकारी का कक्ष विभाग

नीति और नियोजन कक्ष/विभाग को छोड़कर सारे कक्ष/विभाग अपने सारे उत्तरदायित्व हेतु पहले गृह मंत्रालय की ही भागते थे। 1970 की अगस्त में अलग कर कार्मिक विभाग की स्थापना की गई थी। नीति एवं नियोजन कक्ष/विभाग के जिम्मे भारत सरकार के कार्मिक प्रशासन क्षेत्र में नीति और नियोजन संबंधी गतिविधियों को निर्धारित करने तथा उसको रूप देने का कार्यभार सौंपा गया। इस प्रकार यह एक प्रकार का परिपार्श्व नियोजन का आधार था जिसमें कार्मिक प्रबंध और सार्वजनिक कार्मिक प्रबंध के समग्र पहलुओं पर सभी प्रकार का कार्य करना था। नीति निर्धारण कक्ष को प्रशासन पर रिपोर्ट में दी गई प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करने का कार्यभार सौंपा गया। दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को भी संचालित करना इसका उत्तर दायित्व था। समय के अनुसार अन्वेषण पर बल इसकी गतिविधियों में समाप्त हो गया और सरकार के अन्य कक्षों के रूप में इसका प्रारंभ हो गया। प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्रशिक्षण विभाग ने निस्संदेह अच्छी भूमिका निभाई किंतु इस विभाग को अनेक दैनिक कार्यों को अपने प्रमुख कार्यों को रूप में करना पड़ा। जिससे इसकी छवि भी धूमिल हुई दूसरे कक्ष और विभागों के पास कोई नवीनतम कार्य नहीं थे। वे नए कार्मिक विभाग में भी वही कार्य संपादित करते रहे जो गृह मंत्रालय में कर रहे थे।

कर्मचारियों की उपलब्धता के मामले में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य केंद्रीय सेवाओं जैसे परंपरागत स्रोतों पर निर्भर करने की पुरानी नीति वर्तमान ही रही। इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया। संरचनात्मक रूप में भी वही कार्य शैली अपनाई जाती रही और समय के साथ नूतन प्रयोग और नूतन कार्य विधि इस संरचना में स्थान नहीं ले पाई। ब्रिटेन की तुलना में भारत में यह प्रयोग संतोषजनक और सफल नहीं माना गया। प्रारंभ में उत्साह ज्यादा दिन तक भारत में बना नहीं रहा और मंत्रिमंडल सचिव के प्रधानमंत्री के संपर्क होने का अवसर का लाभ भी नहीं उठाया जा सका।

अप्रैल, 1977 में कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग को मंत्रिमंडल सचिवालय से गृह मंत्रालय में स्थानांतरित किया गया। मार्च, 1985 में कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के रूप में पूर्ण मंत्रालय बना दिया गया। 10 दिसम्बर, 1985 को कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय को तीन विभागों क्रमशः कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग और पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण विभाग सहित कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय के रूप में पुनर्नामित किया गया।

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है तथा प्रधानमंत्री की सहायता हेतु राज्य मंत्री की नियुक्ति भी की जाती रही है। नौकरशाही के शीर्ष पर इस मंत्रालय का शीर्ष अधिकारी कार्मिक सचिव कहलाता है। कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय तीन विभागों में विभक्त हैं- कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग।

कार्मिक लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय कार्मिक मामलों के लिए विशेषकर भर्ती प्रशिक्षण कर्मचारियों से संबंधित कल्याण योजनाएं, प्रशासनिक सुधार, पेंशन आदि कामकाज से संबंधित है या विभाग भर्ती नियमों, पदोन्नति तथा वरिष्ठता निर्धारण, प्रतिनियुक्ति, सेवा शर्तों को अनुशासित करने वाले नियम एवं विनियम के लिए उत्तरदायी है। उच्च लोक सेवा की पदों पर कार्मिकों की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से की जाती है जबकि समूह- ग और सेना के राजपत्रित कर्मचारियों की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से की जाती है। यह विभाग अखिल भारतीय सेवा संवर्गों भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा तथा तीनों सचिवालय सेवाओं- केंद्रीय सचिवालय सेवा, केंद्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा, केंद्रीय सचिवालय लिपिक सेवा के संबंध में प्रबंधन हेतु उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त यह विभाग गृह मंत्रालय तथा विदेश मंत्रालय के परामर्श से अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में नियम और भी नियमों का निर्माण करता है। यह उसमें समय- समय पर संशोधन भी करने का अधिकार रखता है और विभाग सेवा के संबंधों की समीक्षा हेतु भी जिम्मेदार है।

कार्मिक विभाग वरिष्ठ स्तर पर नियुक्तियां तथा भारत सरकार के कार्मिक नीतियों के संबंध में कार्य करता है। भारत सरकार के वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों के प्रस्ताव पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है। इनके संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है। इनमें केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नियुक्तियां, मंत्रालयों, विभागों में संयुक्त सचिवों और उप सचिवों के पदों पर केंद्रीय स्टाफिंग पैटर्न की नियुक्तियां शामिल होती हैं। इसके अतिरिक्त पदोन्नति द्वारा की जाने वाली सभी नियुक्तियों के मामले के संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का नियंत्रण होता है पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है।

कार्मिक विभाग सरकारी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने हेतु नोडल विभाग है। कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का प्रशिक्षण स्कंध प्रशिक्षण के क्षेत्रों की पहचान कर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार कर शिक्षकों और प्रशिक्षण क्षमताओं का तथा प्रशिक्षण में नई नीतियों का विकास करता है। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख शिक्षण संस्थान हैं। संस्थान केंद्र सरकार के सभी अधिकारियों को समय-समय पर मानव संसाधन विकास की अपेक्षाओं को पूर्ण करते हैं। इसके अतिरिक्त विभाग भारतीय लोक प्रशासन संस्थान को लोक प्रशासन से जुड़े मुद्दों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए सहायता प्रदान करता है। इसके साथ ही विभागीय नीति बनाने के लिए और क्रियान्वित करने के लिए कार्य करता है।

1. **कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग-** वैचारिक दृष्टि से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की भूमिका को दो भागों में बांटा जा सकता है। यह विभाग अपनी महती नोडल भूमिका में नीति-निरूपक तथा सरकार के सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि यथानिर्धारित, कतिपय स्वीकृत

मानकों और मानदण्डों का सभी मंत्रालयों/विभागों द्वारा भर्ती, सेवा-शर्तों के विनियमन एवं कार्मिकों की प्रतिनियुक्ति के साथ-साथ अन्य/सम्बद्ध मामलों में पालन किया जाए। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग केन्द्रीय सरकार के सभी संगठनों को कार्मिक-प्रबंध के मुद्दों पर सलाह भी देता है। यह विभाग, भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवा (सीसीएस) का संवर्ग-नियंत्रक प्राधिकारी होने के नाते सीधे रूप से उत्तरदायी है। यह विभाग, केन्द्रीय स्टारफिंग योजना का भी संचालन करता है, जिसके अंतर्गत अखिल भारतीय सेवाओं तथा समूह 'क' केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारियों में से उपर्युक्त अधिकारियों का चयन किया जाता है तथा उन्हें प्रतिनियुक्ति के आधार पर कार्यकाल विशेष हेतु उप सचिव/निदेशक तथा संयुक्त सचिव के स्तर के पदों पर तैनात किया जाता है। यह विभाग सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्न उपक्रमों/उद्यमों, निगमों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, पूर्णकालिक कार्यात्मक निदेशकों/प्रबंध मण्डल के सदस्यों के पदों पर नियुक्ति के मामलों को भी देखता है।

- **भर्ती अभिकरण-** संघ लोक सेवा आयोग और कर्मचारी चयन आयोग ऐसे दो संगठन हैं जिनके माध्यम से यह विभाग केन्द्र सरकार के कामकाज के लिए कार्मिकों की भर्ती सुनिश्चित करता है। संघ लोक सेवा आयोग, संविधान के प्रावधान के अंतर्गत गठित हुआ है तथा इसकी जिम्मेदारी, अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के साथ-साथ, संघ सरकार के अधीन उच्चतर सिविल सेवाओं तथा सिविल पदों पर नियुक्ति हेतु परीक्षाएं संचालित करने की है। भर्ती की पद्धतियों, एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नतियां तथा स्थानांतरण किए जाने में अपनाए जाने वाले सिद्धांतों तथा अनुशासनिक मामलों से जुड़े सभी मामलों में आयोग से परामर्श किए जाने के अनिवार्य प्रावधान हैं। कर्मचारी चयन आयोग की जिम्मेदारी, सहायकों, आशुलिपिकों इत्यादि अधीनस्थ कर्मचारियों की भर्ती करने की है।
  - **प्रशिक्षण प्रभाग-** प्रशिक्षण प्रभाग राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति, जो कि अप्रैल, 1996 में अंगीकार की गई थी, के कार्यान्वयन का समन्वय करने का कार्य देखता है। यह विभाग केन्द्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए विभिन्न श्रेणियों के कई विषयों पर कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी करता है। प्रशिक्षण प्रभाग राज्य सरकार के विभिन्न स्तर के कर्मचारियों के लिए विशेष पैकेज के अंतर्गत क्षमता निर्माण पहलों को विकसित करता है और इनका आयोजन करता है। इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख प्रशिक्षण संस्थाएं, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली है। पहली संस्था, मसूरी में स्थित अकादमी, मुख्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती किए गए अधिकारियों को प्रवेशकालिक प्रशिक्षण सुलभ करवाने के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों को प्रवेशकालिक प्रशिक्षण तथा सेवाकालिक प्रशिक्षण मुहैया करवाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली जो कि एक स्वायत्त संगठन है, को प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा अंशकालिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।
2. **भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियां-** भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों के सभी प्रस्तावों की, जिनके सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है, जांच-पड़ताल और उन पर यथोचित कार्रवाई, मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति के सचिव के रूप में कार्यरत स्थानपना अधिकारी के माध्यम से की जाती है। इनमें, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र

के उपक्रमों में बोर्ड स्तर की नियुक्तियां तथा मंत्रालयों/विभागों में संयुक्तव सचिवों, निदेशकों और सचिवों की नियुक्तियां शामिल होती हैं।

- **प्रशासनिक सतर्कता-** कार्मिक प्रबंध का एक आवश्यक घटक है, नौकरशाही की व्यावसायिक आचार संहिता और मानकों को बनाए रखना। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, लोक सेवाओं की सत्यनिष्ठा बनाए रखने और भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए सरकार की नीति का निर्धारण करता है और उस क्षेत्र में मंत्रालयों/विभागों के विभिन्न क्रियाकलापों का समन्वय करता है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों की यह जिम्मेवारी है कि वे निवारक उपाय करके कर्मचारियों के बीच अनुशासन और सत्य निष्ठा बनाए रखे और उनके कार्य के कार्यात्मक संचालनात्मक क्षेत्र में भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें।
- **केंद्रीय सतर्कता आयोग-** केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा सभी सतर्कता मामलों पर सलाह प्रदान की जाती है। इसकी उन सभी मामलों में अधिकारिता और शक्तियां हैं, जिनमें केन्द्रीय सरकार की कार्यकारी शक्तियां हैं। आयोग को संघ लोक सेवा आयोग की तरह स्वतंत्रता और स्वायत्तता प्राप्त है। आयोग का कार्यालय सतर्कता भवन, आई.एम.ए. कॉलोनी, नई दिल्ली में है।
- **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो-** केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो देश का अग्रिम अन्वेषण अभिकरण है और भ्रष्टाचार की बढ़ती चुनौती को नियंत्रित करने और बैंकिंग, गैर-बैंकिंग तथा आर्थिक और अन्य परम्परागत अपराधों की एक बड़ी संख्या का अन्वेषण करने के लिए राष्ट्र प्रहरी है। इसके कार्यों में जुड़े नए कार्य हैं- आतंकवादी अपराधों और जानबूझकर किए गए सम्पत्ति-विध्वंस अथवा कला विध्वंस के अपराधों का अन्वेषण। राज्य सरकारों, उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय की सहमति से इस अभिकरण को मामले भेजे जाते हैं और इस सामान्य धारणा, कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो अधिक सच्ची होती है, के कारण केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जांच करवाए जाने की मांग बढ़ती जा रही है।
- **संयुक्त परामर्शदायी तंत्र-** ऐसे सेवा मामले जिनका प्रशासन और सरकारी कर्मचारियों के सामान्य हितों से सरोकार है, के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार और इसके कर्मचारियों के बीच संयुक्त, परामर्श के लिए एक सुसंरचित तंत्र है। यह त्रि-स्तरीय तंत्र है जिसमें राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय कार्यालय परिषद् और श्रेणीय/कार्यालय परिषद् शामिल हैं। कर्मचारियों के हितों अथवा इसके विशिष्ट समूहों के हितों सम्बन्धी सेवा मामलों पर इस तंत्र द्वारा विचार किया जाता है।
- **केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण-** कार्मिक प्रबंधन को नियंत्रित करने वाले नियमों तथा विनियमों की विस्तृत व्यवस्था के बावजूद भी कुछ सरकारी कर्मचारी कभी-कभी सरकार के निर्णयों से व्यवथित हो सकते हैं। इन मामलों का निपटान करने में न्यायालयों को कई वर्ष लग जाते थे और मुकद्दमेबाजी बहुत महंगी थी। सरकार के निर्णयों से व्यवथित कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय मुहैया करवाने के प्रयोजन से, सरकार ने 1985 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किया था जो अब सेवा से सम्बन्धित ऐसे सभी मामलों पर विचार करता है जिन पर पहले उच्च न्यायालयों सहित उनके स्तर तक के न्यायालयों द्वारा कार्रवाई की जाती थी। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की दिल्ली में स्थित प्रधान न्यायपीठ सहित, अब इसकी 17 नियमित न्यायपीठें देश के विभिन्न भागों में कार्य कर रही हैं।
- **कर्मचारी कल्याण-** इस तथ्य के आलोक में कि कर्मचारियों के कामकाज की स्थिति तथा उनके और उनके परिवारों की रहन-सहन की स्थितियों में सुधार से उनकी कार्य कुशलता और उनका

मनोबल बढ़ता है यह विभाग विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों को सहायता प्रदान करता है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवारों के कल्याण हेतु स्थापित चार पंजीकृत समितियों के सम्बन्ध में नोडल अभिकरण (एजेसी) है। ये समितियां हैं- केन्द्रीय सिविल सेवा सांस्कृतिक और खेल-कूद बोर्ड, गृह-कल्याण-केन्द्र, केन्द्रीय भण्डार और सिविल सेवा अधिकारी संस्थान हैं। ये चारों समितियां दिल्ली में अवस्थित हैं।

- **लोक उद्यम चयन बोर्ड-** इस मंत्रालय के तीन विभागों के अतिरिक्त, लोक उद्यम चयन बोर्ड, अगस्त 1986 से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के हिस्से के रूप में कार्य कर रहा है। लोक उद्यम चयन बोर्ड, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में उच्चम प्रबंधकीय पदों के कार्मिकों के चयन और तैनाती का काम देखने वाला विशेषज्ञ निकाय है। बोर्ड का मूल रूप से 1974 में गठन किया गया था और इस उद्योग मंत्रालय (लोक उद्यम ब्यूरो) के प्रशासनिक नियंत्रण में रखा गया था। 1986 में बोर्ड का प्रशासनिक नियंत्रण, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग को अंतरित कर दिया गया।
- **केन्द्रीय सूचना आयोग-** सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा-12 के अनुक्रम में केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन केन्द्र सरकार द्वारा एक राजपत्र अधिसूचना द्वारा किया गया। आयोग में एक मुख्य सूचना आयुक्त और अधिकतम 10 सूचना आयुक्तक हैं, जिनकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

### 10.7 नवीन नीति परिदृश्य

कार्मिक नीति एक व्यापक गतिविधि है जिसके विभिन्न आयाम स्पष्ट होते हैं। किसी भी व्यवस्था में भर्ती या चयन से पूर्व ही कार्मिक प्रबंध का कार्य प्रारंभ हो जाता है। व्यवस्था की समस्त नियुक्ति नीति स्वयं भर्ती की प्रक्रिया पर प्रभाव डालती है। भर्ती के विविध पहलुओं का आकलन, पदोन्नति का आधार आदि ऐसे विषय हैं, जिनका निर्णय प्रारंभ में ही ले लिया जाता है। सीधी भर्ती का अनुपात, आयु, अनुभव, पदोन्नति का आधार और अन्य नीति संबंधी मामले में प्रबंधकों को पूर्व में ही निर्णय लेने होते हैं। संवर्ग का दीर्घकालीन नियोजन शुरू में ही करने होते हैं और अधिकांश संस्थानों में इस हितकर कार्मिक सिद्धांत का पालन कराने का प्रयास किया भी जाता है। भर्ती और चयन प्रक्रिया के रीति विज्ञान संबंधी प्रश्न इस भर्ती योजनाओं की रूपरेखा के अनुसार होते हैं। रोजगार/नियुक्ति नीति को प्रशिक्षण और विकास नीति, पदोन्नति नीति, उत्साह बढ़ाने की नीति आदि से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ-साथ कर्मचारी कल्याण नीतियां, विवाद प्रबंध संबंधी नीति का निर्धारण भी समय के अनुसार होता है। एक व्यापक कार्मिक नीति मौलिक निर्माण स्तंभ के रूप में कार्य करते हैं परंतु अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें लापरवाही और तदर्थता अत्यधिक है। कार्मिक प्रगति और कार्मिक नीति के संदर्भ में मानवीय पहलुओं की हमेशा से उपेक्षा होती रही है और कार्यकुशलता पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत में सार्वजनिक संस्थान के कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने की बचनबद्धता का भाव दिखाई नहीं देता और न ही भविष्य कालिक हितों की ओर अपने ही लोगों के विकास की कोई चिंता है। बहुत सारे संस्थान मुख्य अधिकार के बिना काम कर रहे हैं। अधिकारियों और कर्मचारियों पर इससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लक्ष्य निर्धारित करने के बाद इनकी प्राप्ति प्रायः नहीं हो पाती और लक्ष्य प्राप्त न करने की स्थिति में अपमान भी नहीं समझा जाता है। इन सब का कारण यह है कि लक्ष्यों के बारे में सचेत न होना और परिणाम के प्रति हमारी कार्मिक नीति के ढांचे को मूल आधार नहीं माना जाना है।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना किस वर्ष की गई थी?

2. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?
3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग के पहले अध्यक्ष कौन थे?
4. सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान किस शहर में स्थापित किया गया है?
5. देश का अग्रिम अन्वेषण अभिकरण क्या है?

### 10.8 सारांश

इस इकाई में लोकनीति की संकल्पना, भारत में कार्मिक प्रणाली के लिए अब तक किए गए प्रयासों और कार्मिक प्रणाली की समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। कार्मिक प्रबंधन लगातार उपेक्षा का शिकार हुआ है और इसके प्रति व्यवसायिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण विविध चुनौतियां भी विगत कुछ वर्षों में उभरी हैं। सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रति उपेक्षा और विचार शून्यता अवहेलना लगातार प्रकाश में आती रही है। मानव संसाधन एक ऐसी संपत्ति है, जिसका मूल्य समय के साथ निरंतर बढ़ता जाता है और किसी संगठन की सफलता इस तत्व पर ही निर्भर करती है। अब तक के कार्मिक प्रणाली ने मानव तत्व को अधिक महत्व नहीं दिया है जो इस दिशा में बहुत बड़ी विसंगति को दर्शाता है। नीति निर्धारकों में सांप्रदायिकता, विभाजक प्रवृत्तियां, वंश परंपरा आदि भरे होने की शिकायतें लगातार मिलती रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मानव संसाधन प्रबंध नीति में संपूर्ण व्यवस्थात्मक एकता, वैज्ञानिक बुद्धिवाद तथा तथा भविष्यवाद जैसे गुण दर्शित होने चाहिए। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि नीति निर्धारक ऐसे कार्य करते हैं जिसका नीति निर्धारण से कोई संबंध नहीं होता। प्रोत्साहन नीति के अभाव में उपलब्धि, प्रेरणा, गतिशीलता या भविष्य के प्रति आशा आदि संगठन से विलुप्त होते जा रहे हैं। पुराने नियम और विनियम आज भी प्रचलित हैं और प्रणाली नकारात्मक विशेषताओं से जुड़ गई है। आवश्यकता एक उचित और उपयुक्त कार्मिक प्रणाली अपनाने की है। इस दिशा में प्रयास तात्कालिक तौर पर होने चाहिए ताकि संगठन की खामियों का यथाशीघ्र निवारण किया जा सके।

लोक सेवकों की कार्मिक नीति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गए हैं, जिसके लिए विशेष प्रयास और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है।

### 10.9 शब्दावली

नीति- सोच समझकर बनाये गये सिद्धान्तों की प्रणाली है जो उचित निर्णय लेने और सम्यक परिणाम पाने में मदद करती।

मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

उपबंध- प्रावधान।

### 10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1985 में,
2. मसूरी,
3. के. हनुमंथप्पा,
4. नई दिल्ली
5. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

### 10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
2. माहेश्वरी, श्रीराम, 2010, भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
3. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।

4. घोष, पी., 1969, पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, सुधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. गोयल, एस. एल., 1964, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

---

### 10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. सैम्पसन, चार्ल्स, 1983, वैल्यूस, ब्यूरोक्रैसी एण्ड पब्लिक, यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ अमेरिका, लंदन।
2. कटारिया, सुरेन्द्र, 1997, कार्मिक प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

---

### 10.13 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. नीति निर्धारण के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. आधुनिक समय में कार्मिक प्रशासन के दायित्वों का मूल्यांकन कीजिए।
3. केन्द्रीय कार्मिक मंत्रालय की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. कार्मिक क्षेत्र में निर्धारित नवीन नीतियों का मूल्यांकन कीजिए।

## इकाई- 11 भर्ती (सेवाओं में आरक्षण)

### इकाई की संरचना

- 11.0 प्रस्तावना
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं
- 11.3 भर्ती का महत्व
- 11.4 भर्ती की प्रक्रिया
- 11.5 भर्ती के प्रकार
- 11.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ
- 11.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ
- 11.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें
- 11.9 भारत में भर्ती की पद्धति
- 11.10 आरक्षण
- 11.11 संवैधानिक सुरक्षा
- 11.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण
- 11.13 सारांश
- 11.14 शब्दावली
- 11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 11.18 निबन्धात्मक प्रश्न

### 11.0 प्रस्तावना

संपूर्ण कार्मिक तंत्र के ढांचे की आधारशिला भर्ती है। प्रशासनिक संरचना में भर्ती और चयन की प्रक्रिया का विशेष महत्व है। इसी से प्रशासन की उपयोगिता एवं समाज तथा प्रशासनिक तंत्र के संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती और चयन की प्रक्रिया शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। प्रशासनिक संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसमें कार्य करने वाले कार्मिकों में वांछित योग्यता हो तथा उनकी योग्यता का परीक्षण उचित प्रकार की परीक्षा, साक्षात्कार आदि के द्वारा निर्धारित की जाए। योग्यता तथा निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था से ही कर्मठ व्यक्ति संगठन में सम्मिलित हो सकते हैं। भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों के विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छंटनी, परीक्षा आयोजन, साक्षात्कार आदि आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करवाना कार्मिक प्रशासन का प्रमुख कार्य है। चयन प्रक्रिया का प्रारंभ भर्ती प्रक्रिया से होता है। भर्ती प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिकों की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित करता है। भर्ती इस प्रकार मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के भर्ती हेतु व्यापक प्रावधान किए गए हैं।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को भर्ती के अर्थ, महत्व, भर्ती के उद्देश्य, भर्ती के प्रकार तथा भर्ती की पद्धतियाँ एवं तकनीक से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के भर्ती की अवधारणा, भर्ती की भारतीय प्रणाली, भारत में भर्ती एजेंसियां और संस्थाएं, भर्ती की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

## 11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन में भर्ती के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- भर्ती की प्रक्रिया के विभिन्न चरण तथा भर्ती की विभिन्न पद्धतियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- भर्ती की अर्हता पद्धति के उद्भव एवं महत्व का वर्णन तथा उपयुक्तता की जांच कर सकेंगे।
- भारत में प्रचलित भर्ती प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे। तथा
- भारत में लोक सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण से संबंधित आवश्यकताओं और प्रावधानों को समझ सकेंगे।

## 11.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं

किसी संगठन में भर्ती या चयन कार्मिक प्रबंध का आधारभूत कार्य है। भर्ती की दूषित नीति के कारण प्रशासन में अस्थाई दुर्बलता जाती है और प्रशासन सुस्त और अयोग्य व्यक्तियों के लिए स्वर्ग बन जाता है। योग्य कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है।

नियुक्ति एवं अधिप्राप्ति एक व्यापक प्रक्रिया है। भर्ती एवं चयन इसके आवश्यक अंग हैं। भर्ती नियुक्ति का प्रथम चरण है। भर्ती अभ्यर्थियों की खोज, आवश्यकता और स्रोतों के निर्धारण तक सीमित है जबकि चयन इसके बाद की प्रक्रिया है। किसी संगठन को योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में भर्ती करना आवश्यक होता है। उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विविध क्रियाकलाप द्वारा कर्मचारियों की पूर्ति के इस कार्य को भर्ती द्वारा संपन्न किया जाता है। संगठन में भर्ती और चयन संबंधी कार्य कार्मिक प्रशासन का बुनियादी कार्य है। भर्ती, प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। भर्ती करते समय संगठनों को श्रम-बाजार की प्रकृति तथा मानव शक्ति के स्रोत को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। नियुक्ति के लिए आवेदनकर्ताओं की संख्या इस बात पर आश्रित रहती है कि कार्य प्रकृति क्या है एवं रिक्त पदों की संख्या कितनी है। विद्यमान आर्थिक स्थितियां, कौशल का उपलब्ध होना, भर्ती करने वाली कम्पनी की साख आदि अन्य तत्व हैं जो भर्ती को प्रभावित करते हैं।

भर्ती का सरल अर्थ हैं- रिक्त पद पर उपयुक्त कार्मिक की नियुक्ति। भर्ती प्रक्रिया में सम्मिलित गतिविधियों के आधार पर इसके संकुचित और व्यापक दो अर्थ होते हैं- संकुचित अर्थों में भर्ती, रिक्त पद पर योग्य उम्मीदवार की नियुक्ति तक सीमित है। व्यापक अर्थों में भर्ती रिक्त पद के लिए योग्य उम्मीदवार के चयन से लेकर उस पद पर उसकी सामर्थ्यपूर्ण स्थापना तक की कार्यवाहियों से संबंधित हैं। भर्ती को विविध विद्वानों ने परिभाषित किया है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

एल.डी.व्हाइट के अनुसार, “रिक्त पदों के लिए आयोजित परीक्षाओं हेतु योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है।”

जे. डी. किंग्सले के शब्दों में, “भर्ती का अर्थ है, लोक सेवाओं के लिए प्रार्थियों को प्रतियोगात्मक रूप से आकर्षित करना। यह व्यापक प्रक्रिया का एक अंग है। इसमें परीक्षा और प्रमाणन प्रक्रियाएं भी शामिल हैं।”

एडविन फिलिप्पो के अनुसार, “भर्ती सम्भावित कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें संगठन कार्यों के लिए आवेदन करने के लिए उत्प्रेरित करने की प्रक्रिया है।”

किलंगर के अनुसार, “भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है।”

प्रो. ब्यूल के अनुसार, “किसी विक्रय पद के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध प्रार्थियों की सक्रिय खोज करना ही भर्ती है।”

एम.पी.शर्मा के शब्दों में, “भर्ती का सीधा अर्थ है, योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति की रिक्त स्थान पर नियुक्ति।”

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर्मचारियों की भर्ती वह क्रिया है जिसके द्वारा संस्था में विभिन्न रिक्त पदों के लिए व्यक्तियों की खोज की जाती है तथा उन्हें रिक्त पदों तथा उनके लिए आवश्यक योग्यता के संबंध में जानकारी देकर उन्हें संस्था में आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाता है, ताकि संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। किसी संगठन में भर्ती तथा चयन कर्मचारी संबंधी मूलभूत कार्य है। भर्ती द्वारा ही लोक सेवाओं का स्तर एवं योग्यता निश्चित होती है और इसी से शासन की उपयोगिता और समाज और शासन तंत्र के बीच संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती संपूर्ण कार्मिक प्रशासन के ढांचे की आधारशिला है। इस प्रकार भर्ती चयन की विस्तृत प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, जो परीक्षा, साक्षात्कार एवं प्रमाणीकरण इत्यादि की प्रक्रिया को समाहित करता है।

भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है। भर्ती की विशेषताएं निम्न हैं-

1. भर्ती प्रशासन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. भर्ती योग्य व्यक्तियों के खोज की प्रक्रिया है।
3. भर्ती एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें चयन अनुपात को बढ़ाने का उद्देश्य रहता है।
4. भर्ती वर्तमान तथा भावी दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जा सकती है।
5. इसमें व्यक्तियों को आवेदन करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता है।
6. इसमें भर्ती के विभिन्न स्रोतों का निर्धारण करके उन्हें बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
7. भर्ती के द्वारा प्रत्येक कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में आवेदकों की पूर्ति उत्पन्न होनी चाहिये ताकि नियोक्ता को चयन की सुविधा हो।
8. भर्ती एवं चयन परस्पर सम्बद्ध हैं, यद्यपि दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है।

भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम चीन में अनुभव किया गया था और योग्यता के सिद्धांत पर आधारित भर्ती को अपनाने की ठोस नीति को मान्यता भी चीन में ही प्रारंभ की गई। आधुनिक समय में प्रशा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया था। भारत में योग्यता का सिद्धांत 1853 से प्रारंभ हुआ जबकि ब्रिटेन में इसे 1857 में स्वीकार किया गया है। अमेरिका में योग्यता सिद्धांत 1883 में आरंभ हुआ जबकि फ्रांस में प्रतियोगिता परीक्षाओं की शुरुआत 1847 से हुई थी। भर्ती के योग्यता सिद्धांत ने लूट सिद्धांत का स्थान लिया है लेकिन यह परिवर्तन धीरे-धीरे ही हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लूट-खसोट की प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या के बाद इसमें परिवर्तन किया गया और 1883 में पहली बार प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से भर्ती का प्रावधान किया गया।

### 11.3 भर्ती का महत्व

प्रशासनिक व्यवस्था में भर्ती सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसी संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में पूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य कर सकें। लोक सेवाओं के गुण और कार्यकुशलता भर्ती और भर्ती संबंधी नीतियों पर निर्भर करते हैं। भर्ती सम्भावित कर्मचारियों के स्रोतों का निर्धारण करने, व्यक्तियों को कार्य अवसरों के बारे में सूचित करने तथा उन प्रार्थियों को संस्था में आकर्षित करने की प्रक्रिया है, जो कार्य को निष्पादित करने की वांछित योग्यता रखते हैं।

कर्मचारियों की पूर्ति के कार्य को भर्ती तथा चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। लोक सेवकों की योग्यता और नैतिक स्तर का निर्धारण भर्ती प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। समाज के प्रति सरकार और प्रशासन की प्रासंगिकता और उपयोगिता एक स्वस्थ एवं निष्पक्ष भर्ती प्रणाली पर ही निर्भर करती है। भर्ती पद्धति स्वस्थ एवं निष्पक्ष तथा

इसका क्रियान्वयन कुशलतापूर्वक एवं बिना भेदभाव के होना चाहिए। भर्ती कुशल व्यक्तियों के सिविल सेवा में प्रवेश हेतु प्रवेश द्वार खोलने का कार्य करता है। यह एक सुदृढ़ लोक सेवा का आधार स्तंभ भी है। स्टॉल के अनुसार भर्ती संपूर्ण सार्वजनिक कार्मिक रचना की आधारशिला है। प्रशासनिक आवश्यकता के लिए सर्वोत्तम, कुशाग्र बुद्धि और अत्यधिक कार्य दक्ष व्यक्तियों की पूर्ति भर्ती प्रणाली द्वारा ही संभव है। आधुनिक समय में लोकसेवा सबसे महत्वपूर्ण जीवन वृत्ति सेवा है और जीवन वृत्ति सेवा का कोई भी घटक भर्ती नीति से बढ़कर महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार भर्ती कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्य कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों की भरने की संपूर्ण प्रक्रिया भर्ती से विस्तृत मालूम पड़ती है। फिर भी भर्ती को सामान्यतया उस प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जिसके द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए लोगों की सेवा में नियुक्ति की जाती है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिकों की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित कर सकता है। भर्ती एवं चयन मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग तथा मानव संसाधन विकास का एक आवश्यक कार्य है। प्रशासन में अनेक कारणों से मानव संसाधनों में परिवर्तन होते रहते हैं। नवीन तकनीकों में परिवर्तनों के कारण भी नये कर्मचारियों की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है। भर्ती एवं चयन संगठन में नयी मानव शक्ति जोड़ने की प्रक्रिया है तथा यह कर्मचारी नियोजन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

#### 11.4 भर्ती की प्रक्रिया

भर्ती सभी देशों के प्रशासनिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अकुशल, अयोग्य और अनुपयोगी व्यक्तियों के सेवा में भर्ती हो जाने के पश्चात सबसे खर्चीला प्रशासन भी देश हित में कुछ नहीं कर सकता। शासन में सुयोग्य और कुशल व्यक्तियों का चयन उचित भर्ती व्यवस्था द्वारा ही संभव है। किसी भी देश की भर्ती पद्धति विशेषकर उस देश की संवैधानिक व्यवस्था तथा सामाजिक राजनीतिक नीतियों पर निर्भर करती है। भर्ती की पुरानी विधियां अब देश, काल, परिस्थिति के अनुसार पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गई हैं और लोक सेवा अधिकारी की भर्ती के लिए सभी देशों ने अर्हता पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

भर्ती प्रक्रिया रिक्त पदों के विज्ञापन या उद्-घोषणा के साथ ही शुरू हो जाती है। उच्चतर पदों पर लोक सेवा आयोग या विभिन्न अधीनस्थ पदों पर अन्य एजेन्सी द्वारा भर्ती विज्ञापन प्रकाशित करने के पूर्व संबंधित विभागों से रिक्त पदों की जानकारी प्राप्त की जाती है। अतः लोक सेवा में भर्ती का प्रथम चरण यही से शुरू होता है। विज्ञापन जारी होने के पश्चात अगला चरण आवेदन पत्रों की जांच होता है। उपयुक्त आवेदकों को परीक्षा या साक्षात्कार के लिए बुलावा भेजा जाता है। यदि परीक्षा में आवेदक की संख्या ज्यादा हुई तो उसके बाद रिक्त पदों के लिए निश्चित अनुपात (सामान्यतया 1 पद के विरुद्ध 3 उम्मीदवार) में साक्षात्कार हेतु प्रत्याशियों को आमंत्रित किया जाता है। योग्यता क्रम के अंकों के आधार पर प्रत्याशियों को चयनित घोषित किया जाता है। नियुक्ति देने के पूर्व चयनितों का चरित्र-सत्यापन और चिकित्सकीय परीक्षण भी करवाया जाता है। अन्ततः उन्हें पद पर स्थापित कर दिया जाता है। यद्यपि अधिकांश पदों पर व्यवहारिक पद स्थापना के पूर्व उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता है।

लोक सेवा के अधिकारी राज्य के पूर्णकालिक तथा पेशेवर कर्मचारी होते हैं तथा उनकी नियुक्ति एक विशेष प्रक्रिया द्वारा की जाती है, जिसे भर्ती की संज्ञा दी जाती है। भर्ती की प्रक्रिया विविध चरणों में संपन्न होती है। प्रमुख चरण निम्न हैं-

1. **पदों और नौकरियों की आवश्यकता-** सरकारी विभागों तथा अन्य संस्थाओं से अध्याचन के पश्चात यह निर्धारित होता है कि कितने कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी है अथवा प्रोन्नत किया जाना है। भर्ती

- प्रक्रिया आरंभ करने से पहले यह सारी सूचनाएं भर्ती अधिकारी/अभिकरण द्वारा एकत्र की जाती है। तत्पश्चात रिक्त पदों का वर्गीकरण कर यह सुनिश्चित किया जाता है कि कितने पदों के लिए भर्ती प्रक्रिया शुरू करनी है। उसी समय रिक्त पदों के लिए अपेक्षित अर्हताएं, अनुभव इत्यादि के निर्धारण पर भी विचार किया जाता है।
2. **भर्ती नीति की शर्तों, अर्हता एवं अन्य पहलुओं का निर्धारण-** पदों एवं आवश्यकता निर्धारण के पश्चात दूसरा चरण अपेक्षित योग्यता और अन्य शर्तों का निर्धारण से संबंधित है, जिन्हें समाचार पत्रों, बुलेटिन, एवं अन्य माध्यमों के द्वारा सूचित किया जाता है। न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता, पूर्व अनुभव, उम्र सीमा, निवास, राष्ट्रीयता, शारीरिक उपयुक्तता इत्यादि के संबंध में निर्णय इसी दौरान लिया जाता है तथा अंतिम निर्णय लेने से पूर्व भर्ती संबंधी संवैधानिक व्यवस्था और सरकार की नीतियों पर भी विचार कर लिया जाता है।
  3. **आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार करना-** अगले चरण के रूप में उपयुक्त आवेदन पत्र की रूपरेखा तैयार करना आवश्यक हो जाता है, जिन्हें अभ्यर्थियों को विभिन्न रिक्त पदों में आवेदन करने के लिए दिया जाता है। आवेदन पत्र में सभी स्तंभ होने चाहिए जो व्यक्ति के बारे में प्रासंगिक सूचना दे सके। विभिन्न पदों तथा परीक्षाओं या सेवाओं के लिए विविध प्रकार के आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार की जाती है।
  4. **पद एवं परीक्षा इत्यादि का विज्ञापन निकालना-** अपेक्षित अर्हता और शर्तों इत्यादि के निर्धारण के पश्चात विभिन्न माध्यमों द्वारा परीक्षाओं का विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है ताकि अधिकाधिक योग्य अभ्यर्थियों को आवश्यक रूप से आकर्षित एवं प्रेरित किया जा सके। कभी-कभी समाचार पत्रों में भी आवेदन-पत्र का प्रारूप निकाल दिया जाता है ताकि अभ्यर्थियों को आवेदन करने में सहूलियत हो। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्येक शनिवार को अपने विज्ञापनों का प्रकाशित किया जाना इसी भर्ती प्रक्रिया का एक प्रमुख सोपान है।
  5. **आवेदन पत्रों का सूक्ष्म परीक्षण करना-** निर्धारित तिथि के अंतर्गत प्राप्त आवेदनों को सूक्ष्म परीक्षण के बाद छटनी की जाती है तथा आवेदक को इस विषय के बारे में सूचित भी किया जाता है। तत्पश्चात परीक्षा की तिथि अथवा साक्षात्कार के लिए बुलावा पत्र प्रेषित किया जाता है जिस पर परीक्षा की तिथि, समय, स्थान इत्यादि आवश्यक जानकारियां दर्ज की गई होती है। इस अवस्था में आकर बहुत सारे अयोग्य और अक्षम अभ्यर्थियों का नाम भर्ती प्रक्रिया से निकाल दिया जाता है।
  6. **परीक्षा, साक्षात्कार एवं अन्य जांचों को आयोजित करना-** सुयोग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के चयन के लिए उनकी योग्यता और क्षमता की जांच आवश्यक है और यह कार्य लिखित परीक्षा या साक्षात्कार या किसी दूसरे प्रकार के जांच के द्वारा ही संभव है। यह परीक्षाएं किसी व्यक्ति की अर्हता जांच करने की औपचारिक प्रक्रिया है। प्रक्रियाओं के माध्यम से अर्हता अभ्यर्थी की श्रेणी, अभ्यर्थी का क्रम और योग्य अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है। परीक्षा के पश्चात सफल अभ्यर्थियों की एक सूची प्रकाशित की जाती है। साक्षात्कार में भी एक समरूप प्रक्रिया ही अपनाई जाती है और सफल या योग्य अभ्यर्थियों की सूची प्रकाशित होती है।
  7. **प्रमाणीकरण-** परीक्षा, साक्षात्कार तथा विभिन्न प्रकार के जांच के पश्चात सफल अभ्यर्थियों का नाम या क्रमांक समाचार पत्रों या सूचना पट्ट पर घोषित कर दी जाती है। सफल एवं योग्य अभ्यर्थियों की सूची कार्मिक संस्था द्वारा प्रमाणित की जाती है और यह सूची सरकार को इस अनुमोदन के साथ भी जाती है कि अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति की अंतिम सूची से किया जाए। संघ लोक सेवा आयोग जैसी संस्था का यह अंतिम कार्य है। सामान्यतया योग्य अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति सरकार द्वारा केवल इसी

प्रमाणित सूची से की जाती है, लेकिन कुछ आपत्तियों के आधार पर इस सूची से किसी भी अभ्यर्थी का नाम सरकार हटा भी सकती है।

8. **चयन-** उपलब्ध योग्य एवं प्रतिभावान अभ्यर्थियों में से अभ्यर्थियों को चुनने की प्रक्रिया के नाम चयन है। यदि भी अभ्यर्थियों की योग्यता की जांच लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार द्वारा की जाती है तथा कार्मिक संस्थाओं द्वारा योग्य अभ्यर्थियों को प्रमाणित भी किया जाता है। फिर भी अंतिम चयन सरकार का उत्तरदायित्व है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में सामान्यतया सरकार संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अनुमोदित अभ्यर्थियों की सत्यापित सूची में से ही नियुक्तियां करती है लेकिन किसी विशेष कारण से यदि किसी अभ्यर्थी का नाम निरस्त किया जाता है तो सरकार इसका कोई ठोस उपयुक्त और समुचित कारण संसद में प्रस्तुत करती है क्योंकि प्रजातंत्र में अंतिम रूप से सरकार को ही जनता को उत्तर देने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है।
9. **नियुक्ति-** उपयुक्त और योग्य अभ्यर्थियों के चयन के पश्चात औपचारिक नियुक्ति सरकार के द्वारा की जाती है। समस्त नियुक्तियां एक सुयोग्य कार्यकारी अधिकारी के द्वारा की जाती हैं। भारत में केंद्र सरकार की सभी नियुक्तियां राष्ट्रपति के नाम से तथा राज्य सरकारों की नियुक्तियां राज्यपाल के नाम से की जाती है। सरकार द्वारा प्रेषित नियुक्ति पत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे स्थाई नियुक्ति, अल्पकालिक नियुक्ति, परिविक्षाधीन नियुक्ति तथा अनिश्चितकालीन नियुक्ति आदि। आरंभ में किसी भी अभ्यर्थी को स्थाई नियुक्ति पत्र नहीं दिया जाता है। सामान्यतया चयनित अभ्यर्थियों को परिवीक्षा के आधार पर नियुक्त किया जाता है। यह अवधि 6 महीना, 1 वर्ष या 2 वर्ष हो सकती है। परिवीक्षा की अवधि में अभ्यर्थियों से विविध पदों पर कार्य करने को कहा जाता है। जिसके मूल्यांकन के पश्चात उसकी सूचना नियुक्ति अधिकारी को दी जाती है। सफलतापूर्वक परिवीक्षा की अवधि पूर्ण करने के पश्चात अभ्यर्थियों को सेवा में स्थाई कर लिया जाता है।
10. **पदस्थापन-** परिवीक्षा की अवधि पूर्ण होने के पश्चात सेवा का पुष्टिकरण किया जाता है और उसे समुचित पद पर पदस्थापित किया जाता है, जिसे नियोजन या पदस्थापन कहा जाता है। उसे उस पद से संबंधित किसी विशेष प्रकार के कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। कुछ वर्षों तक कार्य करने के अनुभव के पश्चात नियुक्त अधिकारी उस पद के दायित्वों का निर्वहन करता है।

### 11.5 भर्ती के प्रकार

भर्ती के संबंध में विविध विधियों का प्रयोग दुनिया के देशों में किया जाता है। विभिन्न देशों में भर्ती के विविध प्रकार या विधियों को अपनाया गया है, उनमें हैं-

1. **प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भर्ती-** भर्ती की दो विधियां हैं- आंतरिक भर्ती यानी प्रोन्नति से भर्ती करना और बाह्य उपलब्ध लोगों से भर्ती करना। बाह्य उपलब्ध और योग्य अभ्यर्थियों द्वारा जब रिक्त पदों पर भर्ती की जाती है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती कहते हैं लेकिन जब पहले से ही सेवारत उपयुक्त और अनुभवी अभ्यर्थियों के द्वारा रिक्त पद भरा जाता है तो उस प्रोन्नति को अप्रत्यक्ष भर्ती कहा जाता है। आंतरिक स्रोत से आशय उपक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों की उच्च पदों पर पदोन्नति, स्थानान्तरण व समायोजन से है। बाह्य स्रोत से भर्ती निम्न वर्गीय कर्मचारियों की जाती है। भर्ती की दोनों विधियों के कुछ लाभ और कुछ हानियां हैं लेकिन विश्व के लगभग सभी देशों में यही दो विधियां अपनाई जाती हैं। सामान्यतया निर्णय स्तरीय पदों को प्रत्यक्ष भर्ती तथा उच्च स्तरीय पदों को पदोन्नति यानी अप्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा भरा जाता है। विभिन्न देशों में उनके राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों के अनुसार विवेक सम्मत और व्यवहारिक दोनों प्रकार की भर्ती नीतियों के सम्मिश्रण को अपनाया जाता है।

प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के लाभ के साथ साथ हानियाँ भी बहुत हैं। प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली योग्य उम्मीदवारों को शुभ अवसर प्रदान करता है। अतः प्रजातांत्रिक सिद्धांत है। इसमें आपूर्ति के स्रोत विस्तृत हैं तथा इसके द्वारा युवा और अति योग्य अभ्यर्थी सिविल सेवा में आते हैं। इसमें नए चेहरे, नए विचार, परिवर्तन, तकनीकी, प्रशासकीय, सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं का सेवाओं में प्रति भी मन होता है। इसमें परिवर्तनशील अवस्था और तकनीकों के साथ सेवा प्रगति कर सकती हैं तथा कर्मचारीगण अपनी अर्हता बढ़ाने के लिए कठिन परिश्रम भी करते हैं।

वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली की हानियाँ भी हैं। इसमें उत्तरदायी पदों पर अनुभव ही नहीं युवकों को भर्ती किया जाता है जिनमें कम से कम आरंभ में अपने कर्तव्य निर्वाह के लिए दक्षता और आत्मविश्वास का अभाव रहता है। प्रत्यक्ष विधि के द्वारा नियुक्त अनुभवहीन युगों के लिए प्रशिक्षण परम आवश्यक हो जाता है। इस भर्ती पद्धति में सरकारी सेवाओं में पहले से कार्य कर रहे लोगों की प्रोन्नति व्यवसाय अवरुद्ध हो जाते हैं। इससे उनकी कार्यकुशलता और निष्ठा पर बुरा असर पड़ता है। यह लोक सेवाओं का कार्यभार अत्यधिक बढ़ा देता है। भविष्य में उन्नति के अवसर नहीं दिखने पर कर्मचारियों और अन्य योग्य और कुशल लोगों में विश्वास पैदा करता है। इसमें कर्मचारी के अनुभव, कठिन परिश्रम और कार्यकुशलता पूर्ण हो जाते हैं तथा अधिक समय नष्ट करने वाली और अधिक खर्चीली भी है।

दूसरी ओर अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में नियुक्त व्यक्तियों को प्रशासनिक और सरकारी कार्यों का अपेक्षित अनुभव रहता है तथा वह भी अपने कर्तव्य निर्वाह पूर्ण विश्वास और उत्तरदायित्व के साथ करते हैं तथा इस विधि के द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के लिए दीर्घावधि प्रशिक्षण आवश्यक नहीं है। यह कर्मचारियों में सेवा में प्रगति और तरक्की का अवसर प्रदान करता है तथा कठिन परीक्षण करने हेतु प्रोत्साहित भी करता है। अप्रत्यक्ष भर्ती लोक सेवा आयोग का कार्यभार काफी हद तक कम कर देता है तथा इसके माध्यम से कर्मचारी के कार्यकुशलता, अनुभव का उपयोग देश की प्रगति किया जाता है। अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली कम समय नष्ट करने वाला और कम खर्चीला है। वहीं दूसरी ओर अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के हानियाँ भी कम नहीं हैं। इस भर्ती प्रणाली में सेवा में पूर्व से विद्यमान सीमित अभ्यर्थियों को अवसर प्रदान किया जाता है जो अप्रजातांत्रिक है। इसमें आपूर्ति के स्रोत और प्रतिबंधित होते हैं तथा इसके द्वारा सक्षम अभ्यर्थियों को सिविल सेवा में प्रवेश के अवसर को नकारा जाता है। इस प्रकार यह भय पैदा करता है। नए चेहरे, नए विचारों को प्रवेश करने से रोकता है। इसमें शीघ्र परिवर्तनशील संसार के साथ सिविल सेवा प्रगति नहीं कर पाती है तथा प्रोन्नति की अवसर की प्रतीक्षा कर्मचारी हमेशा करते ही रह जाते हैं।

दोनों प्रकार की भर्तियों के गुण और दोषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पद्धति के कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक पहलू हैं श्रेष्ठ पद्धति दोनों विधियों को अपनाकर निर्मित की जाती है।

2. **सकारात्मक और नकारात्मक भर्ती-** जब भर्ती के अभिकरण सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए सक्रिय रूप से सर्वाधिक योग्य और अत्यधिक का कार्य कुशल अभ्यर्थियों की खोज करते हैं तो इसे भर्ती की सकारात्मक विधि कहा जाता है। इसके विपरीत अभ्यर्थियों का ध्यान आकर्षित किए बगैर अयोग्य और अनुपयुक्त अभ्यर्थियों को बाहर रखने के लिए भर्ती की नकारात्मक विधि का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में अभ्यर्थियों को आगे लाने हेतु आकर्षित करने के लिए अनेक देशों में सकारात्मक समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रचार साहित्य, सिनेमा इत्यादि को अपनाया जाता है।
3. **सामूहिक और व्यक्तिगत भर्ती-** एक बड़ी संख्या में गैर-तकनीकी और सामान्य सेवाओं के रिक्त पदों को भरना सामूहिक भर्ती की तकनीक है। सरकारी में भारी संख्या में रिक्त पदों को भरने के लिए जनसंचार माध्यमों के द्वारा विज्ञापन निकाला जाता है। तत्पश्चात् परीक्षा और साक्षात्कार की कठिन विधि अपनाई जाती है। लोक सेवा आयोग भारत में इन्हीं विधियों को दोनों विधियों को प्रयोग में लाते हैं।

## 11.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ

लोक सेवाओं के कर्मचारियों के लिए आवश्यक अर्हता संबंधी प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन्हीं बिंदुओं पर लोक सेवाओं की कार्यकुशलता निर्भर करती है। लोक सेवाओं के लिए अर्हता पद्धतियाँ दो प्रकार की होती हैं- सामान्य और विशेष। सामान्य अर्हता सभी लोग कर्मचारियों पर लागू होते हैं और एक प्रकार से सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में आने वाली होती हैं। सामान्य अर्हताएं- नागरिकता, अधिवास, लिंग भेद और आयु से संबंध रखते हैं। विशेष अर्हताएं- शिक्षा, अनुभव, प्राविधिक ज्ञान, व्यक्तिगत विशेषताओं से संबंधित होती हैं। आइये इनका विस्तृत अध्ययन करते हैं-

- 1. नागरिकता-** लोक सेवा के पदों के लिए आवेदन करने वालों को राज्य का नागरिक होना आवश्यक है। विदेशियों को लोक सेवा में कोई पद नहीं दिया जा सकता। यदि कोई विदेशी नियुक्त कर भी लिया जाता है तो उसका कार्यकाल थोड़े समय के लिए ही होता है। भारत में नेपाल के परिजनों के लिए लोक सेवाओं के पदों पर नियुक्ति की सुविधाएं हैं क्योंकि भारत के साथ इस देश के दृढ़ ऐतिहासिक संबंध है।
- 2. अधिवास या निवास-** अधिवास संबंधी अर्हता को संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा स्थापित की गई थी, जहां आज भी संघीय राज्यों को राष्ट्रीय सेवाओं में यथोचित प्रतिशत स्थान दिया जाता है। भारत में अधिवास संबंधी नियम 1957 तक लागू थे। राज्य पुनर्गठन आयोग ने भारत की लोक सेवाओं की पात्रता के लिए इन प्रावधानों पर आपत्ति की थी और इन्हीं आलोचनाओं के केंद्र सरकार ने लोक सेवा अधिनियम 1957 पारित किया, जिसके द्वारा राज्य की लोक सेवाओं में प्रवेश पाने के संबंध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके देश की एकता को सुदृढ़ बनाया गया।
- 3. लिंग भेद-** कुछ समय पूर्व तक अधिकतर देशों में महिलाओं को लोक सेवा में नौकरी करना निषिद्ध था। अब यह लगभग समाप्ति की ओर है। भारतीय संविधान निर्धारित करता है कि सभी नागरिकों को राज्य के पदों पर नियुक्ति संबंधी मामलों में समान अवसर प्राप्त होंगे।
- 4. आयु-** भारत, ब्रिटेन और अन्य देशों में लोक सेवा में नव युवकों की भर्ती की जाती है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक परिपक्व स्त्री पुरुषों को ही नौकरी में लिया जाता है। इसका सरकार के सभी वर्ग संबंधी ढांचे पर प्रभाव पड़ता है। आधुनिक समय में जबकि प्रशासनिक कार्यों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, उच्चतर आयु समूह के व्यक्तियों को ही लोक सेवा में प्रवेश पाने से वंचित नहीं किया जा सकता। भारत में 18 से 30 वर्ष तक की आयु के युवक लोकसेवा प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं और जाति जनजाति में यह सीमा 5 वर्ष स्थापित की गई है जबकि पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए 3 वर्ष की छूट है। अमेरिका की भर्ती प्रणाली की एक विशेषता यह है कि कोई भी व्यक्ति अमेरिकी लोक सेवा में लगभग किसी भी स्तर पर तथा किसी भी आयु में प्रवेश पा सकता है।
- 5. शिक्षा संबंधी अर्हता-** इस संबंध में दो प्रकार की नीतियां प्रचलित है। लोक सेवा में प्रवेश पाने के लिए निश्चित शिक्षा संबंधी योग्यता निर्धारित की गई है। वहीं अमेरिकी में शिक्षा संबंधित प्रावधान नहीं है। भारत में लोक सेवा के लिए प्रणाली की सामान्य व्यवस्था के अनुसार अनिवार्य न्यूनतम अर्हता स्नातक उपाधि होती है।
- 6. अनुभव-** संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सेवा में किसी भी आयु के प्रवेश दिया जा सकता है। कार्य के वास्तविक अनुभव का बहुत अधिक महत्व है तथा उसकी बहुत मांग रहती है। भारतीय प्रणाली में महाविद्यालयों/विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त युवकों की भर्ती की जाती है। फिर भी विधिक सेवाओं के लिए अनुभव को मांगा जाता है।

7. **व्यक्तिगत अर्हता-** लोक सेवकों में निष्पादन की योग्यता, चातुर्य, युक्ति, ईमानदारी, क्षमता, सच्चाई और मिलजुल कर कार्य करने की योग्यता होना आवश्यक है।
8. **प्राविधिक योग्यता अनुभव-** विकास उन्मुख सरकार के लिए अर्थशास्त्री, कानूनी परामर्शदाता, इंजीनियर, वैज्ञानिक और ऐसे ही अनेक प्राविधिक कर्मचारियों को अधिकाधिक शासकीय सेवा में भर्ती करना आवश्यक है।

दुनिया के सभी प्रजातांत्रिक देशों में भर्ती की अर्हता पद्धति को अपनाया गया है। अर्हता पद्धति के अनुसार खुली प्रतियोगिता के द्वारा चयनित योग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के द्वारा सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों को भरा जाता है। खुली प्रतियोगिता का उद्देश्य अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को आंकना होता है और यह कार्य प्रायः लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, साक्षात्कार, कार्य निष्पादन परीक्षा, पूर्व अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के द्वारा किया जाता है।

प्राचीन भारत एवं चीन में कर्मचारियों का चयन योग्यता के आधार पर किए जाने के प्रमाण मिलते हैं, किंतु आधुनिक काल में अर्हता सिद्धांत अपेक्षाकृत नवीन है। सबसे पहले यह भारत और ब्रिटेन में क्रमशः 1854 और 1855 में प्रारंभ किया गया, किंतु अमेरिका में अर्हता सिद्धांत सबसे पहली बार 1833 के पेंडलटन एक्ट के द्वारा लागू किया गया। जब एक बेरोजगार एवं हतोत्साहित युवक ने लूट-खसोट प्रणाली के खिलाफ राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी थी। अर्हता सिद्धांत अपनाते से पूर्व विश्व में तीन पद्धतियां विद्यमान थीं- कार्यालयों का विक्रय, क्रय पद्धति तथा इनामी पद्धति।

फ्रांस की क्रांति से पहले वहां सार्वजनिक नीलामी के द्वारा ऊंची बोली लगाने वालों के हाथों बेचा जाता था जिससे राज्य के लिए राजस्व भी प्राप्त होता था और धन वालों को सरकारी पद प्राप्ति हेतु अवसर भी प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार सरकार के प्रति पक्षपात एवं राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने वाली यह व्यवस्था थी। ब्रिटेन तथा अन्य देशों में प्रश्रय प्रणाली को अपनाया गया था जिसके अनुसार सरकारी सेवा में अभ्यर्थियों की नियुक्ति नियुक्ति अधिकारी के द्वारा चयन के आधार पर की जाता था। जिससे वह व्यक्तिगत या राजनीतिक आधार पर सहायता करना चाहता था। परिवार और रिश्तेदारी, व्यक्तिगत निष्ठा, राजनीतिक संबंध, सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद भर्ती के इस प्रणाली में शामिल थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक यह पद्धति भारत और यूरोप में भी प्रचलित थी। इनामी पद्धति अमेरिका में प्रचलित थी, जहां निर्वाचन में जीतने वाले पार्टी के द्वारा इनाम के रूप में सरकारी सेवा में नियुक्तियां की जाती थी। जब भी कोई नई पार्टी सत्ता में आती थी तो वह अपने समर्थकों को पद पर भर्ती थी और पूर्व सरकार द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारियों को बर्खास्त कर देती थी। इस प्रकार सत्ताधारी पार्टी में निष्ठा अनुभूति रखने वाले नवनिर्वाचित राष्ट्रपति के प्रति व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान रहते थे। उन्हें सरकारी तौर पर लोक सेवकों को नियुक्त किया जाता था। अमेरिका में यह पद्धति 1833 के एक्ट के पास होने तक एक शताब्दी से भी अधिक समय तक प्रचलित रहा।

प्रजातांत्रिक भावनाओं की वृद्धि तथा प्रशासन की जटिलताओं के कारण उपरोक्त भर्ती की प्रविधियां पुरानी हो गई हैं। योग्यता और अर्हता के आधार पर भर्ती करना विश्व के सभी देशों में प्रारंभ हो चुका है। इनामी प्रणाली कहीं भी प्रचलन में नहीं है।

### 11.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ

अधिकांश देशों में लोक सेवा के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है। प्रशासन में भर्ती हेतु योग्यता सिद्धांत के अंतर्गत एक केंद्रीय निष्पक्ष और गैर-राजनीतिक तथा स्वतंत्र केंद्रीय कार्मिक संस्था जैसे लोक सेवा आयोग इत्यादि आवश्यक होते हैं। अभ्यर्थियों की अर्हता सरकार द्वारा नियुक्त

केंद्रीय कार्मिक संस्था के द्वारा ही हो पाती है। सामान्यतया अभ्यर्थियों की अर्हता की जांच के लिए किया निम्नांकित विधियों के संयोजन से की जा सकती है। ये विधियां हैं-

1. **लिखित परीक्षा-** बुद्धि, स्मरण शक्ति, ज्ञान तथा सूचनाओं की तर्कसंगत प्रस्तुति के लिए कल्पना और क्षमताओं की जांच हेतु लिखित परीक्षा एक सामान्य विधि है। लिखित परीक्षाएं दो प्रकार की होती हैं- निबंधात्मक तथा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ। भारत में निबंधात्मक परीक्षाएं सामान्य है। प्रश्न पत्र में से दिए गए कुछ प्रश्नों का उत्तर दो से तीन घंटे में पूर्ण रूप से विस्तृत निबंधात्मक रूप से अभ्यर्थियों को लिखने हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि से अभ्यर्थियों की सामान्य बौद्धिक क्षमता, तथ्यपरक सूचना अभिव्यक्ति की क्षमता, स्मरणशक्ति, तर्कपूर्ण विवेचन की योग्यता तथा विचारों की स्पष्टता इत्यादि के संबंध में जांच की जाती है। लेकिन निबंधात्मक परीक्षा पद्धति में मूल्यांकन कठिन और व्यक्तिपरक होता है। दूसरी प्रकार की परीक्षा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ होती है। इस प्रकार के प्रश्न पत्र में बहुत सारे प्रश्न होते हैं जिसे एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर उत्तर देना होता है। कभी-कभी रिक्त स्थानों की पूर्ति अथवा सही या गलत कथन के रूप में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रणाली अभ्यर्थी की तथ्यात्मक सूचना और सही ज्ञान को परखने में उपयोगी सिद्ध होता है। इसे तत्काल अभ्यर्थी की निर्णय लेने की क्षमता और स्मरण शक्ति की जांच होती है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण तथा मूल्यांकन भी वस्तुनिष्ठ नहीं होता है तथा इसमें परीक्षक किए आत्म मूल्यांकन के लिए कोई स्थान नहीं होता। फिर भी बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को जांचने के लिए यह सर्वाधिक सरल विश्व सनीय निधि हैं।

अनेक देशों में दोनों प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन है। उच्च स्तर पर जहां ज्ञानी व्यक्ति और तार्किक चिंतन आवश्यक है वही निबंधात्मक प्रश्नों को ही प्रमुखता दी जाती है। निम्न स्तर पर जहां अभ्यर्थियों की संख्या बहुत बड़ी होती है, वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को प्रमुखता दी जाती है। इस परीक्षा में अभ्यर्थियों की सामान्य ज्ञान, योग्यता और बौद्धिक क्षमता आँकने के लिए लिखित परीक्षा भी आयोजित की जाती है। भारत और ब्रिटेन में कुछ अनिवार्य सामान्य पत्र जैसे सामान्य निबंध, सामान्य ज्ञान तथा सामान्य अंग्रेजी इत्यादि में लिखित परीक्षाएं ली जाती है। साथ ही अभ्यर्थियों की रुचि के अनुसार कुछ शैक्षिक वैकल्पिक प्रश्न पत्रों की भी परीक्षाएं होती है जो प्रायः महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों से लिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि प्रशासन में विशिष्ट ज्ञान की अपेक्षा बौद्धिक क्षमता अधिक आवश्यक है और एक तेज और तीक्ष्ण बुद्धि वाला व्यक्ति सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों के लिए उपयोगी है।

2. **पूर्व कार्य के रिकार्डों का मूल्यांकन-** शासकीय सेवाओं में बहुत सारे ऐसे पद होते हैं, जिनके लिए लिखित परीक्षा या साक्षात्कार सही प्रणाली सिद्ध नहीं होती। वकालत, चिकित्सा, इंजीनियरिंग एवं वैज्ञानिक तथा इसी प्रकार की ढेर सारी सेवाओं में विशिष्ट एवं तकनीकी पदों के रिक्त स्थानों को अभ्यर्थियों के अर्हता, अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के पश्चात ही भरा जाता है। न्यूनतम अर्हता को पूर्ण करने वाले आवेदकों को अपने प्रस्तुत किए गए रिकॉर्ड के आधार पर विशेषज्ञों के एक बोर्ड द्वारा जांच की जाती है और सभी गुणों के आधार पर उनका चयन किया जाता है। सरकारी सेवाओं में उच्च स्तरीय वैज्ञानिक तकनीकी एवं विशिष्ट पदों की नियुक्ति में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है तथा विश्व विद्यालयों में अध्यापकों की भर्ती भी इसी विधि से की जाती है।
3. **शारीरिक जांच परीक्षण-** लोक सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि वह शारीरिक तौर पर पूरी तरह स्वस्थ हो। साथ ही सेवा प्रारंभ करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति इस संबंध में एक प्रमाण पत्र भी देना पड़ता है। शारीरिक योग्यता का यह प्रमाण पत्र पुलिस, सशस्त्र बलों तथा अन्य क्षेत्रीय सेवाओं में अनिवार्य है।

4. **मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण-** उच्च स्तरीय पदों पर भर्ती हेतु अभ्यर्थियों की बुद्धि, मानसिक योग्यता इत्यादि की जांच के लिए मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण आवश्यक समझा जाता है। इस जांच को अपनाने से अभ्यर्थियों की क्षमता की जांच की जाती है तथा यह जांच अन्य जांचों की मात्र पूरक ही है। यह चयन करने के कोई पूर्ण और स्वतंत्र विधि नहीं है।

इस प्रकार सरकारी नौकरियों में उपयुक्त में योग्य अभ्यर्थियों को भर्ती के लिए इन सभी विधियों का उपयोग किया जाता है। सिविल सेवा में सर्वोत्तम और योग्य व्यक्तियों को पाना ही इन सब का चरम उद्देश्य है। कार्मिक चयन में वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता लाने के लिये लोक सेवा के बाहर के अभिकरण आवश्यक समझे गए और इस प्रकार स्वतंत्र लोक सेवा आयोग का जन्म हुआ। सर्वप्रथम ब्रिटेन में 1855 में लोकसेवा आयोग (3 सदस्यीय) गठित हुआ था, जो 1968 से लोकसेवा विभाग (फुल्टन सिफारिश) का अंग बनकर कार्य कर रहा है, तथा इसमें अब 6 सदस्य हैं। अमेरिका में 1871-1872 में लोकसेवा आयोग गठित हुआ, लेकिन 1883 के पेण्डलटन अधिनियम द्वारा स्थापित होकर 01 जनवरी 1979 तक कार्यशील रहा। 1979 से उसका स्थान विभिन्न पृथक संस्थाओं ने ले लिया है। भारत में संघ, राज्य और राज्यों के संयुक्त लोकसेवा आयोग के प्रावधान अनुच्छेद- 315 में किये गये हैं। साथ ही अधीनस्थ पदों पर भर्ती हेतु केन्द्र में स्टाफ चयन बोर्ड कार्यरत है। इसके अलावा रेलवे बोर्ड और बैंकिंग भर्ती बोर्ड हैं जो क्रमशः रेलवे और बैंक में भर्ती करते हैं।

### 11.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें

भर्ती कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। भर्ती की नीति यदि अच्छी नहीं है तो सक्षम और अयोग्य लोग लोक सेवाओं में चले आते हैं और शासन व्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि भर्ती की नीति सुनियोजित और निष्पक्ष हो। भर्ती की नीति में गतिशीलता, लोचशीलता, ईमानदारी, विशेषज्ञता आधारित होना चाहिए। श्रेष्ठ भर्ती निधि की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

1. भर्ती की नीति सकारात्मक होनी चाहिए और इसकी योजना सरकारी सेवाओं में सर्वोत्तम, अत्यधिक कार्यसक्षम और योग्य लोगों को आकर्षित करने के लिए होनी चाहिए।
2. भर्ती की नीति प्रजातांत्रिक होनी चाहिए और जिससे अत्यधिक योग्य लोगों को अवसर प्रदान होने चाहिए तथा सरकारी सेवाओं में रिक्त स्थानों के बारे में आपूर्ति करने वाले सभी स्रोतों द्वारा सूचित होना चाहिए।
3. भर्ती की नीति आकर्षक होनी चाहिए तथा सरकारी सेवाओं के लिए अस्थाई रूप से से अच्छी रोजगार क्षेत्र का निर्माण करना चाहिए। सभी प्रतिभाशाली लोगों को सरकारी सेवाओं में लाने के लिए आकर्षक साहित्य प्रचार तकनीक का प्रयोग करना चाहिए तथा यह निरंतर चलता रहना चाहिए।
4. भर्ती विधि निष्पक्ष और अराजनीतिक होनी चाहिए। भर्ती लोक सेवा आयोग जैसे एक स्वतंत्र निष्पक्ष और राजनीतिक संस्था के द्वारा ही होनी चाहिए। सिविल सेवा अधिकारी की भर्ती में सरकार या राजनेताओं का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
5. भर्ती अर्हता सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए तथा अर्हता एवं योग्यता की जांच के पश्चात केवल योग्य, गुणवान एवं प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को ही भर्ती किया जाना चाहिए।
6. भर्ती करने वाली संस्थाओं को अर्हता जांच की आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाना चाहिए और समय-समय पर इन पद्धतियों का पुनरावलोकन भी आवश्यक है ताकि नए आधुनिक पद्धतियों को अपनाया जा सके।
7. भर्ती नीति में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भर्ती पद्धतियों का सुंदर मिश्रण होना चाहिए अर्थात् पहले से कार्यरत और प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को प्रोन्नति दिया जाना चाहिए और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त भी किया

जाना चाहिए। वहीं दूसरी ओर प्रतिभा संपन्न नवयुवकों को भर्ती कर सर्वोत्तम सफलता और सुंदर भर्ती नीति हेतु दोनों पद्धतियों को संयुक्त किया जाना चाहिए।

8. भर्ती नीति नवीन रीतियुक्त होना चाहिए। नवीनतम परिवर्तनों तथा सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक बदलाव को समाहित करते हुए नीतियों का निर्माण आवश्यक है।
9. उचित व्यक्ति का उचित पद पर पदस्थापन भर्ती का एक महत्वपूर्ण आयाम है। चयन प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात अभ्यर्थियों को इस प्रकार से पदस्थापित किया जाना चाहिए जिससे कि उचित व्यक्ति को उचित सेवा में पदस्थापन हो सके।

### 11.9 भारत में भर्ती की पद्धति

भारत में ब्रिटिश प्रतिमान पर आधारित योग्यता पद्धति भर्ती में अपनाई गई है। अभ्यर्थियों की सामान्य योग्यता तथा बुद्धि परीक्षण खुली प्रतियोगिता के अंतर्गत अर्हता पद्धति पर आधारित है। भारतीय संविधान के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में भर्ती का अधिकार संघ लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है परंतु अंतिम भर्ती राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्य सेवाओं के लिए भर्ती का कार्य राज्य लोक सेवा आयोग करता है और नियुक्ति पत्र राज्यपाल के नाम से निर्गत किया जाता है। अखिल भारतीय सेवाओं तथा उच्च केंद्रीय सेवाओं के लिए संघ लोक सेवा आयोग संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित करता है। भर्ती के लिए लिखित और मौखिक परीक्षाओं का एक सुव्यवस्थित आयोजन संघ लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाता है जिसमें उच्च स्तरीय पदों के लिए स्नातक को ही प्रतियोगिता में बैठने सम्मिलित होने का अधिकार मिलती है। भारतीय प्रणाली पर ब्रिटिश प्रणाली का छाप है और प्रशासकीय सेवा में प्रवेश पाने के लिए भारत में अनिवार्य न्यूनतम अर्हता कला, विज्ञान, तकनीकी प्रबंधन या चिकित्सा विषयों में विश्व विद्यालय की उपाधि होती है। लिपिकीय सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए न्यूनतम अर्हता 2010 से 12वीं या उसके समकक्ष निर्धारित की गई है।

संघ लोक सेवा आयोग विविध चरणों में अर्हता परीक्षा संपन्न करता है। सिविल सेवा प्रतियोगी परीक्षा की 1978 तक प्रचलित प्रणाली में समस्त अभ्यर्थी एक संयुक्त परीक्षा में बैठते थे और छटनी की कोई व्यवस्था इन सेवाओं हेतु नहीं थी। अनंतर डॉ. दौलत सिंह कोठारी समिति की अनुशंसाओं के आधार पर भर्ती की नई प्रणाली 1979 से प्रारंभ की गई। इस नई प्रणाली के अंतर्गत सिविल सेवा परीक्षा दो चरणों में संपन्न करने का प्रावधान था- प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा और सिविल सेवा प्रधान परीक्षा।

प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा में वस्तुपरक प्रकार के दो प्रश्न पत्र होते थे- सामान्य अध्ययन का प्रथम प्रश्न पत्र 150 अंक तथा ऐच्छिक विषयों में से चुना गया एक प्रश्न पत्र 300 अंको का होता था। इस प्रकार कुल मिलाकर 450 अंकों में से केवल यही उम्मीदवार प्रारंभिक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर लेते थे। उक्त वर्ष की मुख्य परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होते थे। मुख्य परीक्षा में लिखित परीक्षा व साक्षात्कार प्रश्न होता था। लिखित परीक्षा में परंपरागत निबंधात्मक शैली की प्रश्न होते थे। उम्मीदवारों को मुख्य परीक्षा लिखित एवं साक्षात्कार में प्राप्त किए गए आधार पर अंतिम योग्यता निर्धारित किया जाता था।

1988 में सतीश चंद्र की अध्यक्षता में एक अन्य समिति नियुक्त की गई जिसमें प्रतियोगी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में कुछ विषयों को सम्मिलित करने की सिफारिश की। मुख्य परीक्षा में निबंध का प्रश्न पत्र सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई और व्यक्तित्व परीक्षा के अंक 250 से बढ़ाकर 300 कर दिए गए और यह प्रावधान 1993 की परीक्षाओं से प्रारंभ कर दिया गया। सिविल सेवा परीक्षा की समीक्षा हेतु संघ लोक सेवा आयोग ने 19 जुलाई 2000 को एक समिति योगेंद्र कुमार अलघ के नेतृत्व में गठित की जिसने अपनी रिपोर्ट 22 अक्टूबर 2000 को आयोग के अध्यक्ष को सौंपी थी। समिति के अनुसार अभ्यर्थियों की योग्यता, ज्ञान, कौशल, समाज और मूल्यों को

बढ़ावा देने के लिए सही पद्धति लागू की करने की सलाह दी गई। 2004 में पी. सी. होता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने सिविल सेवाओं में सुधार की अनुशंसा की।

सिविल सेवा परीक्षा प्रारंभिक प्रणालियों पाठ्यक्रम का नया स्वरूप 18 अक्टूबर 2010 को भारत सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग की सलाह पर जारी किया गया था, जिसके अनुसार वर्ष 2011 से केवल प्रारंभिक परीक्षा के स्तर में बदलाव किया गया। मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार के अवसर पर नया विस्तृत बदलाव 2013 में लागू किया गया था। द्वितीय प्रशासनिक आयोग द्वारा भी भर्ती की प्रणाली की समीक्षा की गई थी। नवीन परीक्षा की रूपरेखा के अनुसार प्रधान परीक्षा के चयन हेतु सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा आयोजित की जाती है जो वस्तुपरक होती है। अब इस परीक्षा में दो अनिवार्य पत्र होते हैं जिसमें एक प्रश्न पत्र 200 अंकों का होता है और दोनों प्रश्न पत्रों का सारांश एक समान होता है। यह बदलाव 15 मई 2011 को आयोजित परीक्षा से लागू किया गया था किंतु 2015 से इन प्रश्न पत्रों के प्रणाली में बदलाव किया गया। प्रधान परीक्षा हेतु अभ्यर्थी एक वैकल्पिक विषय का चयन कर सकता है। प्रश्न पत्र हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार किए जाते हैं और उत्तर दोनों में से किसी एक भाषा में लिखा जा सकता है। मुख्य परीक्षा में सफल अभ्यर्थियों का साक्षात्कार एक बोर्ड द्वारा किया जाता है जो न केवल बौद्धिक गुणों को अपितु उसके सामाजिक लक्षणों और सामाजिक घटनाओं में उसकी रुचि का भी मूल्यांकन करता है। इसमें उम्मीदवार की मानसिक सतर्कता, आलोचनात्मक ग्रहण शक्ति, स्पष्ट और तर्कसंगत प्रतिपादन की शक्ति, संतुलित निर्णय की शक्ति, चिंतन की विविधता और नेतृत्व और सामाजिक संगठन की योग्यता, बौद्धिक और नैतिक ईमानदारी की भी जांच करती है। अंतिम परीक्षा परिणाम लिखित और मौखिक परीक्षा के प्राप्त अंकों के आधार पर घोषित किया जाता है। पदों की विवरण नियुक्ति और अंतिम पदस्थापन हेतु अंतिम सूची केंद्रीय गृह मंत्रालय को प्रेषित की जाती है।

निम्न स्तरीय केंद्रीय सेवाओं तथा तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के चयन का कार्यभार कर्मचारी चयन आयोग को सौंपा गया है जो विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा इनका चयन करता है। राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग का गठन किया गया है, जो उच्च स्तरीय राज्य सेवाओं की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग की चयन विधि का अनुसरण करते हैं। राज्य की निम्न स्तरीय सेवाओं के लिए बहुत से राज्यों में राज्य कर्मचारी चयन बोर्ड या क्षेत्रीय चयन बोर्ड या अधीनस्थ चयन बोर्ड का गठन किया गया है। भारत में रेलवे लेखा और अंकेक्षण विभाग, औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा सार्वजनिक संस्थाओं की अपनी अलग अलग भर्ती की व्यवस्था है। यह सब संघ लोक सेवा आयोग के अंतर्गत केंद्रीय भर्ती योजना से बाहर रखे गए हैं।

भारत में प्रचलित भर्ती पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं। इस प्रणाली में कल्पनाशीलता का अभाव प्रतिबिंबित होता है। एपेलबी के शब्दों में, ऐसा लगता है कि रिक्त पदों के विज्ञापन वकीलों ने लिखे हैं। भर्ती पद्धति पुरानी घिसी-पिटी पद्धति तथा रटंत विधा पर आधारित है तथा इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अभाव है। गोरेवाला ने साक्षात्कार के स्थान पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की वकालत की। साक्षात्कार पद्धति की भी आलोचना की जाती रही है, यह दोषपूर्ण प्रतीत होती है।

### 11.10 आरक्षण

भारत में कुछ विशेष समुदाय के लोग विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, निम्न स्तरीय जातीय, विभिन्न उप-जातियों सदियों से विविध सुविधाओं से दूर-दूर थी। शताब्दियों का बहिष्कार, गरीबी उत्पीड़न, दमन और सभी प्रकार का शोषण इन समुदायों पर इतिहास के पन्नों में दर्ज है। इतिहास ने इन्हें स्थाई असुविधा के गर्त में धकेल दिया था तथा आर्थिक शैक्षणिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी परिस्थिति में ही इन्हें रखा था। इसलिए उन लोगों के प्रति विशेष व्यवहार अतीत के पक्षपात के आधार पर और भविष्य में उन्नति के लिए न्याय संगत माना गया और इस प्रकार के विशेष व्यवहार से आशा की जाती है कि अवरुद्ध समानता और अतीत के दमन के प्रभावों

को न्यूनतम कर देगा। सरकारी सेवाओं व संस्थानों में पर्याप्त भागीदारी नहीं रखने वाले पिछड़े जाति, समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सरकार अपने कानून के तहत सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में आरक्षण देती है। भारत के संसद में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के लिए भी आरक्षण नीति को विस्तारित किया गया है। आम आबादी में उनकी संख्या के अनुपात के आधार पर उनके बहुत ही कम प्रतिनिधित्व को देखते हुए शैक्षणिक परिसरों और कार्यस्थलों में सामाजिक विविधता को बढ़ाने के लिए कुछ समूहों के लिए प्रवेश मानदंड को नीचे किया गया है। कम प्रतिनिधित्व समूहों की पहचान के लिए सबसे पुराना मानदंड जाति है।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान ने पहले के कुछ समूहों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध किया। संविधान निर्माताओं का मानना था कि जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति ऐतिहासिक रूप से पिछड़े रहे और उन्हें भारतीय समाज में सम्मान तथा समान अवसर नहीं दिया गया और इसीलिए राष्ट्र-निर्माण की गतिविधियों में उनकी हिस्सेदारी कम रही। संविधान निर्माताओं ने बड़ी ही सूझबूझ एवं अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही सभी नागरिकों को सामान आधिकार देने की बात कही है, चाहे वह सामाजिक आधार हो, राजनीतिक आधार हो या फिर आर्थिक आधार। इसके आधार पर संविधान के सोलहवें अध्याय के अनुच्छेद 330 से 335 के तहत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा और विधानसभा में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद-335 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए केंद्र और राज्य सरकारों की नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। राजनीति और प्रशासन में आरक्षण का प्रावधान किया गया ताकि इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में पुनः जोड़ सके। जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान देश की सांस्कृतिक सहिष्णुता और सभी वर्गों के नागरिकों को सामान रूप से प्रशासन और सत्ता में भागीदारी के अवसर प्रदान करने की राष्ट्रीय नीति का परिचायक है।

### 11.11 संवैधानिक सुरक्षा

संविधान सरकारी नौकरियों में सभी को समान अवसर प्रदान करता है। साथ ही संविधान का अनुच्छेद-16 (4) यह प्रावधान करता है कि किसी भी पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए सरकार नौकरियों में स्थान या पद आरक्षित कर सकती है। इसके साथ ही संविधान का अनुच्छेद- 355 सरकार को यह अधिकार देता है कि समाज के पिछड़े और दलित वर्ग के लोगों को विशेष सुविधा प्रदान कर सकती है। हालांकि संविधान में पिछड़े वर्ग की परिभाषा नहीं दी गई है, संविधान में पिछड़े समुदायों के लिए नौकरी में आरक्षण की कोई निश्चित सीमा नहीं है। लोक सेवाओं से आरंभ होकर विधायक प्रतिनिधि संस्थाओं में सैनिक संस्था में प्रवेश हेतु प्राथमिकता से पेशेवर के आर्थिक उन्नति के लिए प्रेरणा स्रोत विभिन्न सुधारक कार्यवाही में सही में स्थान का आरक्षण उपलब्ध है। इस प्रकार आरक्षण तीन क्षेत्रों में होता है- विधायी, शैक्षणिक संस्थाओं और सरकारी सेवा में। प्रथम क्षेत्र में आरक्षण का प्रावधान संविधान में स्वयं किया गया है, जबकि द्वितीय संसद द्वारा बनाए गए हैं और तृतीय आरक्षण नौकरियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की प्रतिष्ठा से संबंधी कार्यवाही संस्था द्वारा प्रदान किया गया। आरंभ में आरक्षण और विशेष सुविधाएं केवल 10 वर्षों के लिए प्रदान की गई थी जिसे क्रम से बढ़ाया जा रहा है।

संविधान के भाग तीन में समानता के अधिकार की भावना निहित है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद- 15 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति, प्रजाति, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद- 15(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है तो वह सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। अनुच्छेद- 16 में अवसरों की समानता की बात कही गई है। अनुच्छेद- 16(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है कि सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों को

पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उनके लिए पदों को आरक्षित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार अधिकतम आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत है लेकिन कुछ राज्यों में यह सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा है। आरक्षित वर्ग के व्यक्तियों को भारत सरकार के नौकरी एवं शिक्षण संस्थाओं में 49.5 प्रतिशत तक का आरक्षण प्राप्त है। वर्तमान में केंद्र सरकार का आरक्षण प्रणाली इस प्रकार है - अनुसूचित जाति- 22.5 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति- 15 प्रतिशत, पिछड़ा वर्ग- 27 प्रतिशत। राज्यों में प्रतिनिधित्व अनुपात अलग-अलग हैं, इनके निर्धारण का आधार संबंधित राज्य की जनसंख्या है।

### 11.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण

भारत में जाति और समुदाय के आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण काफी समय से प्रचलित प्रणाली है। विशेष रूप से गैर ब्राह्मण समुदाय और जातियों के द्वारा सभी सरकारी सेवा में सभी जातियों की पर्याप्त एवं उचित प्रतिनिधित्व के लिए कई बार आंदोलन और प्रदर्शन भी किए गए हैं। 1919 में मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार में गैर-ब्राह्मण वर्ग के लोगों के लिए सरकारी सेवाओं में कुछ निश्चित और विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया था। लोक सेवाओं में असंतुलित प्रतिनिधित्व को हटाने की मांग को लेकर यह असुविधा प्राप्त वर्ग के लोगों को आगे बढ़ाने का प्रयास था। 1925 में भारत सरकार ने सरकारी सेवाओं में अल्पसंख्यक समुदाय के लिए कुछ प्रतिशत पद आरक्षित करने का कार्य आरंभ किया था। 1934 में यह आदेश भी जारी किया गया था कि सभी रिक्त पदों में 25 प्रतिशत स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित होगा, जिन्हें प्रत्यक्ष नियोजन कैसे भरा जाएगा तथा 8.5 प्रतिशत स्थान अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिए आरक्षित होगा। 1943 में सरकार ने रिक्त पदों में से 8.5 प्रतिशत पद अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कर दिया तथा 1946 में इसे 12.5 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया, किंतु अनुसूचित जनजातियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी प्रकार का कोई प्रश्न ही आरक्षण नहीं दिया गया और जनजातियों को नौकरी में आरक्षण को आरक्षण की मांग को स्वतंत्रा के पश्चात सरकार द्वारा स्वीकार किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत इन तथ्यों को समाहित किया तथा संपूर्ण आरक्षण नीति का पुनरावलोकन भी किया। अनुसूचित जाति के समुदाय के छोड़कर शेष अन्य वर्गों के लिए खुली प्रतियोगिताओं में आरक्षण व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अनंतर 1951 में संविधान संशोधन कर अनुच्छेद- 15(4) में यह प्रावधान किया गया कि जिन सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व इन वर्गों का नहीं है, ऐसे सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रबंध किया जाए। भारत सरकार की तरह राज्य सरकारों ने भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया है। आरक्षण नीति को लागू करने के लिए नियम और विनियम बनाए गए हैं और अनुसूचित जातियों के लिए 12.25 प्रतिशत स्थान आरक्षित थी जिसे 1970 में बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। वर्तमान समय में 15 प्रतिशत नौकरियां अनुसूचित जाति एवं 7.5 प्रतिशत नौकरी अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किया गया। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 वर्षों के लिए आरक्षण दिया गया था जिसे लगातार बढ़ाया जा रहा है। 1953 में गठित काका कालेलकर आयोग का मुख्य काम सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन था। पिछड़ी जाति शब्द का जन्म भी इसी कमेटी से हुआ था, परंतु पिछड़ी जाति से संबंधित सिफारिशों को सरकार ने अस्वीकार किया था। लेकिन अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति से संबंधित सभी सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया। अनंतर 1979 में सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति के मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग का गठन हुआ था, परंतु काफी लंबे समय तक इसकी सिफारिशें ठंडे बस्ते में पड़ी रहीं। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने सरकारी नौकरियों में लागू किया था। वर्ष 2006 से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरू हुआ और कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत तक चला गया। 1992 में सुप्रीम कोर्ट ने साफ-साफ कहा गया था कि

आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। भारत के कुछ राज्यों को छोड़कर (जैसे- तमिलनाडु) बाकी सभी राज्यों में 50 सीमा लागू है।

भारत में आरक्षण की शुरुआत सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को समृद्ध बनाने के लिए हुई थी लेकिन समय के साथ आरक्षण वोट बैंक की राजनीति का शिकार बनती चली गई। वर्तमान समय में हर राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के लिए आरक्षण शब्द का उपयोग कर रहे हैं, जिसके कारण आरक्षण का मूल उद्देश्य समाप्त होता जा रहा है।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम किस देश ने अनुभव किया था?
2. आधुनिक समय में कौन सा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया?
3. भारत में योग्यता का सिद्धांत कब प्रारंभ हुआ?
4. इनामी पद्धति किस देश में प्रचलित थी?
5. काका कालेलकर आयोग कब गठित किया गया था?

#### 11.13 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की भर्ती एवं चयन कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया है, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों की भर्ती प्रणाली निष्पक्ष एवं पारदर्शी होनी चाहिए। प्रशासकीय संरचना में भर्ती की प्रक्रिया संपूर्ण प्रशासन तंत्र की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। लोक प्रशासन में भर्ती देश की संवैधानिक आवश्यकता और राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुकूल होना आवश्यक है जबकि निजी प्रशासन के समक्ष ऐसी कोई सीमा नहीं होती। संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों को पर्याप्त संख्या में आपूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य संपादित कर सकें। कर्मचारियों की इस आपूर्ति के कार्य को भारतीय चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। कार्मिक प्रशासन में भर्ती पहला और सबसे महत्वपूर्ण चरण है। यदि भर्ती पद्धति दोषपूर्ण है तो अयोग्य और असक्षम एवं अयोग्य लोग लोक सेवाओं में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे प्रशासन का पतन हो जाता है।

#### 11.14 शब्दावली

मानदंड- नियम या आधार, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, विचारधारा- विचारों का समूह जो निहित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आधार होता है, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, आंदोलन- असंतोष की अभिव्यक्ति का माध्यम, उपबंध- प्रावधान

#### 11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. चीन, 2. प्रशा, 3. 1853 से, 4. अमेरिका में, 5. 1953 में

#### 11.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
2. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

- 
4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
- 

### 11.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

---

1. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
  2. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
  3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- 

### 11.18 निबंधात्मक प्रश्न

---

1. भर्ती के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. भर्ती के उद्देश्य एवं इसके प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. भर्ती की अर्हता पद्धतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. अर्हता निर्धारण की विधियों का मूल्यांकन कीजिए।
5. श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें क्या हैं? विश्लेषण कीजिए।
6. भारत में भर्ती की पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
7. आरक्षण क्या है? लोक सेवाओं में पदों के आरक्षण का मूल्यांकन कीजिए।

## इकाई- 12 पदोन्नति

### इकाई की संरचना

- 12.0 प्रस्तावना
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 पदोन्नति का अर्थ
- 12.3 पदोन्नति का महत्व
- 12.4 पदोन्नति के प्रकार
- 12.5 पदोन्नति के सिद्धांत
- 12.6 पदोन्नति के लिए अर्हता- जांच पद्धतियाँ
- 12.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें
- 12.8 भारत में पदोन्नति पद्धति
- 12.9 सारांश
- 12.10 शब्दावली
- 12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.14 निबंधात्मक प्रश्न

### 12.0 प्रस्तावना

पदोन्नति आधुनिक कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण आयाम है। लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति में निहित है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। इसीलिए पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' शब्द का भी प्रयोग किया जाता रहा है। लोक सेवक और कार्मिक प्रशासन पदोन्नति व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं। पदोन्नति के फलस्वरूप लोक सेवा के कार्य और दायित्व बढ़ते हैं तथा कार्मिक प्रशासन को उपयुक्त पद हेतु उपयुक्त कार्मिक मिल जाता है। विलोबी ने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है। इसका कारण यह है कि पदोन्नति कार्य के सफल और संतोषजनक क्रियान्वयन के द्वारा ही संपूर्ण कार्मिक व्यवस्था की सफलता निर्धारित की जाती है। किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों की कार्यकुशलता उनकी संतुष्टि तथा मनोबल के स्तर से भी प्रभावित होती है। पदोन्नति पद, स्तर, सम्मान में वृद्धि करने तथा योग्यता के आधार पर आगे बढ़ने से सम्बद्ध है। यह सरकारी कर्मचारी को श्रम एवं निष्ठा से कार्य करने के लिए एक पुरस्कार के रूप में दी जाती है। कार्य कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा अधिकारी की प्राप्ति तथा कर्मचारियों के जीवन में प्रगति और विकास करने की स्वभाविक मानवीय अभिलाषा को पदोन्नति पूर्ण करती है। वहीं दूसरी ओर सरकार के लिए पदोन्नति अप्रत्यक्ष भर्ती की एक पद्धति है जिसके माध्यम से सेवारत लोगों में से योग्य और प्रतिभाशाली लोगों के चयन के द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को पदोन्नति के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है। साथ ही पदोन्नति सिद्धांत जैसे अर्हता का सिद्धांत बनाम वरिष्ठता सिद्धांत, पदोन्नति के प्रकार एवं विधियों, अतीत में अपनाई गई तथा वर्तमान में प्रचलित पदोन्नति पद्धति की व्याख्या भी करेंगे। साथ ही इसमें

लोक सेवकों के पदोन्नति की अवधारणा, पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी चर्चा होगी।

## 12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पदोन्नति के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही पदोन्नति के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में पदोन्नति की प्रणाली को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

## 12.2 पदोन्नति का अर्थ

लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' का भी प्रयोग किया जाता रहा है। पदोन्नति का अर्थ है- दायित्वों एवं वेतनमान में वृद्धि होना। पदोन्नति का सम्बन्ध प्रत्येक वर्ष होने वाला वार्षिक वेतन वृद्धि से नहीं है वरन् इसका अर्थ कर्मचारी की पद सम्बन्धी प्रस्थिति में वृद्धि से भी है।

पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रमोट (promote) का पर्यायवाची है, जबकि आंग्ल भाषा शब्द प्रमोट लैटिन भाषा के शब्द प्रिमोवीर (promovere) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ पद और स्तर में वृद्धि से है। पदोन्नति को विभिन्न विद्वानों ने निम्न शब्दों में परिभाषित किया है- विलियम जी. टॉरपे के अनुसार, "पदोन्नति पदाधिकारी के एक पद से दूसरे पद पर पहुँचने की ओर संकेत करती है जो उच्चतर श्रेणी या उच्चतर न्यूनतम वेतन वाला होता है। पदोन्नति का अर्थ कर्मचारी के कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों में वृद्धि करना है।"

विलोबी के शब्दों में, "वेतन वृद्धि का अर्थ केवल यह है कि कर्मचारी के वर्तमान पद अथवा उसके कार्य की प्रकृति में कोई परिवर्तन किये बिना उसके वेतन में वृद्धि कर दी गयी है। पदोन्नति का अर्थ है कि कर्मचारी को निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर नियुक्त कर दिया गया है।"

एल. डी. ह्वाइट के शब्दों में, "पदोन्नति का अर्थ है- किसी एक पद से दूसरे पद पर नियुक्ति ऐसा पद जो कि उच्चतर श्रेणी का है तथा जिसमें जटिलतर प्रकृति एवं अधिक बड़े उत्तरदायित्व का कार्य करना पड़ता है। इसमें पदनाम परिवर्तन व वेतन वृद्धि शामिल हैं।"

पॉल पिगर्स एवं चार्ल्स ए. मेयर्स के अनुसार, "पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक निपुणताओं तथा विशेष रूप से बढ़ी हुई आय अथवा वेतन दर से प्रदान करना है।"

फिलिप्पो के अनुसार, "पदोन्नति किसी में एक कार्य से दूसरे कार्य पर परिवर्तन शामिल है जो ऐसे बेहतर स्तर एवं उत्तरदायित्व प्रदान करता है।"

स्कॉट एवं स्पीगल के अनुसार, "पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानांतरण है जो पहले से अधिक धन अथवा ऊंचा स्तर प्रदान करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पदोन्नति में निम्नलिखित तीन तत्त्व सम्मिलित हैं- बेहतर कार्य एवं स्तर, अधिक उत्तरदायित्व तथा अधिक वेतन। स्पष्ट होता है कि पदोन्नति द्वारा विभाग के अन्दर ही एक उच्चतर पद पर पदस्थापना होती है। पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित

गतिविधि है। यह कर्मचारी को उच्च पद की जिम्मेदारी सौंपे जाने की प्रक्रिया है। उच्च पद रिक्त होने पर विभाग के निम्न स्तरीय कर्मचारियों में से उसकी पूर्ति की जाती है। इस उच्च पदस्थिति में उत्तरदायित्वों व कार्यों में वृद्धि हो जाती है तथा उसके अनुसार ही वेतन वृद्धि भी होती है। शासन के लिए पदोन्नति प्रत्यक्ष पद्धति है, अर्थात् पूर्व से सेवारत लोगों में से योग्य एवं प्रतिभावान लोगों के चयन द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरना है। वही सरकारी कर्मचारियों के लिए पदोन्नति निम्न स्तरीय पद, वर्ग या सेवा से उच्च कार्य, अधिकार एवं उत्तरदायित्व सहित उच्च स्तरीय पद वर्ग या सेवा में एक तरक्की है। इसका अर्थ कर्मचारियों के लिए पद, प्रतिष्ठा तथा वेतन में वृद्धि से भी है। समान पद या उत्तरदायित्व वाली सेवा में एक पद से दूसरे पद पर स्थानांतरण को पदोन्नति नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार वेतन में वार्षिक वृद्धि भी पदोन्नति नहीं है। पदोन्नति का अर्थ पद और वेतनमान दोनों में परिवर्तन से है।

अतः पदोन्नति एक कर्मचारी की उच्च स्तर पर प्रगति है, जहाँ पर उसके कौशल ज्ञान एवं सेवाओं का बेहतर उपयोग किया जा सकेगा। किन्तु सभी पदोन्नतियों में से सभी गुण नहीं पाए जाते। कई बार पदोन्नति में उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत व अधिक जिम्मेदारी तो मिलती है पर वेतन में वृद्धि नहीं। ऐसी पदोन्नति को 'शुष्क पदोन्नति' कहा जाता है। इसी प्रकार, कभी-कभी कर्मचारी की वेतन वृद्धि तो कर दी जाती है परन्तु उच्च पद, बेहतर प्रतिष्ठा व जिम्मेदारी नहीं मिलती, इसे उच्चीकरण कहा जाता है। अतः पदोन्नति कर्मचारी की कार्यकुशलता एवं संगठन के प्रति वफादारी का पुरस्कार है। यह कर्मचारी की ऐसे पद पर प्रगति है जहाँ पर उसके ज्ञान कौशल एवं सेवाओं का बेहतर प्रयोग हो सकेगा।

पदोन्नति की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि इसके निम्नलिखित महत्व पूर्ण तत्त्व हैं-

- प्रगति- पदोन्नति में संगठनात्मक ढांचे को उच्च स्तर के पद पर पहुँचना शामिल है। यह एक कर्मचारी के निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर पहुँचने की प्रक्रिया है। इससे कर्मचारी के स्तर में वृद्धि होती है।
- अधिक वेतन- प्रमोशन का एक अन्य महत्व पूर्ण तत्त्व, कर्मचारी को अधिक आय अथवा वेतन में लाभ है। परन्तु कभी-कभी कर्मचारी को उच्च पद एवं जिम्मेदारी तो सौंप दी जाती है पर वेतन वृद्धि नहीं की जाती है। इससे 'शुष्क पदोन्नति' कहा जायेगा। इसी प्रकार अपग्रेडेशन में कर्मचारी के वेतन में वृद्धि कर दी जाती है, परन्तु उसे उच्च पद एवं जिम्मेदारी नहीं सौंपी जाती।
- बेहतर जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद- पदोन्नति से कर्मचारी की जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद में वृद्धि होती है। यह एक ऐसा पद है जिसके साथ बेहतर प्रतिष्ठा एवं उच्च जिम्मेदारी जुड़े होते हैं।
- पदोन्नति के अन्य तत्त्वों में बेहतर सुविधाएँ, अच्छी कार्य दशाएँ, उच्च पद की चुनौतियाँ, कौशल, ज्ञान व गुणों के बेहतर उपयोग के अवसर एवं कर्मचारी का विकास शामिल है।

राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए पदोन्नति अत्यावश्यक है। आज पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। पदोन्नति की विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति में पद का नाम परिवर्तित हो जाता है। पदोन्नति से प्राप्त पद अधिक श्रेष्ठ, सम्मानजनक और चुनौतीपूर्ण होता है।
- यह निम्न पद से उच्च पद पर पहुँचने की प्रक्रिया है।

- पदोन्नति से कार्मिक का वेतन भी बढ़ जाता है। यह मात्र वेतन वृद्धि नहीं है अपितु इसका पहला तत्व ऊंचे पद की प्राप्ति है और वेतनवृद्धि इसका परिणाम है।
- पदोन्नति प्रतिष्ठा तथा सम्मान का सूचक है। पदोन्नति में कार्मिक के दायित्व उच्च तथा अधिक हो जाते हैं।
- यह संगठन की आंतरिक प्रक्रिया है। अर्थात् संगठन में पहले से कार्यरत कार्मिकों में से ही पदोन्नति होती है।
- पदोन्नति का निर्णय स्वयं कार्मिक नहीं करता अपितु उच्चाधिकारी करते हैं, लेकिन पदोन्नति लेने या अस्वीकार करने का अधिकार संबंधित कार्मिक का होता है।

### 12.3 पदोन्नति का महत्व

पदोन्नति जीवन-वृत्ति सेवा का एक अनिवार्य अंग है। कार्मिक प्रशासन में सर्वोत्तम लोगों को भर्ती करना प्रथम एवं प्रमुख सोपान है। इसके साथ ही प्रतिभाशाली लोगों को सेवा में बनाए रखना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के अवसर से ही उत्तम योग्य एवं कार्य कुछ लोगों को सिविल सेवा में बनाए रखना संभव है। लोक सेवा के लिए चुने गए कर्मचारी एक लंबे समय तक सेवा में उन्नति एवं विकास करते हैं। पदोन्नति की विशेष योजना श्रेष्ठ एवं प्रतिभाशाली लोगों को इस सेवा में आने के लिए आकर्षित करती है। कार्यकुशलता, कठिन श्रम एवं निष्ठावान तथा परिश्रम से कार्य करने के लिए पदोन्नति एक संभावित पुरस्कार है। प्रत्येक मनुष्य जीवन में प्रगति और विकास चाहता है और दूसरों में अपनी पहचान बनाना चाहता है। विकास और पहचान की आधारभूत इच्छाओं की पूर्ति पदोन्नति के साधन द्वारा की जा सकती है। पदोन्नति की एक अच्छी पद्धति कर्मचारियों में अपनी सेवा के प्रति लगाव की भावना को बढ़ाती है तथा संगठन के नीतियों और कार्यक्रमों में निरंतरता बनाए रखने में योगदान देती है। सिविल सेवा में अच्छी प्रथा एवं परंपरा का निर्माण करने के लिए पदोन्नति अवसर भी प्रदान करती है। सरकारी सेवा के रिक्त पदों को बाह्य अभ्यर्थियों की प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा तथा पहले से सेवारत कर्मचारियों को पदोन्नत कर भरा जाता है। भर्ती की प्रत्यक्ष विधि को पदोन्नति पद्धति कहा जाता है। विश्व के लगभग सभी देशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियों को स्वीकार किया गया है।

पदोन्नति प्रक्रिया की उपयोगिता निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के कारण एक तरफ संगठन की जीवन्तता बनी रहती है तो दूसरी ओर कर्मचारियों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। सरकारी सेवा के कर्मचारियों के निष्ठा पूर्वक कार्य करने के लिए पदोन्नति एक पुरस्कार के रूप में प्रदान की जाती है। पदोन्नति के अभाव में कर्मचारी लाभ एवं अभिप्रेरण से वंचित हो जाता है। पदोन्नति प्रतिभाशाली युवाओं को सरकारी सेवा में अभिप्रेरित करने का एक सशक्त माध्यम है। कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा कर्मचारियों की प्राप्ति हेतु पदोन्नति एक आवश्यक तथ्य है। जीवन में प्रगति एवं विकास की स्वभाविक मानसिक लालसा पदोन्नति से ही पूर्ण होती है तथा पदोन्नति सरकारी कर्मचारियों की नैतिकता को भी प्रोत्साहित करती है। पदोन्नति के महत्व निम्न हैं-

1. सिविल सेवा में अच्छी प्रथा और परंपरा का निर्माण करने के लिए तथा सरकार की इस सद्भावना से जुड़ने में पदोन्नति पद्धति सहायक होती है।
2. यह अनुभवी कर्मचारियों को संगठन में बनाए रखती है।
3. सेवा में कर्मचारियों की निरंतरता, उनको उच्च से उच्चतर स्तर के उत्तरदायित्व निभाने की योग्य बनाती है तथा कार्यों द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव और क्षमता का सदुपयोग पदोन्नति देने के लिए किया जाता है।
4. उच्च स्तरीय सरकारी सेवा में पदोन्नति के पर्याप्त अवसर प्रशासन की कार्य कुशलता में वृद्धि करते हैं।

5. पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का अवसर प्रदान करती है और कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देता है।
6. पदोन्नति प्रत्येक कर्मचारी के लिए व्यापक प्रेरणा का स्रोत है। यह कर्मचारियों के लिए एक ऐसा वह आकर्षण है जो उस में आंतरिक उर्जा का संचार करता है। यह कार्मिकों को श्रेष्ठ कार्य करने को प्रोत्साहित करती है।
7. यह सेवाओं में कदाचार और भ्रष्टाचार को भी कम करने में सहायक होता है। ईमानदारी, निपुणता और निष्ठा का विस्तार भी पदोन्नति करती है।
8. इस व्यवस्था से कार्मिक-विकास को दिशा मिलती है। पदोन्नति की शृंखला उपलब्ध होने पर निम्न पदों पर भी योग्य कार्मिक आना पसन्द करते हैं। पदोन्नति के कारण कर्मचारी तथा संगठन में अपनत्व का रिश्ता कायम होता है।

पदोन्नति के कारण संगठन की प्रतिष्ठा तथा कार्यकुशलता बढ़ती है, क्योंकि जिन संगठनों में पदोन्नति के कम अवसर होते हैं, उनको योग्य एवं श्रेष्ठ कर्मचारी शीघ्र ही छोड़ देते हैं। वृत्तिका विकास एवं मनोबल वृद्धि में पदोन्नति का महत्व स्वयंसिद्ध है। पदोन्नति प्रक्रिया से कार्मिक एवं संगठन दोनों के लिए संगठन की जीवंतता बनी रहती है तो दूसरी ओर कर्मचारियों की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है। ए. डब्ल्यू. प्रॉक्टर के अनुसार पदोन्नति की कर्मचारियों के लिए पुरस्कार अथवा संभावित पुरस्कार के रूप में सीधी सार्थकता है। वास्तविक पदोन्नति एक पुरस्कार है, जबकि पदोन्नति का विषय एक संभावित पुरस्कार है जो भविष्य की वस्तु है, लेकिन वह अत्यंत महत्व का है। पदोन्नति कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है, जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

उच्च स्तरीय सरकारी सेवाओं में यदि पदोन्नति के पर्याप्त अवसर होंगे, तभी निम्न स्तरीय सेवाओं में भी प्रतिभाशाली लोग आने को तैयार होंगे तथा इससे प्रशासन में कार्यकुशलता की वृद्धि होगी। समय के साथ सरकारी सेवाओं में नवीनतम व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। सेवा में उनकी निरंतरता उच्च से उच्च स्तर दायित्व निभाने के योग्य बनाने में मददगार सिद्ध होती है। लोक सेवा में चयनित कर्मचारियों के द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव क्षमता का उपयोग उन्हें अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों पर कार्य करने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग पदोन्नति की पद्धति द्वारा ही संभव है। पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक बहुत ही आवश्यकताओं को पूर्ति करने का शुभ अवसर प्रदान करता है तथा कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देते हैं। पदोन्नति सेवाओं में कदाचार की घटनाओं को भी कम करने में सहायक होती है तथा शिकायत की संभावना भी संस्थानों में कम हो जाती है। सरकारी कार्यों को अत्यधिक ईमानदारी, निपुणता तथा निष्ठा से करने में पदोन्नति एक प्रेरक स्रोत के रूप में कार्य करती है वहीं दूसरी ओर पदोन्नति अनुशासन एवं नैतिकता को भी बढ़ावा देती है। संगठनों द्वारा कर्मचारियों को पदोन्नति की उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए की जाती है-

- कर्मचारियों को अधिक क्रियाशीलता हेतु अभिप्रेरित करना। कर्मचारियों में आत्म-विकास को बढ़ावा देना तथा उन्हें उनकी पदोन्नति के अवसरों की प्रतीक्षा करने हेतु तैयार करना।
- संगठन के उच्च स्तर के कार्यों के लिए आवश्यक ज्ञान एवं निपुणताओं की प्राप्ति हेतु कर्मचारी में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास करना तथा उत्साह का संचार करना।

- योग्य एवं सक्षम लोगों को संगठन के प्रति आकर्षित करना तथा उनकी सेवायें प्राप्त करना।
- संगठनात्मक पद सोपान में समुचित स्तरों पर कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं का उपयोग करना, जो कि संगठनात्मक प्रभावशीलता तथा कर्मचारी सन्तुष्टि में परिणत होता है।
- कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना को विकसित करना तथा उनके मनोबल को ऊंचा करना।
- अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण हेतु संगठन के प्रति बचनबद्ध एवं निष्ठावान कर्मचारियों को पुरस्कृत करना।
- श्रम संघों का संगठन के प्रति विश्वास सृजन का प्रयास करना।
- परिवर्तित वातावरण में उच्च स्तर के रिक्त पदों का उत्तरदायित्व ग्रहण करने हेतु तत्पर रहने के लिए कर्मचारियों के समक्ष आन्तरिक स्रोत का विकास करना आदि।

#### 12.4 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। पदोन्नति सामान्यतया तीन प्रकार की होती है-

1. **क्षैतिजीय पदोन्नति या श्रेणी आधारित-** एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति जैसे कनिष्ठ लिपिक की वरिष्ठ लिपिक के पद पर या तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में या इस प्रकार की पदोन्नति। इस प्रकार की पदोन्नति में उत्तरदायित्वों एवं आय में वृद्धि तथा पद नाम में परिवर्तन सम्मिलित होता है। परन्तु, पदोन्नति कर्मचारी कार्य वर्गीकरण के अन्तर्गत ही रहता है, अर्थात् इसमें मौलिक कार्य वर्गीकरण ज्यों का त्यों ही रहता है।
2. **लम्बवत् पदोन्नति या वर्ग आधारित-** इस प्रकार की पदोन्नति बढ़े हुए उत्तरदायित्वों, प्रतिष्ठा तथा आय के साथ-साथ कार्य की प्रकृति में परिवर्तन में परिणत होती है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति कार्य वर्गीकरण की सीमाओं के बाहर होती है तो वह लम्बवत् पदोन्नति कहलाती है। जैसे निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में पदोन्नति जैसे द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी या लिपिक से कार्यकारी वर्ग में पदोन्नति।
3. **सेवा आधारित-** निम्न स्तरीय सेवा से उच्चस्तरीय सेवा में पदोन्नति अर्थात् राज्य सेवा से अखिल भारतीय सेवा में पदोन्नति।

इसके साथ ही कभी-कभी पारिश्रमिक में वृद्धि के स्थान पर शुष्क पदोन्नति भी की जाती है। इसमें पद नाम भिन्न होता है, परन्तु उत्तरदायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। पदोन्नत कर्मचारी को एक अथवा दो वार्षिक वेतन वृद्धि दी जा सकती है।

#### 12.5 पदोन्नति के सिद्धांत

किसी भी सरकारी सेवा में पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण पदोन्नति के मानक सिद्धांतों की आवश्यकता होती है। पदोन्नति हेतु सीमित संख्या में पदों की उपलब्धता तथा नियमित अंतराल पर स्थान रिक्त न होने के कारण निम्न स्तरीय कर्मचारी को अत्यधिक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और सभी इच्छुक कर्मचारियों को पदोन्नति देना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। व्यवहारिक रूप से प्रशासन की संरचना एक पिरामिड के समान होती है जिसमें जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं पदों की संख्या घटती जाती है और अंत में पिरामिड एक बिंदु पर जाकर समाप्त हो जाती है। पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण आवश्यकता इस बात की महसूस की जाती है कि पदोन्नति पूर्ण परिभाषित और मान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर ही आधारित होना चाहिए।

संगठनों द्वारा अपनी प्रकृति, आकार तथा प्रबन्धन के अनुसार पदोन्नति के लिए विभिन्न आधार अपनाये जाते हैं। सामान्यतः पदोन्नति के दो सुस्थापित आधार- योग्यता तथा वरिष्ठता हैं। पदोन्नति के सिद्धांत जिन्हें एक विकल्प या संयुक्त रूप से अपनाया जाता है, वे हैं-

1. **वरिष्ठता सिद्धांत-** वरिष्ठता पर आधारित पदोन्नति एक परम्परागत एवं सरल प्रणाली है। इसे 'ज्येष्ठता का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इसमें लम्बी अवधि से कार्यरत व्यक्तियों को पदोन्नति प्रदान की जाती है। अन्य शब्दों में पहले भर्ती होने वाले व्यक्ति की पदोन्नति पहले होती है। वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की शुरुआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में ही हो चुकी थी। यह सिद्धान्त अनुभवी कार्मिक को पुरस्कार में विश्वास करता है। वरिष्ठता को पदोन्नति के आधार के रूप में मानने के पीछे यह तर्क है कि एक ही कार्य पर सेवा की अवधि तथा किसी कर्मचारी द्वारा संगठन के अन्तर्गत अर्जित ज्ञान की मात्रा एवं निपुणता के स्तर के बीच एक सकारात्मक सह-सम्बन्ध होता है। यह व्यवस्था इस प्रथा पर भी आधारित होती है कि जो संगठन में पहले आयेगा उसे ही समस्त हित-लाभों एवं विशेषाधिकारों में पहले अवसर दिये जाने चाहिये।

वरिष्ठता सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जिसका अर्थ किसी पद विशेष श्रेणी या वेतनमान में सेवा की अवधि से है। यह एक आसान प्रणाली है जो वस्तुनिष्ठ है। वरिष्ठता सिद्धांत पक्षपात एवं भाई-भतीजावाद के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ता, बल्कि यह उम्र और अनुभव को अधिक महत्व देता है। इस प्रकार यह समाज में स्थापित प्रथा परंपरा के अनुसार एक प्रवृत्ति है और प्रजातांत्रिक भी है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभाशाली नहीं हो सकता किंतु समय के साथ उसमें वरिष्ठ होने के लिए प्रतिबद्धता निहित होती है। यह पद्धति स्वचालित है। कर्मचारियों को पदोन्नति के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती है। इस पद्धति में आन्तरिक झगड़े समाप्त हो जाते हैं तथा राजनीतिक दवाब का भी कोई भय नहीं रहता है। अधिक आयु व अनुभव वाले व्यक्तियों के उच्च पदों पर आने से उनकी प्रतिष्ठा बनी रहती है। पदोन्नति निश्चित होने के कारण योग्य व्यक्ति इन सेवाओं की ओर आकर्षित होते हैं। पदोन्नति के इस आधार का श्रम संघों द्वारा प्रबल समर्थन किये जाने से यह विवादों को भी कम करने में सहायक होता है।

पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धांत सबसे पुराना और सरल तरीका है। फाइनेर के अनुसार यह सिद्धांत स्वभाविक है और यह कर्मचारियों की अनावश्यक और अनुचित गतिरोध को समाप्त कर देता है। इस प्रकार की पदोन्नति में निष्पक्षता, कार्मिक उपलब्धता, स्वचालन, मनोबल निर्माण, न्याय स्थापना, अहम टकराव से बचाव आदि लाभ या गुण हैं तो दूसरी ओर दोष भी बहुत हैं। वरिष्ठता सिद्धांत में ढेर सारी खामियां समय के साथ प्रतीत होती हैं। सेवा में जो वरिष्ठ हैं और जो पदोन्नति के लिए उपयुक्त हो यह आवश्यक नहीं है। सेवा की अवधि पदोन्नति हेतु उपयुक्तता का मापदंड नहीं है। पदोन्नति के लिए अनुभव और वरिष्ठता युक्ति मूलक मापदंड नहीं है। एक ही श्रेणी के सभी लोग पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। वरिष्ठता सिद्धांत यह सुनिश्चित नहीं करता कि अति उपयुक्त लोग ही उच्च स्तरीय पदों पर पदस्थापित किए जाएंगे। वरिष्ठता के कारण पदोन्नति मिलने से संगठन में योग्य कार्मिक बाहर जाना पसन्द करते हैं। बहुत से कर्मचारी कार्य में रुचि भी नहीं लेते हैं क्योंकि पदोन्नति तो नियत समय पर मिल ही जाती है। सरकारी कर्मचारियों के कार्य पर पूर्णरूपेण प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए और कुशल एवं दकियानूसी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति या इस सिद्धांत के अनुसार दी जा सकती हैं। अतः वरिष्ठता सिद्धांत विवेकपूर्ण और न्यायसंगत नहीं है। इसमें युवा और कर्मठ कर्मचारियों का कठिन परिश्रम कार्यकुशलता एवं नेतृत्व का गुण पुरस्कृत नहीं हो सकता है। दूसरी तरफ जहां कठिन परिश्रम करने वाले सजग और उद्यमी लोगों की संगठन में आवश्यकता है वही शारीरिक रूप से कमजोर वृद्ध और कम उद्यमी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति दे दी जाती है। ब्रिटेन के नौसेनाध्यक्ष फिशर ने एक बार कहा था,

‘ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट हो जाएगा, क्योंकि इसमें वरिष्ठता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है।’ वस्तुतः वरिष्ठता का सिद्धान्त प्रत्यक्षतः योग्यता का शमन करता है।

2. **योग्यता या अर्हता सिद्धान्त-** पदोन्नति का यह तरीका अपेक्षाकृत आधुनिक एवं वैज्ञानिक है। इसमें योग्यता का मूल्यांकन करने के बाद पदोन्नति की जाती है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों को कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। योग्यता का सिद्धान्त वरिष्ठता के सिद्धान्त का प्रतिस्पर्धी है और पदोन्नति के लिए इसके पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं वह लगभग अकाट्य हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि योग्यतम और दक्षता व्यक्ति पदोन्नति के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।

अर्हता सिद्धान्त या योग्यता सिद्धान्त के अनुसार पदोन्नति वरिष्ठतम को नहीं बल्कि योग्यतम व्यक्ति को दी जानी चाहिए अर्थात् पदोन्नति के निर्धारण में लोक सेवकों की व्यक्तिगत योग्यता, क्षमता, दक्षता और कार्यकुशलता को ही महत्व दिया जाना चाहिए। वर्तमान युग में नवीन प्रशासनिक व्यवस्था हेतु सक्षम और कठिन परिश्रम करने वालों की आवश्यकता है जिनके पास योग्यता और अर्हता है। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के पीछे यह तर्क है कि केवल योग्य और समर्थ लोग ही पदोन्नति के योग्य हैं और अक्षम लोगों को पीछे छोड़ा जाना चाहिए। प्रशासन में उच्च स्तरीय पदों पर केवल निपुण परिश्रमी और योग्य लोगों की आवश्यकता है। अर्हता सिद्धान्त पदोन्नति के लिए अति उपयुक्त लोगों का ही चयन करता है। योग्यता सिद्धान्त उद्यमी कठिन परिश्रम करने वाले एवं नेतृत्व के गुण रखने वाले कर्मचारियों एवं अधिकारियों को पुरस्कृत करता है और प्रशासन में कार्यकुशलता तथा प्रतियोगी उत्साह को भी बढ़ाता है। यह निम्न स्तरीय कर्मचारियों को अपने कार्य में अभिरुचि लेने तथा परिश्रम के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित भी करता है।

कर्मचारियों की योग्यता के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित विधियाँ काम में लायी जाती हैं: प्रतियोगी परीक्षाएँ, सेवा अभिलेख एवं विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय। प्रतियोगी परीक्षाएँ तीन प्रकार की होती हैं- खुली प्रतियोगिता परीक्षा, सीमित प्रतियोगिता परीक्षा तथा उत्तीर्णता परीक्षा।

सेवा अभिलेख के अंतर्गत कर्मचारियों की सेवा का एक विवरण रखा जाता है, जिसके आधार पर कर्मचारियों की कार्य सम्पन्न करने की क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही कर्मचारी की पदोन्नति में विभागाध्यक्ष का निर्णय सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। पदोन्नति की कोई भी प्रणाली क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि पदोन्नति द्वारा कर्मचारियों में सामान्य सन्तोष, कर्तव्य निष्ठता, सहयोग एवं उच्च मनोबल की भावना विकसित होती है।

लेकिन पदोन्नति के योग्यता सिद्धान्त को वास्तव में लागू करना थोड़ा कठिन पड़ता है। योग्यता या अर्हता एक जटिल अवधारणा है। यह व्यक्तित्व, चरित्र, बल, नेतृत्व की क्षमता, बौद्धिक योग्यता इत्यादि को समाहित किए हुए हैं और इसे मापना आसान नहीं है। पदोन्नति का यह सिद्धान्त वरिष्ठ एवं अनुभवी लोगों के अवसरों को समाप्त कर देता है या न्यून कर देता है और किसी भी प्रकार के अर्जित प्रशासनिक अनुभव और कौशल को पूर्णरूपेण उपेक्षित कर दिया जाता है। यह उन कर्मचारियों में असन्तोष एवं निराशा की भावना को उत्पन्न करती है, जो कि वरिष्ठ होते हैं तथा जिनकी पदोन्नति नहीं होती है। श्रम संघ, योग्यता के आधार पर पदोन्नति के समर्थक नहीं होते हैं, जिसके फलस्वरूप असन्तोष फैलता है तथा औद्योगिक सम्बन्ध भी बिगड़ते हैं।

वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धान्त का व्यवहारिक संयोजन, वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धान्त, दोनों सिद्धान्तों में कुछ खूबियाँ और कमियाँ भी हैं। वरिष्ठता एवं योग्यता, दोनों ही पदोन्नति के आधारों के सापेक्षिक गुण-दोषों का विवेचन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही आधार के अपने-अपने लाभ हैं तथा साथ ही उनमें दोष भी हैं। व्यवहार में, वरिष्ठता को ही आधार मानकर पदोन्नति की जाती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि योग्यता के महत्व को

स्वीकार ही न किया जाये। वास्तव में, दोनों ही आधारों के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना ही उचित होता है। यदि यह स्पष्ट है कि कोई वरिष्ठ कर्मचारी नये एवं उच्च पद के कार्य को सम्पन्न कर सकता है तो चाहे वह थोड़ा कम ही योग्य क्यों न हो, उसकी पदोन्नति की जानी चाहिये। परन्तु, यदि वह बिल्कुल ही अयोग्य है तो केवल वरिष्ठता के आधार पर उसकी पदोन्नति किये जाने से संगठन का हानि ही होगी। अतः इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय सम्बन्धित कर्मचारी, प्रबन्ध एवं सेवायोजक तीनों के हितों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। अतः प्रशासन में पदोन्नति हेतु वरिष्ठता एवं अर्हता दोनों सिद्धांतों का संयोजन किया जाता है। उपयुक्त और योग्य लोग तथा अनुभव दोनों को इसके अनुसार पदोन्नति का आधार बनाया जाता है। न्यूनतम योग्यता और क्षमता की जांच करते हुए उनमें से वरिष्ठ लोगों को पदोन्नति हेतु चयन में प्राथमिकता देकर पदोन्नति की जाती है। भारत सहित अनेक देशों में पदोन्नति के लिए अपनाई जाने वाली सामान्य पद्धति निम्नांकित गुणों को समाहित किए हुए हैं-

- उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति केवल अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है।
- मध्यमवर्गीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है तथा
- निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता सिद्धांत के आधार पर की जाती है लेकिन यहां भी अपवाद स्वरूप अर्हता सिद्धांत को नकारा नहीं जाता।

भारत में पदोन्नति जीवन वृत्ति सेवा का अनिवार्य अंग है। अर्हता सिद्धांत और वरिष्ठता सिद्धांत पदोन्नति के दो प्रमुख सिद्धांत हैं जिनके कुछ नकारात्मक तो कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं। अर्हता सिद्धांत को वरिष्ठता सिद्धांत के साथ संयुक्त कर पदोन्नति की एक नई विधि अपनाई गई है जो आज सर्वोत्तम विधि भी मानी जाती है। पदोन्नति प्रणाली में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर सिफारिशें प्रस्तुत की जाती रही हैं। छोटे वेतन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में 'निश्चित जीवन वृत्ति अभिवृद्धि' की सिफारिश की जिसमें सभी कर्मचारियों एवं अधिकारियों को वर्ष में तीन पदोन्नति मिलना अनिवार्य कर दिया गया।

## 12.6 पदोन्नति के लिए अर्हता जांच पद्धतियाँ

सरकारी सेवा में पदोन्नति के लिए अनुभव की अपेक्षा योग्यता या अर्हता को अधिक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। लेकिन अर्हता की जांच काफी कठिन कार्य है। युवा और अनुभवी वरिष्ठ कनिष्ठ जो एक ही संगठन में समान पदों पर काफी वर्षों से कार्यरत रहते हैं, उन सब को उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति पाने की अभिलाषा रहती है। लेकिन उच्च स्तरीय पदों में रिक्त स्थान काफी कम होते हैं और इस प्रकार प्रतिस्पर्धा काफी होती है। पदोन्नति हेतु योग्यता या अर्हता जांच के लिए सामान्यतया तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. **लिखित और मौखिक परीक्षा-** अधिकांश देशों में पदोन्नति हेतु लिखित परीक्षा ली जाती है। लिखित और मौखिक परीक्षा जांच करने की एक वस्तुनिष्ठ पद्धति है जो सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद को समाप्त करता है। अधिकारियों को किसी विशेष कर्मचारी के बारे में पदोन्नति संबंधी अंतिम निर्णय लेने के कठिन कार्य से मुक्त भी कर देता है। यह कर्मचारियों को नए विकास के प्रति अधिकतम बनाता है तथा स्पर्धा में भाग लेने के लिए प्रत्येक कर्मचारियों को समान अवसर प्रदान करता है। बहुत से देशों में विभागीय परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं, जिसमें पदोन्नति के इच्छुक प्रत्येक विभागीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों को अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। भारत में अर्हता परीक्षा लोक सेवा के साथ-साथ बैंकिंग सेवा में भी है। परिश्रमी और प्रतिभाशाली कर्मचारी इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर शीघ्र ही पदोन्नत हो जाते परंतु लिखित परीक्षा पद्धति में कुछ खामियां भी हैं। पहले से परीक्षा की तैयारी में उलझन के कारण कर्मचारी अपने नियमित प्रशासनिक किए कार्यों की उपेक्षा करते रहते हैं और उसमें निष्ठावान और समर्पित अपने को उपेक्षित पाते हैं। दूसरी ओर अनुभवी कर्मचारी और

वृद्ध कर्मचारी समुचित रूप से पढ़ नहीं पाते और प्रतियोगिता के दौर में पीछे रह जाते हैं। नवयुवक कर्मचारियों के लिए यह प्रतियोगिता परीक्षा एक अच्छे अवसर के रूप में होता है।

लिखित परीक्षा की इन कमियों को दूर करने के लिए बहुत से देशों में लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार या मौखिक परीक्षा ली जाती है। साक्षात्कार के माध्यम से अभ्यर्थियों के व्यक्तित्व, मनोवृत्ति तथा आचार-व्यवहार इत्यादि को जांच हो जाती है वही साक्षात्कार के समय पूर्व के अनुभवों और अन्य सेवा संबंधी रिकॉर्ड पर भी विचार किया जाता है।

2. **कार्यकुशलता का निर्धारण-** सिविल सेवा में प्रत्येक कर्मचारी किए सेवा संबंधी रिकॉर्ड को रखना एक पुरानी और सार्वदेशिक प्रथा है जो गोपनीय रिपोर्ट, सेवा पुस्तिका, व्यक्तिगत रिपोर्ट या व्यक्तिगत फाइल इत्यादि नामों से सहेज कर रखी जाती हैं। इनका उपयोग पदोन्नति के उद्देश्य से कर्मचारी के सापेक्षिक अर्हता मूल्यांकन के लिए किया जाता है। पदोन्नति से उद्देश्य से कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यता एवं अर्हता निर्धारण के लिए यह अपेक्षाकृत नई विधि है जिसे सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाया गया। सेवा रिकॉर्ड का रखरखाव अपने आप में कार्य क्षमता का निर्धारण नहीं है। बड़े संगठनों में जहां बहुत सी शाखाएं और खंड होते हैं तथा कर्मचारियों की संख्या अधिक होती है। वहां कार्यकुशलता निर्धारण के लिए इस पद्धति को व्यापक रूप से अपनाया गया है।

पदोन्नति के लिए योग्यतम और सर्वाधिक कार्य कुशल कर्मचारियों हेतु कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति सर्वाधिक उपयोगी है। कुशल लोगों को पुरस्कृत करने तथा अपेक्षाकृत कम योग्य लोगों की छटनी एक न्याय पूर्ण और विश्व सनीय पद्धति है। यह न केवल योग्य लोगों को ही बल्कि निष्ठा और सावधानी पूर्वक कार्य करने वाले लोगों को ही पुरस्कृत करती है तथा कर्मचारियों को सतर्क एवं आधुनिकतम बनाती है। कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति के इन सकारात्मक बिंदुओं के अतिरिक्त नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सेवा रिकॉर्ड तैयार करने वाले वरिष्ठ अधिकारियों के आत्मपरक निर्णय पर निर्भर करता है। प्रभावी रूप से आवश्यक सभी गुण, विशेषता या मापदंडों को अपने में समाविष्ट कर लेने वाले अच्छी श्रेणी प्रारूप को तैयार करना एक कठिन कार्य है। इस पद्धति के कारण उपेक्षा, बेईमानी और व्यक्तिगत निर्णय के लिए अवसर की उपलब्धता हो जाती है और बाकी कर्मचारियों के उत्तेजित तथा संकोची होने के कारण उनका मनोबल भी टूट जाता है। यह श्रेणी पद्धति पदोन्नति का कोई स्वतःचालित आधार नहीं होता। अतः अंतिम निर्णय स्वयं पदोन्नति करने वाले अधिकारी को लेना पड़ता है।

इस विधि में योग्यता और निपुणता का निर्धारण सेवा रिकॉर्ड के आधार पर किया जाता है। कुछ गुण, विशेषता, कार्य निष्पादन, उत्पादन रिकॉर्ड इत्यादि के आधार पर कर्मचारियों की योग्यता का निर्धारण किया जाता है। विशेषताएं जैसे कार्य का ज्ञान, व्यक्तित्व निर्णय, पहल शक्ति, यथार्थता, उत्तरदायित्व लेने की तत्परता, स्वच्छता, समय की पाबंदी, संगठन क्षमता इत्यादि कर्मचारी के उत्पादन को निम्नांकित प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है- सामान्य से ऊपर, सामान्य तथा सामान्य से नीचे।

या इन्हें कुछ इस तरह से निर्धारित किया जा सकता है जैसे भारत और ब्रिटेन में निर्धारित किया जाता है- अति उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, संतोष जनक, साधारण और कमजोर।

कभी-कभी इसे इस प्रकार से भी निर्धारित किया जाता है, जैसे अमेरिका में अत्यधिक संभावना असाधारण, बहुत अच्छा, संतोष जनक, अत्यधिक असंतोषजनक, निम्न और अति निम्न।

कभी-कभी विभिन्न श्रेणियां इंगित कर भी इसे निर्धारण किया जाता है, जैसे अंक आदि।

3. **संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय-** इस पद्धति में अर्हता का निर्धारण संगठन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संगठन के अध्यक्ष का सभी के विषय में जानकारी को आधार बनाकर कार्य निष्पादन के विषय में उनका व्यक्तिगत निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। इसलिए पदोन्नति करते समय वह अपने

निर्णय के अनुसार रुचि के अनुकूल लोगों को ही पदोन्नत करता है। यह पद्धति पक्षपात और भाई-भतीजावाद पर आधारित है। एक प्रकार से यह पुरस्कार पद्धति के समान भी है और निरंकुश प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने वाला भी। प्रशासन में राजनीति और चाटुकारिता को बढ़ावा देने वाला यह निर्णय कर्मचारियों में बहुत ही अनिपुणता, असुरक्षा और अनिश्चितता की स्थिति बनाता है। इस प्रकार पक्षपात पूर्ण पदोन्नति कर्मचारियों के मनोबल को घटा आती है और चापलूसों के लिए एक अच्छा अवसर भी प्रदान करती है। इस पद्धति में पदोन्नति का निर्णय संगठन के अध्यक्ष के ऊपर होता है तथा यह व्यवसायिक औद्योगिक प्रतिष्ठानों में ही अपनाया जाता है तथा यह इसका प्रचलन सिविल सेवा में नहीं है। फिर भी कुछ उच्च स्तरीय कार्यकारी पदों पर इस पद्धति के अनुसार पदोन्नति की जाती है। विवेक एवं निर्णय का सही उपयोग संबंधित विभागाध्यक्ष ईमानदारी और निष्पक्षता के ऊपर निर्भर करता है।

पदोन्नति में जांच की विभिन्न विधियों का उपयोग सिविल सेवा में विभिन्न स्तरों पर सुविधानुसार अपनाई जाती है। साधारणतया परीक्षा एवं कार्य कुशलता निर्धारण के आधार पर निम्न एवं मध्यम वर्गीय रिक्त पदों को भरा जाता है किंतु उच्चस्तरीय पदों को कार्यकारी अध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय किया नहीं भरा जाता है। वास्तव में पदोन्नति द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए इन विधियों को संयुक्त किया जाता है। विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की इन विधियों को संयुक्त करने की प्रणालियां विकसित की गई है।

प्रो० विलोबी ने पदोन्नति के लिए पात्रता के दो आधारों का वर्णन किया है- सेवीवर्ग की योग्यताएँ एवं सेवा का स्तर। पद वर्गीकरण के समय प्रत्येक पद के कार्यों, दायित्वों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है। इन योग्यताओं में ज्ञान, कुशलता, अनुभव, शैक्षणिक योग्यता, लिंग, निवास, तकनीकी कुशलता आदि प्रमुख होती है। इनके बिना पदोन्नति के लिए किसी कर्मचारी के नाम के संबंध में विचार ही नहीं किया जा सकता। जब ये आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की जाती है तभी यह तय हो जाता है कि पदोन्नति के लिए प्रत्याशियों का क्षेत्र व्यापक रहेगा अथवा संकीर्ण। दूसरी ओर, व्यक्तिगत योग्यताओं की भांति पदोन्नति की पात्रता का एक अन्य आधार प्रत्याशियों की सेवा का स्तर है। इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि पदोन्नति के लिए संभावित प्रत्याशी कहाँ से प्राप्त किये जायेंगे। विकल्पों को निश्चित कर देने पर पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र पर प्रायः एक संगठनात्मक प्रतिबन्ध लगाया जाता है और पदोन्नतियाँ साधारणतः एक ही विभाग अथवा ब्यूरो के अन्तर्गत की जाती है, अन्तर-विभागीय पदोन्नतियों का समर्थन नहीं किया जाता है। प्रो० विलोबी की मान्यता है कि विभिन्न कर्मचारियों की सेवा की शर्तों में भारी अन्तर रहता है, इसलिए यदि उन सभी के लिए एकरूप व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की गई तो यह घातक होगा। इस दृष्टि से कुछ सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये जा सकते हैं, ये निम्नलिखित हैं-

- प्रत्येक सेवा के लिए पदोन्नति की व्यवस्था स्वयं की होती है तथा यह अन्य सेवा से पर्याप्त भिन्न है। अतः प्रत्येक सेवा में पदोन्नति की समस्या पर पृथक से विचार किया जाना चाहिए।
- जहाँ तक सम्भव हो सके, सभी कर्मचारियों को पदोन्नति के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिए।
- पदोन्नति द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करते समय संबंधित संगठन के बाहर के कर्मचारी की अपेक्षा अन्दर के कर्मचारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

## 12.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें

लोक सेवा एक जीवन वृत्ति सेवा है। यह प्रतिभाशाली लोगों के लिए आजीवन जीविका का माध्यम है। साथ ही यह उनकी उन्नति और विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। उच्च स्तरीय पदों को भरने के लिए योग्य और

सक्षम लोगों को व्यवस्था में लाने का कार्य पदोन्नति की अच्छी नीति से ही संभव है। लोक सेवा जैसे जीवन वृत्ति सेवा की सफलता के लिए पदोन्नति की उपयुक्त नीति की नितांत आवश्यकता है।

आदर्श पदोन्नति व्यवस्था के दो पहलू हैं- पहला, यह प्रबन्ध को विश्वास दिलाती है कि संगठन को विभिन्न उच्च पदों पर श्रेष्ठ प्रतिभाशील व्यक्तियों की सेवा का लाभ मिलेगा तथा दूसरा- यह कर्मचारियों को विश्वास दिलाती है कि पदोन्नतियाँ योग्यता के आधार पर की गई हैं तथा पदोन्नति के अवसर व्यापक हैं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए स्टाल ने मुख्यतः सुझाव प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें अपनाकर आदर्श पदोन्नति व्यवस्था को लागू किया जा सकता है- यदि ऊँची योग्यता वाले प्रत्याशी संगठन में मौजूद हो तो पदों को उन्हीं की नियुक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए, किन्तु बाहर से प्रवेश को पूरी तरह अवरूद्ध नहीं करना चाहिए। उच्च पदों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कार्य पर प्रशिक्षण का विकास किया जाना चाहिए। जहाँ सम्भव हो सके वहाँ अन्तर्विभागीय एवं अन्तर्मण्डलीय पदोन्नतियाँ होनी चाहिए। नई भर्ती की भाँति पदोन्नति के समय भी अवसर की समानता का ध्यान रखा जाना चाहिए। पदोन्नति के लिए कोई भी एक मापदण्ड पर्याप्त नहीं है तथा एक उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था में प्रणाली की दृष्टि से लोचशीलता रहनी चाहिए। एक आदर्श पदोन्नति व्यवस्था में पर्यवेक्षक का योगदान महत्वपूर्ण है। सेवीवर्ग अधिकारियों द्वारा अभिलेख प्रणाली तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा पदोन्नति के पात्रों का निर्धारण करके पर्यवेक्षक को बताना चाहिए तथा अन्त में उनकी तुलनात्मक योग्यताओं के आधार पर पदोन्नति का निर्णय किया जाना चाहिए।

राज्य के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में पदोन्नति की उपयुक्त नीति का निर्माण आवश्यक हो गया है। पदोन्नति नीति संस्था की सेवीवर्गीय नीति का एक भाग है। यह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति करने में मार्गदर्शन करती है। यह भविष्य में होने वाली कई समस्याओं को रोकने में मदद करती है।

एक श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति की नीति को पहले से ही सुनियोजित होना चाहिए।
- लोक सेवा का स्वच्छ और सही वर्गीकरण होना चाहिए।
- प्रत्येक सेवा या वर्ग में पद या श्रेणी पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित होना चाहिए।
- पदोन्नति की रेखा और नियम पहले से ही निर्धारित होना चाहिए।
- पदोन्नति का कार्यभार किसी एक व्यक्ति के बदले किसी समिति या बोर्ड को देना चाहिए।
- पदोन्नति की सुव्यवस्थित रूप से स्वीकृत विधि का सही अर्थों में पालन होना चाहिए।

इसके साथ ही, कर्मचारी को पदोन्नति के लिए रिक्त स्थान में यह जाना चाहिए कि पदोन्नति सुअवसर है, न कि एक अधिकार है। उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेकर पदोन्नति का प्रयास करना चाहिए और वरिष्ठता को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। वरिष्ठता अर्हता एवं कार्य क्षमता के सिद्धांत का मिश्रण पदोन्नति को निर्धारक होने चाहिए। उच्च स्तरीय पदों के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में अभ्यर्थियों के पूर्व कार्य निष्पादन सेवा रिकॉर्ड एवं योग्यता को निर्धारक तत्व के रूप में होना चाहिए। पदोन्नति हेतु अर्हता जांच के लिए योग्यता कार्यकुशलता निर्धारण परीक्षा साक्षात्कार इत्यादि के समान अनेक उपयुक्त साधनों को अपनाया जाना चाहिए। सेवा अवधि अथवा वरिष्ठता के निर्धारण के नियम व तरीके स्पष्ट होने चाहिए। पदोन्नति नीति को सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसे लागू करने में किसी प्रकार का भेद-भाव एवं पक्षपात नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय श्रम आयोग की अनुशंसाओं के अनुसार पदोन्नति नीति को श्रम संघों के साथ विचार-विमर्श के बाद निर्धारित किया जाना चाहिए। इस आयोग ने सिफारिश की निम्न स्तरों पर पदोन्नति वरिष्ठता के आधार की जानी चाहिए तथा मध्यम स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार को अपनाना

चाहिए। उच्च स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय श्रम आयोग की ये अनुशंसाएं विवादों से परे नहीं है।

## 12.8 भारत में पदोन्नति पद्धति

भारत में लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और योग्यता दोनों सिद्धांतों पर आधारित है। परंपरा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्यम स्तर पर वरिष्ठता तथा स्थाई योग्यता के आधार पर तथा उच्च स्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है। छठे केंद्रीय वेतन आयोग, जो 5 अक्टूबर 2006 को भारत सरकार ने न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा की अध्यक्षता में गठित किया था, उसने 24 मार्च 2008 को अपनी रिपोर्ट में निश्चित सेवा अभिवृत्ति की सिफारिश की जिसके अनुसार सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को संपूर्ण कार्यकाल में तीन पदोन्नति अवश्य मिलनी चाहिए। लोक सेवा के कर्मचारियों को 10, 20 एवं 30 साल की सेवा के उपरांत पदोन्नति देने की प्रक्रिया लागू की गई है जबकि रक्षा कर्मियों को 8, 16 और 24 वर्षों की सेवा के बाद पदोन्नति दी जाएगी।

भारत में लोक सेवकों का पदोन्नति संबंधी समस्या और समाधान को ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। भारत में 1669 में ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के संबंध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था और इसी के साथ भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का भी सूत्रपात हुआ। इसी वक्त कंपनी ने निश्चय किया कि लंदन से किसी व्यक्ति को किसी अन्य कर्मचारी के ऊपर अधिकारी बना कर भेजा ना जाए। 1771 में कंपनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ दायित्व भी निर्वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धांत का संशोधन करते हुए योग्यता सिद्धांत को मान्यता दी। अनंतर चार्टर अधिनियम, 1773 के द्वारा वरिष्ठता का सिद्धांत का समर्थन करते हुए व्यवस्थाएं निर्धारित की गईं। सिविल सेवा में 1793 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट रूप से पदोन्नति के वरिष्ठता सिद्धांत को स्वीकार किया गया था। यह सिद्धांत 1861 के भारतीय सिविल सेवा एक्ट के लागू होने तक प्रचलित रहा। यद्यपि वरिष्ठता का नियम लागू था किंतु अर्हता, योग्यता, क्षमता एवं सत्य निष्ठा इत्यादि पर भी पदोन्नति के समय विचार किया जाता था। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत 1947 तक अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात 1947 में ही पदोन्नति के संबंध में विचार शुरू हो गया। सिविल सेवा में रिक्त पदों को भरने के लिए प्रथम वेतन आयोग ने भर्ती और पदोन्नति की पद्धति को संयुक्त किए जाने की अनुशंसा की थी। इसके अनुसार वरिष्ठता सिद्धांत को कार्मिकों के रिक्त पदों को भरने के लिए अपनाया जाना चाहिए, जो कार्यालय कार्यों को अच्छी जानकारी की शर्त को आवश्यक रूप से पूरा करता हो। उच्च स्तरीय पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर भरा जाना चाहिए। प्रथम वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि लोकसेवाओं में प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नति के बीच विवेकपूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। आयोग का मानना था कि उच्च पदों के संदर्भ में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता के स्थान पर योग्यता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। द्वितीय वेतन आयोग, 1969, ने भी लगभग इसी प्रकार की अनुशंसा दी। इसके अनुसार प्रशासन में उच्च स्तरीय रिक्त पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम एवं निम्न स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता सह उपयुक्तता का सिद्धांत के आधार पर भरे जाने की अनुशंसा की गई थी। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत की अनुशंसा की थी। भारत में विगत 60 वर्षों में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत प्रचलित है और दोनों पदोन्नति के घटक विभिन्न सेवाओं में परिवर्तित होते रहते हैं।

भारत में केंद्र सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा विभागाध्यक्ष की अनुशंसा पर कभी-कभी तो केंद्रीय लोकसेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के आधार पर भी पदोन्नति की जाती रही है। कुछ पदों के लिए पदोन्नति वित्त विभाग की मंजूरी के पश्चात की जाती है तथा कुछ उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए तो

प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का अनुमोदन आवश्यक है। अधिकांश विभागों में पदोन्नति के उद्देश्य से विभागीय पदोन्नति समिति का गठन किया जाता है जो वरिष्ठता के क्रम में गोपनीय रिपोर्ट को आधार बनाकर पदोन्नति की अनुशंसा करती हैं। सहायक, वरिष्ठ सहायक, अनुभाग अधिकारी, अधीक्षक इत्यादि जैसे मध्यम एवं निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह कार्यकुशलता के सिद्धांत को बिना विवाद के लगातार अपनाया जाता रहा है। कुछ मामलों में इस व्यवहार के अतिरिक्त पदोन्नति के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं में कर्मचारियों को शामिल किए जाने की अनुमति भी दी जाती है। उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के विभागीय पदोन्नति समिति सूची से हटकर भी पदोन्नति करती है। भारत में विभिन्न श्रेणियों और सेवाओं में पदोन्नति की पद्धतियां लगातार परिवर्तित भी होती रहती हैं।

योग्यता आधारित पदोन्नति व्यवस्था को अब शनैः-शनैः मान्यता मिल रही है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियों से युक्त समाज में योग्यता को मान्यता मिलना स्वाभाविक है। पदोन्नति में योग्यता को आधार बनाने से महत्वाकांक्षी, कर्तव्यनिष्ठ तथा उत्साही कार्मिकों को प्रेरणा प्राप्त होती है, प्रशासनिक कार्य कुशलता बढ़ती है तथा प्रशासन में नवाचार या परिवर्तन प्रक्रियाएँ क्रियान्वित की जा सकती हैं, किन्तु इस सिद्धान्त के कारण जब कम कनिष्ठ व्यक्ति उच्च पद पर पहुंच जाता है तो वरिष्ठ कार्मिकों का अहं आहत होता है साथ ही कार्मिक असहयोग एवं संघर्ष प्रवृत्तियों को धारण कर लेते हैं। भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं, जो हैं-

1. विभागाध्यक्ष जानबूझकर संभावित प्रतियोगियों की सूची में से कुछ लोगों के नाम निकाल देते हैं। ढेर सारे कर्मचारियों के पदोन्नति के प्रार्थना पत्र विभागीय अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ प्रेषित नहीं किए जाते हैं।
2. कार्मिकों के व्यक्तिगत सेवा रिकार्डों को निष्पक्षता एवं व्यस्तता से नहीं रखा जाता है। कार्मिकों की व्यक्तिगत फाइल की जिन बातों को पदोन्नति के समय देखा जाता है, वे पूरी तरह जांच पड़ताल और निष्पक्षता के साथ अंकित नहीं की जाती हैं।
3. पदोन्नति के द्वारा भरे जाने वाले अधिक पदों के संबंध में भी कर्मचारियों को यथा समय सूचित नहीं किया जाता है। रिक्त पदों की सूचना को कर्मचारियों के गुप्त रखा जाता है और इस कारण कभी कभी भी अपने प्रति किए गए अन्याय से अपरिचित रह जाते हैं।
4. अर्हता के बदले वरिष्ठता को भारत में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। योग्यता के सिद्धांत को पदोन्नति के वक्त उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता है। इसके अनुशीलन की अपेक्षा इसका उल्लंघन अधिक किया जाता है।
5. पदोन्नति की सुव्यवस्थित मशीनरी के अभाव में भारत में अनुचित मनमाने और अव्यवस्थित ढंग से भी पदोन्नति दी जाती है तथा पदोन्नति में पक्षपात या अन्याय होने की स्थिति में इसके विरुद्ध अपील करने की कोई प्रभावकारी पद्धति नहीं है।
6. पदोन्नति के अवसर कम और प्रत्याशी अधिक होने के कारण अविश्वास एवं अन्य दुष्परिणाम सामने आते हैं।

इन कमियों को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया था कि एक उपयुक्त एवं सुव्यवस्थित पदोन्नति की नीति को अपनाया जाना चाहिए। कर्मचारियों की सेवा रिकार्डों को निष्पक्ष भाव से रखा जाना चाहिए तथा मूल्यांकन अपील करने के लिए एक प्रभावशाली मशीनरी की स्थापना भी होनी चाहिए। सभी सरकारी सेवाओं में सभी स्तरों पर पदोन्नति करने के लिए समितियों या बोर्डों की स्थापना आवश्यक है तथा मध्यम स्तरीय पदों से ही अधिकारी परीक्षा तथा साक्षात्कार की शुरुआत हो जानी चाहिए। पदोन्नति की नीति हेतु अनुमान समिति (प्रथम लोकसभा) ने भी व्यापक सुझाव दिये थे। उसके अनुसार पदोन्नति का आधार योग्यता हो, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरिष्ठता। कर्मचारियों की पदोन्नति के संबंध में निर्णय का अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को होना चाहिए जिन्होंने कुछ

समय तक उनके कार्य और आचरण की जांच की हो। कम से कम एक तीन सदस्यीय कमेटी की अनुशंसा के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिए और प्रत्येक ऐसे मामले में, जहां किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की अपेक्षा की गई हो समिति को लिखित रूप में वरिष्ठता की अपेक्षा करने के कारणों के स्पष्ट करना चाहिए।

पदोन्नति व्यवस्था की सफलता अनेक बार तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों के कारण होती है किंतु कभी-कभी यह इसलिए भी हो जाता है कि कार्मिक प्रबंधन उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं से परिचित नहीं होता। सरकारी सेवा के सभी पदों को आवश्यक योग्यता और कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मापदंडों का निर्धारण किया जाना चाहिए। विभिन्न सेवाओं और श्रेणियों में वर्गीकरण भी इस कड़ी में आवश्यक है। कर्मचारियों की पदोन्नति एक वैज्ञानिक आधार पर क्रियान्वित होने के लिए विविध तथ्यों को एक साथ समाहित किया जाना आवश्यक है।

### अभ्यास प्रश्न-

1. किसने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है?
2. एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति क्या कहलाता है?
3. पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के किस शब्द का पर्यायवाची है?
4. भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का सूत्रपात कब हुआ?
5. 2006 में गठित छठे केंद्रीय वेतन आयोग के अध्यक्ष कौन थे?

### 12.9 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि पदोन्नति जीवन वृत्ति सेवा का एक अनिवार्य अंग है तथा सक्षम अधिकारियों को सेवा में सर्वोच्च पद पर पहुंचने में सहायता करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम भी है। पदोन्नति प्रशासन को पहले से ही सेवारत कार्मिकों के सर्वोत्तम प्रतिभाओं एवं अनुभव का उपयोग करने में भी सहायता प्रदान करते हैं। यह सेवारत लोगों के मध्य से ही रिक्त स्थानों को अप्रत्यक्ष रूप से भरे जाने की प्रक्रिया है। विश्व के बहुत सारे देशों में पदोन्नति के अर्हता सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, लेकिन साथ ही वरिष्ठता को भी उचित स्थान दिया गया है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया है, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। उचित पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है।

### 12.10 शब्दावली

कार्मिक- कर्मचारी, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, सेवा रिकार्ड- किसी कर्मचारी के संबंध में कार्यालय द्वारा रखा गया उसका व्यक्तिगत सेवा रिकार्ड, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, कार्य कुशलता स्तर- पूर्व सेवा के आधार पर किसी कार्मिक की सेवा का तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन

**12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

1. विलोबी, 2. क्षैतिज पदोन्नति या श्रेणी आधारित पदोन्नति, 3. प्रमोट (promote), 4. 1669 में, 5. न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा

**12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।

**12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

1. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

**12.14 निबंधात्मक प्रश्न**

1. पदोन्नति के अर्थ एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. पदोन्नति के उद्देश्य एवं पदोन्नति के प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. पदोन्नति प्रणालियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. पदोन्नति की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

## इकाई- 13 प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं प्रकार

### इकाई की संरचना

- 13.0 प्रस्तावना
- 13.1 उद्देश्य
- 13.2 प्रशिक्षण का अर्थ
- 13.3 प्रशिक्षण का महत्व
- 13.4 विकासशील देशों में प्रशिक्षण
- 13.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य
- 13.6 प्रशिक्षण के प्रकार
- 13.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक
- 13.8 सारांश
- 13.9 शब्दावली
- 13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.13 निबंधात्मक प्रश्न

### 13.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण एक निश्चित उद्देश्य के लिए लोगों का ज्ञान और कौशल बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। प्रशिक्षित कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। किसी कार्यविशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्ति पूर्व से ही न्यूनतम शैक्षिक योग्यताधारी होते हैं। आमतौर पर लोक सेवा में प्रवेश करने से पूर्व ही वे अपनी शिक्षा पूरी कर चुके होते हैं, परंतु शिक्षा की प्रक्रिया उसके बाद भी जारी रहती है। विभिन्न परिवर्तनों एवं तकनीक से उनकी कुशलता और दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य शिक्षा को लोक सेवाओं में प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में प्रशिक्षण कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कई प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की गई हैं और समय-समय पर इनमें आवश्यक संरचनात्मक एवं व्यावहारिक परिवर्तन भी किए गए हैं। प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिए नितांत आवश्यक है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य शासकीय कृत्यों के लिए कर्मचारियों को भलीभांति तैयार करना है।

वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। आज प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के उपयुक्त और प्रभावी शिक्षण हेतु व्यापक प्रबंध किए गए हैं। इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को प्रशिक्षण के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है।

### 13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही प्रशिक्षण के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- विकासशील देशों में प्रशिक्षण की आवश्यकता को समझ पायेंगे।

### 13.2 प्रशिक्षण का अर्थ

प्रशिक्षण, प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया है। प्रशिक्षण का उद्देश्य ऐसे तंत्र की स्थापना करना होता है जो समय-समय पर लोक सेवकों के वास्तविक व्यवहार को सकारात्मकता देता रहे और नवीनतम ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि भी करे। प्रशिक्षण कार्य एवं संगठन की आवश्यकताओं के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान निपुणताओं, व्यवहार, अभिरूचियों तथा मनोवृत्तियों में सुधार करता है, परिवर्तन उत्पन्न करता है तथा ढालता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य लोक सेवकों की कार्यकुशलता और क्षमता को बढ़ाना है।

प्रशिक्षण का शाब्दिक अर्थ है, किसी खास कला या व्यवसाय की शिक्षा देना। लोक प्रशासन में प्रशासन का अर्थ किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता, शक्ति और बुद्धिमत्ता को सुधारने तथा वांछित दिशा में उसकी रुचि और मूल्य को विकसित करने का सक्रिय प्रयास करना है। व्यापक अर्थों में प्रशिक्षण जीवनपर्यंत चलने वाली एक प्रक्रिया है। शिक्षा के समान ही प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक लंबी प्रक्रिया है, परंतु शिक्षा की तुलना में प्रशिक्षण के उद्देश्य सीमित और निश्चित होता है। शिक्षा किसी व्यक्ति के बाल्यकाल से प्रारंभ होकर व्यक्तित्व, चरित्र, व्यवहार, रुचियाँ, क्षमता, आदि के निर्माण को प्रभावित करती है और व्यापक मानसिकता उत्पन्न करती है। परंतु प्रशिक्षण किसी विशेष किस्म के कार्य अथवा व्यवसाय के लिए अपेक्षित कार्यकुशलता और ज्ञान में सुधार करता है। इस प्रकार प्रशिक्षण की अपेक्षा शिक्षा अधिक व्यापक अवधारणा है। फिर भी प्रशिक्षण और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और अधिकांश बार वे परस्पर व्यापी होते हैं। साधारण शब्दों में, प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है। प्रशिक्षण एक अल्पकालीन शैक्षणिक प्रक्रिया है तथा जिसमें एक व्यवस्थित एवं संगठित कार्य-प्रणाली उपयोग में लायी जाती हैं, जिसके द्वारा एक कर्मचारी किसी निश्चित उद्देश्य के लिए तकनीकी ज्ञान एवं निपुणताओं को सीखता है। इस प्रकार प्रशिक्षण एक सीखने का अनुभव है। जिसके अन्तर्गत यह एक कर्मचारी में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है, जो कि उसके कार्य का निष्पादन क्षमता में सुधार लाता है।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रशिक्षण को निम्नलिखित रूपों में परिभाषित किया गया है-

मैण्डेल के अनुसार, “प्रशिक्षण का अर्थ है, नये कार्य के लिये अभिनवीकरण। वर्तमान कार्य के लिए ज्ञान तथा कुशलता का विकास एवं भावी उत्तरदायित्वों के लिए तैयारी।”

एडविन बी. फिलिप्पा के अनुसार, “प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है।”

स्टाल(Stahl) के मतानुसार, “कर्मचारी वर्ग के विकास में प्रशिक्षण मानवीय प्रयास के निर्देशन का एक मूल तत्व है और इस रूप में यह उस समय अधिक प्रभावशाली रहता है जबकि इसे नियोजित, व्यवस्थित एवं मूल्यांकित किया जाता है।”

एस.एल. गोयल कहते हैं, “प्रशिक्षण- (क) एक कार्य प्रक्रिया है, (ख) जिसके द्वारा कार्मिक की क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है, (ग) जिससे कि अपने सांगठनिक कार्यों का निष्पादन करने के लिए अपेक्षित ज्ञान,

कुशलताओं तथा रुझानों के अर्थों में सांगठनिक आवश्यकताओं। को पूरा किया जा सके, (घ) अपेक्षाकृत थोड़े समय में ही।”

विलियम जी. टोर्पे की परिभाषा के अनुसार, “प्रशिक्षण, कर्मचारियों के मौजूदा सरकारी पदों के लिए और भविष्य के सरकारी पदों के लिए उनको तैयार करने के उनकी कुशलताओं, आदतों, ज्ञान प्रवृत्तियों का विकास करने की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य उनकी प्रभावशीलता में वृद्धि करना है।”

अवस्थी और माहेश्वरी कहते हैं कि, “प्रशिक्षण लोक सेवकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के एक सुस्पष्ट प्रयास है और यह व्यावसायिक ज्ञान, व्यापक दृष्टि तथा व्यवहार के सही ढंग को प्रदान करके किया जाता है। यह लगातार महसूस की जाने वाली आवश्यकता के सम्मुख एक सतत या वांछित प्रयास है।”

इस प्रकार प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। एक प्रक्रिया के रूप में प्रशिक्षण विशेष और सीमित है। इसका अर्थ विशेष कार्य अथवा व्यवस्था के बारे में शिक्षण देना है। इसका प्रयोजन कर्मचारियों की उनके कार्य कुशलता ज्ञान और कार्य क्षमता को सुधारना है तथा इसका लक्ष्य कर्मचारियों को उच्च जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना भी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब लोक सेवकों की योग्यता, कुशलता, बुद्धि व दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में अग्रसर करने का प्रयास किया जाता है तो यह प्रशिक्षण कहलाता है। प्रशिक्षण एक संगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान तथा/अथवा निपुणताओं को सीखते हैं।

### 13.3 प्रशिक्षण का महत्व

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है। बदली हुई परिस्थितियों में प्रशिक्षण की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की गई है। प्रशिक्षण, प्रबंध का सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि उत्तरदायित्व है। संगठन के कार्यों को संपन्न कराने के लिए शिक्षण एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा है। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारी अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से संपन्न करने में समर्थ होता है। व्यक्ति में जो कुशलता, आदत, ज्ञान आदि जो पूर्व में विद्यमान रहते हैं, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा अधिक परिमार्जित किया जा सकता है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता स्थापित कर कर्मचारियों को उच्च स्तर के कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता विकसित करना है तथा उनकी तकनीकी योग्यताओं के विकास द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उनकी कार्यकुशलता को बढ़ाना भी है। प्रशासनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में प्रशिक्षण का अत्यधिक योगदान है। इस प्रकार अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता में वृद्धि प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। कुशल प्रशासन हेतु लोक सेवकों को उपयुक्त एवं प्रभावी प्रशिक्षण आवश्यक है। लोक सेवा के कर्मचारियों का प्रशिक्षण आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है। अधिकांश चुने गए व्यक्तियों में उपाधियां पूर्व से ही धारित होती हैं जो बदलते परिदृश्य में पर्याप्त नहीं होती। प्रशिक्षण अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नवीन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक कार्यों को कुशलता पूर्वक करने में मददगार सिद्ध होता है एवं उसकी कार्यकुशलता एवं दक्षता को सुधारता है। लोक सेवकों को अपने संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों, संघ कार्य के स्वरूप, वास्तविक कार्य करने की तकनीक और पद्धतियों के बारे में ज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा दिया जा सकता है। इसी प्रकार बदलते हुए परिदृश्य में अर्जित ज्ञान और कार्यकुशलता को नवीन एवं अद्यतन बनाने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है, जो एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों को उनके वर्तमान तथा आगामी कार्यों से परिचित होने हेतु सक्षम बनाना है। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। प्रशिक्षण के महत्व निम्नलिखित हैं-

1. उच्चतर कार्यनिष्पादन- प्रशिक्षण के द्वारा समग्र रूप से संस्था तथा कर्मचारी दोनों के कार्य की गुणवत्ता तथा मात्रा बेहतर बनती है। ज्ञान, कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2. प्रक्रियाओं की एकरूपता- इसके द्वारा कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध कार्यविधियों का मानकीकरण किया जा सकता है तथा उन्हें सभी कर्मचारियों को सिखाया जा सकता है, जिससे कार्यनिष्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।
3. सीखने की कम अवधि- इससे कार्यनिष्पादन के स्वीकार्य स्तर तक पहुंचने हेतु आवश्यक सीखने की अवधि तथा लागत दोनों में कमी लाने में सहायता मिलती है। कर्मचारियों को गलतियां करके तथा दूसरों को देखकर काम सीखने पर समय व्यर्थ नहीं गंवाना पड़ता।
4. कम पर्यवेक्षण- इससे कर्मचारियों के विस्तृत तथा निरंतर पर्यवेक्षण की आवश्यकता कम होती है तथा वे अपने कार्य में आत्मनिर्भर हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता होता है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है।
5. उच्च मनोबल- इससे कर्मचारियों के कार्य संबंधी संतोष तथा मनोबल में वृद्धि होती है तथा सकारात्मक सोच विकसित होती है, जिसके कारण वे अपने कार्य तथा संस्था के प्रति अधिक सहायक तथा वफ़ादार बनते हैं। अनुशासन तथा संबंधों में सुधार आने के फलस्वरूप अनुपस्थिति की दर तथा श्रमिकों के आवर्तन में कमी आती है।
6. सहभागितापूर्ण प्रबंधन- इससे प्राधिकारों के प्रत्यायोजन तथा विकेंद्रीकरण में सहायता मिलती है। प्रशिक्षित कर्मचारी नये तथा चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार करने हेतु तत्पर रहते हैं।

#### 13.4 विकासशील देशों में प्रशिक्षण

प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारी को अपने कार्य में कुशल एवं दक्ष बनाना है। प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारी का व्यक्तित्व तो वही रहता है, किन्तु उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आ जाता है। विश्व के सभी देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण एक आवश्यक तथ्य है, किंतु विकासशील देशों में इसकी आवश्यकता और महत्व अधिक है। विकासशील देशों में प्रशिक्षण की तात्कालिक आवश्यकता के कई महत्वपूर्ण कारक हैं। इन कारकों की वजह से विकासशील देशों में विकास नीतियों की संपूर्ण सफलता उपयुक्त प्रशिक्षण पर ही निर्भर है। अधिकांश विकासशील देशों में सामान्यतया प्रशिक्षित और योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की कमी है और प्रशिक्षण की सुविधाएं और प्रशिक्षण संस्थान अपर्याप्त हैं। सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि के फल स्वरूप लोक सेवकों को नए प्रकार के कार्यों को संपादित करने में उच्च कोटि की दक्षता और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रशासन जटिल, तकनीकी और विशेषीकृत हो गया है, वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थितियां लगातार बदल रही हैं और तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों की चुनौतियों के लिए प्रशासन के नवीनीकरण की आवश्यकता है। विकासशील देशों में चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन असाधारण तेजी और दक्षता से करने के लिए अक्सर प्रशासन पर दबाव बना रहता है, जिसे लोक सेवकों के प्रशिक्षित होने की अवस्था में ही तुरंत निस्तारित किया जा सकता है।

#### 13.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य

प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने की एक निश्चित विधि होती है जिसे प्रशिक्षण के माध्यम से ही सीखा जा सकता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य केवल तकनीकी कार्यों एवं नित्य के कार्यों का निष्पादन सिखाना ही नहीं वरन् एक समझदार एवं गम्भीर दृष्टिकोण का विकास करना भी है। प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न

करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण के उद्देश्यों की चर्चा सर्वप्रथम सन् 1944 में ब्रिटेन में एशेटन कमेटी रिपोर्ट, में किया गया था। प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में इसने कहा था कि बड़े स्तर के किसी भी संगठन में कुशलता दो तत्वों पर निर्भर है। उसको सौंपे गए कार्य विशेष को करने के लिए व्यक्ति की तकनीकी कुशलता और एक संगठित संस्था के तौर पर संगठन की कम सुनिश्चित कुशलता, जो संस्था को संघटित करने वाले व्यक्तियों की सामूहिक भावना और उनके दृष्टिकोण से पैदा होती है। प्रशिक्षण को इन दोनों का ध्यान रखना चाहिए। एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 ने प्रशिक्षण के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य बताये-

कार्मिकों में विश्व सनीय कार्य चातुर्य उत्पन्न करना।

- कार्मिकों को इस योग्य बनाना कि वे परिवर्तित परिस्थितियों में अपने कार्य को दक्षतापूर्वक एवं सुगमता से सम्पदा कर सकें।
- कार्मिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर उन्हें अनुभव कराना कि वे सेवक हैं, स्वामी नहीं।
- कार्मिकों में सामुदायिक भावना उत्पन्न करना तथा उन्हें यन्त्रीकरण से बचाना।
- कार्मिकों को दायित्वों की पूर्ति हेतु अधिक क्षमता प्रदान करना।

किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके उद्देश्यों का निर्धारण कितनी कुशलता से किया गया है। सामान्यः संगठनों द्वारा अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए जो उद्देश्य होते हैं, वे निम्नलिखित प्रकार से हैं-

1. कर्मचारियों को नवीनतम ज्ञान, अवधारणाओं, सूचनाओं एवं तकनीकों के विषय में जानकारी प्रदान करने तथा उन निपुणताओं, जिनकी उन्हें अपने-अपने विशेष क्षेत्रों में आवश्यकता है अथवा होगी, उनको विकसित करने के द्वारा उन्हें उनके वर्तमान पदों पर अधिक प्रभावपूर्ण रूप से कार्य सम्पन्न करने के लिए सहायता प्रदान करना।
2. कार्य एवं संगठन की वर्तमान तथा साथ ही परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये तथा पुराने दोनों कर्मचारियों को तैयार करना तथा लोकसेवक को उन कार्यों के अनुकूल बनाना जो उसे एक परिवर्तनशील जगत में करने को दिए गए हैं।
3. न्यूनतम लागत, अपव्यय एवं बर्बादी तथा न्यूनतम पर्यवेक्षण पर कर्मचारियों से श्रेष्ठ ढंग से कार्य सम्पादन को प्राप्त करना।
4. प्रशिक्षण की सहायता से लोक सेवकों में जनकल्याण की भावना उत्पन्न करना।
5. वैयक्तिक एवं सामूहिक मनोबल, उत्तदायित्व की अनुभूति, सहकारिता की मनोवृत्तियों तथा मधुर सम्बन्धों को बढ़ावा देना।
6. स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में नवीन कार्य-दशाओं में समायोजित करने के लिए कर्मचारियों को तैयार करना।
7. कर्मचारियों की आत्म-विश्लेषण करने की योग्यता तथा कार्य सम्बन्धी निर्णय क्षमता का विकास करना तथा विभागीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लोक सेवकों को व्यावसायिक दृष्टि से कुशल बनाना।
8. लोक सेवकों की दृष्टि ओर दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।
9. इस मनोवृत्ति का पोषण करना कि लोकसेवक मालिक नहीं, बल्कि जनसेवक हैं।
10. मानव संसाधन विकास के लक्ष्यों की पूर्ति करना आदि।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में प्रशिक्षण कर्मचारियों के दक्षता सुधारता है। साथ ही कर्मचारियों की व्यवसायिक कार्यकुशलता और ज्ञान को प्रशिक्षण बढ़ाता है, ताकि वे अपना काम प्रभावी ढंग से कर सकें। नए कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश का प्रशिक्षण एक सहायक माध्यम है और उसे संगठन के लक्षण तथा उद्देश्य संगठन में उसकी अपनी भूमिका तथा उसके कार्यों के निर्वहन की तकनीकी ज्ञान और पद्धतियों से अवगत कराता है जिसके फलस्वरूप कर्मचारी संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकते हैं। प्रशिक्षण कर्मचारियों को क्षेत्र विशेष में हुए नवीनतम प्रगति और विकास की जानकारी देता है इस प्रकार उन्हें ज्ञान से अद्यतन बनाए रखता है। संगठन के लक्ष्य और तकनीकों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए प्रशिक्षण कर्मचारियों को नए संगठनात्मक परिवर्तनों के अनुकूल बनाता है। प्रशिक्षण में भर्ती किए गए व्यक्तियों में विद्यमान कमियों को पूरा करता है तथा सरकार के प्रशासनिक कार्यों के लायक बनाने तथा उसी दिशा में डालने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण कर्मचारियों में निष्ठा और मनोबल बढ़ाता है तथा कर्मचारियों के लिए सामुदायिक सेवा और अपनेपन की भावना विकसित करता है। कर्मचारियों को इस बात का एहसास होता है कि वे और उनका काम संगठन और समुदाय का अनिवार्य अंग है। कार्यों में समर्पण कर्मचारियों को गौरव परम संतोष प्रदान करता है।

### 13.6 प्रशिक्षण के प्रकार

सभी प्रजातांत्रिक देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण बुनियादी महत्व का होता है। प्रशिक्षण न केवल नवनि्युक्त कर्मचारियों के लिए आवश्यक है बल्कि उनके लिए भी आवश्यक है, जो सेवा में कार्यरत हैं। इसकी प्रकृति अलग-अलग हो सकती है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम देश में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक दशाओं को रखकर तैयार किए जाते हैं। प्रशिक्षण देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से और विभिन्न तकनीकों से दिया जाता है।

सामान्यतया प्रशिक्षण को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

#### 1. औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण (Formal and Informal Training)- मूलतया

प्रशिक्षण दो प्रकार के होते हैं- अनौपचारिक और औपचारिक। अनौपचारिक प्रशिक्षण का अर्थ है- वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन के अधीन वास्तविक काम करते हुए काम सीखना। अतः यह प्रशिक्षण अनुभव से या परीक्षण और चूक पद्धति (Trial & Error Method) द्वारा होता है। प्रशिक्षु को प्रशासनिक कुशलता की प्राप्ति वास्तविक काम करते हुए अर्थात् व्यवहार के दौरान होती है। इसको 'काम पर प्रशिक्षण' कहते हैं। लोक प्रशासन में यह प्रशिक्षण की परंपरागत पद्धति है। ए.डी. गोरवाला के शब्दों में "एक अच्छे कलेक्टर (जिलाधीश) का घर नए सहायक कलेक्टर के लिए अक्सर ही उसका दूसरा घर होता है।" दूसरी ओर, औपचारिक प्रशिक्षण विशेषज्ञ मार्गदर्शन तथा निरीक्षण के अंतर्गत व्यवस्थित ढंग से पूर्व नियोजित और सुस्पष्ट पाठ्यक्रमों के द्वारा दिया जाता है।

औपचारिक प्रशिक्षण उस किस्म का प्रशिक्षण है जिसकी योजना व्यवस्था और संचालन विशेषण और मार्गदर्शन में सावधानी के साथ किया जाता है। निश्चित समय अवधि के दौरान विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह को प्रशिक्षण संस्थानों में विशेषज्ञ प्रशिक्षक अथवा विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। औपचारिक प्रशिक्षण की परम्परा प्रक्रिया में पूर्व निर्धारित योजना के अन्तर्गत विशिष्ट प्रशिक्षकों के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विधिवत् प्रशिक्षण केन्द्र में संगोष्ठी वाद-विवाद व्याख्यान आदि के माध्यम से दिया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के प्रशासनिक कौशल एवं कार्यविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके विपरीत अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव एवं व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित होता है। इसमें नवनि्युक्त अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ रहकर उसके आचरण को देखकर अनुभव ज्ञान एवं कौशल ग्रहण

करता है। इसमें वास्तविक रूप से तैयार किया गया अध्ययन पाठ्यक्रम तथा व्याख्यान संगोष्ठी या कार्यशाला में समूह चर्चा, सम्मेलन, कार्य परियोजनाएं, लिखित परीक्षाएं इत्यादि होती हैं। यह पूर्णकालिक या आंशिक हो सकता है। प्रशासनिक दक्षता सुधारने की आवश्यकता को देखते हुए औपचारिक प्रशिक्षण प्रणाली काफी लोकप्रिय हैं।

वहीं दूसरी ओर, अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव द्वारा प्राप्त शिक्षण है, जिसे कर्मचारी अपने संगठन में वास्तविक निर्धारित कार्य के दौरान अर्जित करता है। यह संगठनात्मक क्रियाकलाप है। अनौपचारिक प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए कोई योजना बनाना आवश्यक नहीं है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षक अथवा किसी प्रकार के प्रशिक्षण संस्थान की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी कोई निश्चित अवधि भी नहीं होती है और ना ही इसके लिए विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह की आवश्यकता होती है। यह लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का परंपरागत तरीका है और व्यावहारिक प्रशासन इसे आज भी प्राथमिकता देते हैं, परंतु यह प्रक्रिया सीखने की सबसे कठिन तरीका है और इसमें कर्मचारियों को काफी धैर्य और लता की आवश्यकता होती है। अनौपचारिक प्रशिक्षण अधिकांश देशों में लोकप्रिय नहीं है।

## 2. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण (Short-Term and Long-Term Training)-

अल्पकालीन प्रशिक्षण अल्पविधि के लिए दिया जाता है, जबकि दीर्घकालीन प्रशिक्षण एक लम्बे समय तक चलता है। अल्पकालीन प्रशिक्षण किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दिया जाता है। जैसे- युद्ध के समय मोर्चे पर भेजते समय नवनियुक्त सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत दीर्घकालीन प्रशिक्षण में विषय की गहन जानकारी एक लम्बी अवधि में प्रदान की जाती है। जैसे- शान्तिकाल में सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण जटिल व तकनीकी प्रकृति का होता है।

अवधि के अनुसार प्रशिक्षण को अल्पकालिक और दीर्घकालिक वर्गों में रखा जाता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यदि कुछ सप्ताहों या एक-दो माह का होता है तो उसे अल्पकालिक प्रशिक्षण कहते हैं और यदि यह छह महीने से एक या दो-तीन वर्ष का होता है तो उसे दीर्घकालिक प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत में दीर्घकालिक प्रशिक्षण का उदाहरण भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण है जिसकी अवधि तीन वर्ष होती है।

## 3. विभागीय एवं केन्द्रीय प्रशिक्षण (Departmental and Central Training)-

विभागीय प्रशिक्षण विभाग या कार्यालय के अन्दर ही अनुभवी विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण विभाग की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप दिया जाता है। इसके विपरीत उच्च एवं जटिल कार्यों के लिए प्रशिक्षण विभाग के केन्द्रीय मुख्यालय या केन्द्रीय सत्ता द्वारा दिया जाता है। प्रशिक्षण जब विभाग द्वारा (विभाग के अंदर) आयोजित किया जाता है तो उसे विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। यह विभाग के वरिष्ठ एवं अनुभवी सदस्य देते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एस. बी. पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है। दूसरी ओर विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन जब केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा होता है तो उसे केन्द्रीय या केन्द्रीयकृत प्रशिक्षण कहते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एल.बी.एस. राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है।

## 4. कौशल एवं सामान्य प्रशिक्षण (Skill and General Training)-

कौशल प्रशिक्षण विशिष्ट योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता है। उदाहरणार्थ- पुलिस विभाग को आपराधिक कृत्यों की खोज व निवारण हेतु दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत, सामान्य प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कौशल को बढ़ाने के लिए नहीं वरन् कार्य-सम्पादन को सुगम बनाने की दृष्टि से दिया जाता है। इसमें राजनीतिक,

सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों की जानकारी देते हुए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है, जिससे कि प्रशिक्षणार्थी सरलता से विषय को ग्रहण कर सकें।

- 5. प्रवेश-पूर्व, सेवाकालीन एवं प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Pre-Entry, in-Service and Post-Entry Training)**- लोक सेवाओं में प्रवेश से पूर्व दिया गया प्रशिक्षण प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण है, जबकि किसी व्यक्ति विशेष को सेवा में प्रवेश के बाद दिया गया प्रशिक्षण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण कहलाता है। महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों की औपचारिक शिक्षा के पश्चात चयनित लोक सेवकों का प्रशिक्षण विभिन्न संस्थानों में आयोजित किए जाते हैं। इसे सेवाकालीन प्रशिक्षण भी कहा जाता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप भी हो सकता है और इस सेवा के सभी स्थानों पर दिया जा सकता है। इससे कर्मचारी की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य बनाया जाता है। कभी-कभी कर्मचारी के वास्तविक कार्य से प्रवेश उत्तर प्रशिक्षण का सीधा संबंध नहीं होता परंतु उनकी सामान्य योग्यता और संगठनात्मक कार्य निष्पादन सुधारने प्रत्यक्ष रूप से बहुत सहायक होता है। सेवा में पद-स्थापन से पूर्व दिया जाने वाला प्रशिक्षण 'प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण' कहलाता है। शिक्षण संस्थाएँ इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वर्तमान में विश्व विद्यालयों में तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण को विशेष महत्व दिया जा रहा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण पहले से कार्यरत कार्मिकों को दिया जाता है जिससे कि वे अपने कार्य को अधिक कुशलता व दक्षता के साथ सम्पन्न कर सकें। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रशिक्षण सामूहिक या व्यक्तिगत किसी भी रूप में हो सकता है। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा व्यवसाय अथवा तकनीकी शिक्षा को प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी गई है। विगत वर्षों में सरकार ने प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय पदों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को संचालित करने के लिए शिक्षण संस्थानों की स्थापना की है। कुछ ऐसे संस्थान भी हैं जो सेवा से पूर्व प्रशिक्षण के लिए विविध प्रकार की व्यवस्थाएं संचालित करते हैं। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण काफी प्रचलित प्रथा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप हो सकता है तथा इसे सेवा के सभी स्तरों पर दिया जाता है। कर्मचारियों की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य भी बनाया जाता है। यह प्रशिक्षण उन प्रत्याशियों को दिया जाता है जो सार्वजनिक सेवा में निकट भविष्य में प्रवेश करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यह विभिन्न संस्थानों और कॉलेजों में दिए जाने वाला व्यावसायिक शिक्षण है। यह शिक्षण एप्रेंटिसशिप और इंटरशिप के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका में बेहद लोकप्रिय है।

- 6. अनुस्थापन प्रशिक्षण (Orientation Training)**- अनुस्थापन प्रशिक्षण सेवाकालीन प्रशिक्षण का ही एक प्रकार है। किसी भी संगठन में नवनियुक्त कर्मचारीको उसके पद व स्थिति से महत्वपूर्ण जानकारी दी जाती है, उसे ही 'अनुस्थापन प्रशिक्षण' कहा जाता है। अभिविन्यास प्रशिक्षण नए लोक सेवकों को संगठन कार्य करने की स्थिति तथा पद्धतियों का ज्ञान से परिचय वही विन्यास प्रशिक्षण द्वारा दिया जाता है। यह एक योजनाबद्ध प्रशिक्षण है जिसका मूल उद्देश्य कर्मचारियों की मूल अवधारणा, नए वातावरण संगठन के लक्ष्य और उद्देश्य और संगठन में उसके अपने स्थान से परिचित कराना है। हाल के वर्षों में विभिन्न देशों में इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्व बढ़ रहा है।

इस प्रकार विभिन्न संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उपयोग अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है। ज्ञान का नवीनीकरण एवं विकास सूचनाओं का प्रसार, कार्य-शैलियों में परिवर्तन तथा वैयक्तिक विकास आदि इस प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं।

### 13.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक

प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठनों के कर्मचारियों के ज्ञान, निपुणताओं तथा रुचियों में वृद्धि की जाती है। विभिन्न संगठनों की परिवर्तित आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये। लोक सेवकों को प्रशिक्षण प्रदान करने में विविध विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें महत्वपूर्ण पद्धतियाँ हैं-

1. **औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण-** आजकल अधिकांश देशों में औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण की तकनीक अपनाई गई है। इसके अंतर्गत व्याख्यान या कक्षाएं आयोजित करके नवनियुक्त कर्मचारियों को वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा औपचारिक रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। यदा-कदा बाह्य विशेषज्ञों द्वारा भी व्याख्यान का आयोजन भी किया जाता है। निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर यह प्रशिक्षण सामूहिक चर्चा, संगोष्ठी, अभिभाषण और कार्यशाला पर आधारित होती है। विभागीय अध्यक्ष भी इस दौरान कर्मचारियों को संबोधित करता है तथा उन्हें आवश्यक निर्देश भी देता है। औपचारिक प्रशिक्षण में फिल्म, दृश्य, श्रवण उपकरण तथा कंप्यूटरों का ही प्रयोग किया जाता है। व्याख्यान पद्धति प्रशिक्षण का यह सबसे पुराना तरीका है। इसमें वरिष्ठ विद्वानों तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा व्याख्यान दिए जाते हैं। इनसे प्रशिक्षुओं को उनके काम के विभिन्न पक्षों पर नई-नई जानकारियाँ मिलती हैं। व्याख्यान विधि का एक लाभ यह है कि यह एक प्रत्यक्ष विधि है, जिसे कि प्रशिक्षार्थियों के एक बड़े समूह के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अतः इससे समय एवं धन, दोनों की बचत होती है। इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसके द्वारा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की प्रदान किया जा सकता है, व्यावहारिक ज्ञान नहीं।
2. **कार्य करते हुए अर्जित अनुभव द्वारा प्रशिक्षण-** प्रायः अधिकारी और कर्मचारी कार्य करने के दौरान अर्जित अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हैं और इसी सीखने की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए उनका स्थानांतरण एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में किया जाता है। वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा समय-समय पर अनुदेश या निर्देश इस सीखने की प्रक्रिया में नए कर्मचारियों की सहायता करते हैं। अल्पकालिक तौर पर अंतर विभागीय विनिमय कार्यक्रम या अध्ययन दौरे द्वारा भी कर्मचारियों की दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। समय के साथ यह सीखने की प्रक्रिया अधिक परिपक्व होती जाती है और प्रशासक के रूप में उसकी कार्यशैली में आवश्यक सुधार भी लाती है। लेकिन यह पद्धति काफी धीमी है और इसमें अत्यधिक समय भी लगता है। अक्सर इसके स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य और निश्चित समय सीमा नहीं होती है।
3. **प्रशिक्षण की सम्मेलन पद्धति-** वर्तमान समय में यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है। प्रशिक्षण हेतु विभिन्न विभागों से चुने गए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के समूह को एक मंच पर लाकर चर्चा द्वारा अनुभव और विचारों को साझा किया जाता है। प्रशिक्षण की यह व्यवस्था विश्लेषण पद्धति भी कही जाती है। इसमें दूसरों के अनुभव से सीखने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त होता है और प्रशिक्षण पा रहे कर्मचारियों की भूमिका भी सक्रिय बनी रहती है। चर्चा को सही दिशा में रखने के लिए अनुदेशक का कार्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कई अन्य देशों में सम्मेलन पद्धति बहुत ही लोकप्रिय है। भारत में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के अल्पकालिक प्रशिक्षण के लिए इस पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत, सामूहिक विचार-विमर्श द्वारा सूचनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान किया जाता है। इसके उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सभी को लाभान्वित करना होता है। इस विधि के अन्तर्गत भाग लेने वाले विभिन्न विषयों पर अपने विचारों को प्रस्तुत करते

- हैं, तथ्यों, विचारों एवं आँकड़ों का आदान-प्रदान एवं परीक्षण करते हैं, मान्यताओं की जाँच करते हैं, निष्कर्षों को निकालते हैं तथा परिणामस्वरूप कार्यों के निष्पादन में सुधार हेतु योगदान देते हैं।
4. **प्रशिक्षण की अभिषद (सिंडीकेट) पद्धति-** प्रशिक्षण की इस पद्धति का जन्म इंग्लैंड में एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज (हेनले-ओन-थेम्स) में हुआ था। इस पद्धति में तीन या चार प्रशिक्षुओं के छोटे से दल को अध्ययन परियोजना का काम दिया जाता है। सामान्य सदस्यों के मार्गदर्शन में प्रशिक्षु से उस विषय का गहन अध्ययन कराया जाता है। अतः यह प्रशिक्षण की भागीदारी पद्धति है। अभिषद दो प्रकार के होते हैं- जानकारी संग्रह और समस्या समाधान।
  5. **विषय अध्ययन पद्धति-** इसमें विषय विशेष का सघन और गहरा अध्ययन किया जाता है। इसके लिए वास्तविक मामलों का वर्णन उन लोगों द्वारा किया जाता है जिनको अध्ययनाधीन मामले का निजी अनुभव होता है। इसके बाद सामान्य सदस्य के निर्देशन और देख-रेख में सामूहिक परिचर्चा की जाती है। इस तरीके से लोकसेवकों की समझ और कार्यक्षमता विकसित होती है।
  6. **संवेदनशीलता प्रशिक्षण-** यह सबसे जटिल और नवीनतम पद्धति है। प्रशासनिक सिद्धांत के साहित्य में कर्मचारियों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता में सुधार करने के लिए इस पद्धति का सुझाव क्रिस आर्गिरिस ने दिया था। इसको टी-ग्रुप ट्रेनिंग भी कहते हैं। इसका लक्ष्य है- व्यवहार के अपेक्षित ढंगों के प्रति प्रशिक्षुओं की मनोवृत्तियों का अनुकूलन। ए0आर0 त्यागी के शब्दों में- “टी-ग्रुप में प्रशिक्षु अपनी स्वभावगत विलक्षणताओं को अपने साथी प्रशिक्षुओं के सामने लाते हैं जो आपसी व्यवहार के द्वारा उनको रगड़कर साफ कर देते हैं। ये प्रशिक्षु अपने पुराने व्यवहार के प्रति सचेत हो जाते हैं जिसका पता उनको अन्यथा कभी नहीं चल पाता और इस प्रकार यह पद्धति उन्हें आत्मविश्लेषण तथा आत्मविकास का अवसर प्रदान करती है।”

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण की कोई भी पद्धति सर्वश्रेष्ठ नहीं है। इसे आवश्यकता समय एवं उद्देश्यों को देखकर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न देश प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकताओं के अनुकूल जिन विभिन्न पद्धतियों का समावेश कर अपने कार्यक्रमों को संचालित करते हैं। संगोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, सामूहिक चर्चाएं और क्षेत्र के दौरे इस संदर्भ में काफी आवश्यक हो जाते हैं। पुनश्चर्या और अभिविन्यास पाठ्यक्रम की उपयोगिता भी इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

#### अभ्यास प्रश्न-

1. एशेटन कमेटी रिपोर्ट का संबंध किस देश से है?
2. यह किसने कहा कि प्रशिक्षण नये कार्य के लिए अभिनवीकरण है?
3. प्रशिक्षण की यह परिभाषा किसने दी कि “प्रशिक्षण लोक सेवकों की कार्यक्षमता बढ़ाने का एक सुस्पष्ट प्रयास है।”
4. लोक सेवकों के प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में सर्वप्रथम किस रिपोर्ट में बताया गया था?
5. एशेटन कमेटी रिपोर्ट- 1944 में प्रशिक्षण के कितने उद्देश्य बताये गये हैं?
6. प्रशिक्षण की अभिषद(सिंडीकेट) पद्धति का जन्म कहां हुआ?
7. टी-ग्रुप प्रशिक्षण पद्धति किसने प्रदिपादित की?

#### 13.8 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों का प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग बन गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासनिक क्रियाकलाप जटिल और तकनीकी बन गए हैं जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। लोक सेवकों को उपयुक्त

और प्रभावी प्रशिक्षण देने के लिए प्रायः सभी देशों में प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई है। भारत इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों के जिम्मेदार और क्रियाशील बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्धारित किया गया। प्रशिक्षण एक ऐसा मापदंड है जो लोक सेवकों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी न किसी रूप में गुजरना ही पड़ता है जो उनकी क्रियाशीलता और कार्य कुशलता में वृद्धि करता है परंतु लोक सेवकों के प्रशिक्षण की सुविधा और प्रशिक्षण संस्थान की प्रचुरता के बावजूद भारतीय प्रशिक्षण प्रणाली वांछित परिणाम नहीं दे पाई है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं, जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है। उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं सफलता निर्भर है। अतः इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

### 13.9 शब्दावली

प्रवेश बिंदु- चयन के बाद की अवधि परंतु वास्तविक तैनाती से पहले, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, परिवीक्षाधीन- वास्तविक तैनाती के शुरुआती एक या दो वर्ष की अवधि, जिसमें प्रशिक्षण भी शामिल है, के दौरान लोक सेवकों को परिवीक्षाधीन अधिकारी कहा जाता है, अभिविन्यास- समय के अनुसार ज्ञान को अद्यतन करना, उपबंध- प्रावधान

### 13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ब्रिटेन, 2. मैण्डेल ने, 3. अवस्थी और माहेश्वरी ने, 4. एशेटन कमेटी रिपोर्ट- 1944, 5. पांच, 6. इंग्लैंड के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज में, 7. क्रिस आर्गिरिस

### 13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

### 13.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

### 13.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशिक्षण के अर्थ एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. प्रशिक्षण के उद्देश्य एवं प्रशिक्षण के प्रकार का वर्णन कीजिए।
3. प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।

## इकाई- 14 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली, संस्थाएं एवं मूल्यांकन

### इकाई की संरचना

- 14.0 प्रस्तावना
- 14.1 उद्देश्य
- 14.2 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा
- 14.3 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली
- 14.4 भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं
  - 14.4.1 लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी
  - 14.4.2 सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
  - 14.4.3 प्रशासनिक स्टॉफ कॉलेज, हैदराबाद
  - 14.4.4 राष्ट्रीय ग्राम्य विकास संस्थान, हैदराबाद
  - 14.4.5 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली
  - 14.4.6 रेलवे स्टॉफ कॉलेज, बड़ोदरा
  - 14.4.7 सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली
- 14.5 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन
- 14.6 सारांश
- 14.7 शब्दावली
- 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 14.11 निबंधात्मक प्रश्न

### 14.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण, उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्मिकों के ज्ञान और कौशल में वृद्धि करने की एक कला है। प्रशिक्षित कार्मिक किसी भी विभाग या संगठन की एक अमूल्य धरोहर है। किसी कार्य विशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। आज प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के उपयुक्त और प्रभावी प्रशिक्षण हेतु व्यापक प्रबंध किए गए हैं। इस इकाई में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली, भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

### 14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण की अवधारणा के संबंध में जान पायेंगे।
- भारत में प्रशिक्षण की प्रणाली, प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

### 14.1 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा

सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। नियुक्ति के पश्चात प्रशासकीय क्षमता पर कार्मिकों के प्रशिक्षण का काफी प्रभाव पड़ता है। सरकार के प्रत्येक कार्य के लिए उसके अनुरूप प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। संसदीय प्रजातंत्र की परंपरा के प्रति सम्मान की भावना का विकास एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि लोक सेवकों को दक्ष और कार्य कुशल बनाने के साथ-साथ उन्हें तदनु रूप प्रशिक्षित भी किया जाए। भारत विविधताओं का देश होने के कारण अलग-अलग प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। ग्रामीण एवं शहरी विभाजन रेखा तथा निरंतर बदलते परिदृश्य में लोक सेवकों का अभिमुखीकरण एक आवश्यक तथ्य है।

प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा एक प्रथा थी, इसमें गुरु से स्पष्ट ज्ञान, कार्यकुशलता और कला सीखने के लिए विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरुकुल आश्रम में रहते थे तथा विविध प्रकार के शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। परंतु यह व्यवस्था केवल समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था तथा उनके परिवार या समुदाय के अनुरूप ही औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। निजी क्षेत्र व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। परंतु सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण को जरूरी नहीं समझा गया क्योंकि सरकार के कार्य सीमित थे। लोक सेवकों के परीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अनुभव द्वारा सीखने की उम्मीद की जाती थी और यही प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विकास हुआ है। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं। जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है। विकास प्रशासन को चलाने के लिए अत्यंत कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है और इसके लिए योजनाबद्ध, प्रयोजनमूलक प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गई है। जिस कारण प्रत्येक देश में लोक सेवकों को किसी न किसी प्रकार से प्रशिक्षण देने के लिए राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किए गए हैं।

### 14.3 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में एक भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। संगठन एवं नियोजन विभाग की स्थापना के बाद प्रशिक्षण को और भी प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया। अनंतर योजना आयोग ने भी एक ऐसे प्रशिक्षण संचालक को नियुक्त करने का प्रस्ताव दिया था जिसे कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम तथा व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम संगठित करने का दायित्व सौंपा जाए। विशिष्ट सेवाओं के सदस्यों को दिए जाने वाले सामान्य प्रशिक्षण संबंधी ए. के. चंदा के सुझावों को गृह मंत्रालय ने काफी हद तक स्वीकार भी किया था।

1954 में गृह मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को ऐसी आदेश दिए थे, जिनमें अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं के अधिकारियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम की प्रबंध संबंधी योजना प्रस्तावित की गई थी। 1957 में इस दिशा में प्रारंभिक कदम उठाया गया तथा ग्रेडपे 6 से 10 तक की नौकरी कर चुके भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज शिमला में पाठ्यक्रम शुरू किया गया। अनंतर गृह मंत्रालय ने भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली और भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला- दोनों को मिलाकर मसूरी में राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की जिसने एक सितंबर 1959 से कार्य आरंभ कर दिया। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी कहा जाने लगा है। अखिल भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा और केंद्रीय सेवाओं के प्रथम श्रेणी और परिविक्षाधीन अधिकारियों को दो चरणों में संस्थागत शिक्षण दिया जाता है- आधार पाठ्यक्रम और व्यवसायिक पाठ्यक्रम। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा में चयनित उम्मीदवार जिन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा तथा केंद्रीय सेवा वर्ग आवंटित किया जाता है, इन्हें एक साथ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी उत्तराखंड में आधारभूत पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है। आधारभूत पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षु अधिकारियों को लोक सेवाओं की मूलभूत जानकारी देने, उन्हें अभिप्रेरित करने, संविधान और प्रशासन तंत्र को समझने तथा भारतीय परिवेश और मूल्यों को जानने के अतिरिक्त अन्य सेवाओं के साथ समन्वय का भाव दिखाना होता है। आधार पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षु अधिकारियों को भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक सिद्धांत, भारत का संविधान और शासन, लोक प्रशासन विधि, आधारभूत अर्थशास्त्र और जनसंख्या अध्ययन तथा हिंदी भाषा का सामान्य अध्ययन करवाया जाता है।

इस आधारभूत प्रशिक्षण के बाद के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अकादमी में ही बने रहते हैं जबकि अन्य सेवाओं के अधिकारी अपने विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थानों में अग्रिम प्रशिक्षण हेतु चले जाते हैं। लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में व्यवसायिक प्रशिक्षण भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए इसके बाद प्रारंभ होता है, जो 26 सप्ताहों तक चलता है। इसके अंतर्गत शिक्षकों को प्रशासनिक सेवाओं के दायित्वों का अध्ययन कराया जाता है।

व्यवसायिक प्रशिक्षण के पहले चरण के पूर्ण होने के बाद प्रशिक्षु अधिकारी आवंटित राज्य में जिला स्तरीय व्यवसाय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जो एक वर्ष का होता है। इस दौरान तीन सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण, जिसमें उन्हें राज्य के प्रशासनिक तंत्र से संबंधित सामने महत्वपूर्ण बातें सिखाई जाती है। इसके उपरांत प्रशिक्षु अधिकारियों को वास्तविक प्रशासनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यालयों एवं क्षेत्रों में भेजा जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य सामान्य कानून एवं नियम, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय एवं राजस्व प्रशासन, भूमि सुधार और नियोजन तथा विकास का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना होता है। व्यावहारिक स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त करते समय आने वाली समस्याओं का निराकरण संबंधित जिलाधिकारियों के मार्गदर्शन में किया जाता है। जिला स्तरीय व्यवसायिक प्रशिक्षण के अंतिम चरण में राज्य प्रशासनिक अकादमी में चार सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है। जिला स्तरीय प्रशिक्षण के सभी राज्यों के प्रशिक्षु अधिकारी एक बार फिर लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी, मसूरी आते हैं, जहां उनका व्यवसाय प्रशिक्षण का द्वितीय चरण जो अंतिम चरण भी है, प्रारंभ होता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य शारीरिक- मानसिक रूप से तैयारी, विश्लेषण लेखन और संचार क्षमता विकसित करना और जिम्मेदार अधिकारी बनाना होता है। अंत में अधिकारियों की एक लिखित परीक्षाओं होती है, जो अकादमी द्वारा आयोजित की जाती है, जिसका संचालन संघ लोक सेवा आयोग करता है। इस परीक्षा में सफल अधिकारियों को तथा 1 साल या 18 माह का सेवा पूर्ण कर लेने के पश्चात उन्हें सेवा में स्थाई किया जाता है। प्रशिक्षण पूर्ण कर लेने के पश्चात भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का स्थानांतरण एक

जिले से दूसरे जिले में होता है। अवर सचिव के रूप में उन्हें लगभग 18 महीने के लिए सचिवालय भेजा जाता है और और अनंत है चार साल की सेवा के पश्चात में जिलाधिकारी पद प्रदान किया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण सेवा करने अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी भारत में की गई है। हितेन माया समिति एवं रामचंद्रन समिति ने भारतीय प्रशासनिक सेवा किए सेवाकालीन प्रशिक्षण का मूल्यांकन किया और इसमें आवश्यक सुधार की अनुशंसा की है।

भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों को तीन वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का पहला चरण लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी में चार माह की आधारभूत प्रशिक्षण से प्रारंभ होता है। अनन्तर इन प्रशिक्षु अधिकारियों को इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में चार माह का विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय कार्यप्रणाली, अंतरराष्ट्रीय संबंध और भाषा की जानकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। अधिकारी किसी जिले के प्रशासन से संलग्न होता है, ताकि वह दायित्वों के व्यवहारिक संपर्क में आने योग्य हो जाए। साथ ही कुछ समय के लिए विदेश मंत्रालय के सचिवालय में भी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में हिंदी और एक देश भाषा तथा ऐसे विषयों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना उन्हें आवश्यक समझा जाता है। प्रशिक्षु अधिकारियों को कुछ दिनों के लिए सेना के किसी यूनिट में और भारत दर्शन के लिए भी भेजा जाता है।

भारतीय पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में 16 सप्ताह के आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद में प्रशिक्षण हेतु जाते हैं, जहां उन्हें एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। पहले यह संस्थान माउंट आबू में था लेकिन आंतरिक आपातकाल के दौरान इसे हैदराबाद स्थानांतरित कर दिया गया। अधिकारियों को सर्वप्रथम संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है जो चार सप्ताह का होता है। इसके अंतर्गत भारतीय दंड संहिता, अपराधशास्त्र, भारतीय साक्ष्य अधिनियम तथा भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की जानकारी दी जाती है। विभिन्न हथियारों का प्रशिक्षण सेंट्रल ऑफ स्कूल टेक्टोनिक्स में दिया जाता है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में अपराध, मनोविज्ञान, अपराध का पता लगाने में सहायक वैज्ञानिक उपकरण, भ्रष्टाचार का सामना करने की नीतियों तथा अग्नि और संकट में रक्षा आदि का अध्ययन भी सम्मिलित होता है। एक वर्ष के प्रशिक्षण के उपरांत उन्हें संघ लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित एक परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। तत्पश्चात उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु आवंटित राज्य में सहायक पुलिस अधीक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, यहां उन्हें विभिन्न अधीनस्थ पदाधिकारियों के कार्य करके प्रभारी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। इसके उपरांत ने सहायक पुलिस अधीक्षक नियुक्त किया जाता है।

भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवा में नियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को शिमला में अपने विभाग के प्रशिक्षण विद्यालय में प्रशिक्षित किया जाता है, जो लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवाओं के विविध पहलुओं से संबंधित होता है। इस प्रशिक्षण के अंत में प्रशिक्षु अधिकारियों को उन विषयों की एक विभागीय परीक्षा भी उत्तीर्ण करना होता है, जिसका संबंध उनके कार्यों से होता है। विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात प्रशिक्षु अधिकारियों को सहायक लेखा अधिकारी के पद पर नियुक्त किया जाता है।

भारतीय राजस्व सेवा के अधिकारियों को राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर के प्रशिक्षण विद्यालय में अपने विभागीय कार्यों को अच्छे ढंग से संपादित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इनके पाठ्यक्रम में आयकर कानून तथा परीक्षा, विभिन्न संस्थानों में छापा मारने गए तथा अन्य नियम एवं विनियमों को शामिल किया गया है। इनकी प्रशिक्षण अवधि 18 माह की होती है।

भारतीय रेल सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण हेतु रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा में नवनियुक्त अधिकारियों को यातायात, परिवहन रेलवे नियम, दुर्घटना राहत विधियों, तथा यात्रियों से संबंधित तथ्यों की जानकारी दी जाती है।

प्रशिक्षण के दौरान इन्हें व्यावहारिकता का भी ज्ञान दिया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें विविध रेल जोन में भेज दिया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अलावा अन्य अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के लिए नियमित अंतराल पर पुनश्चर्या प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार के प्रशिक्षण भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज हैदराबाद; राष्ट्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज माउंट आबू; राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान हैदराबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान अहमदाबाद इत्यादि संस्थाओं द्वारा समय-समय पर संचालित किए जाते हैं।

#### 14.4 भारत में प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं

अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया लंबी है। ब्रिटिश काल से ही उच्च लोक सेवकों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी। भारत में सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में वरिन हेस्टिंग्स ने 'प्रशिक्षण' की आवश्यकता अनुभव की। उनके मतानुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं व पद्धतियों आदि का ज्ञान कराने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक था। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हेतु लॉर्ड वेलेजली (1798-1805) ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। तत्पश्चात् 1813 ई में 'हेलिबरी कॉलेज' भी इसी उद्देश्य से स्थापित किया गया। यह सन् 1857 ई तक चलता रहा। इसके बाद लोक सेवकों को ब्रिटिश विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज या किसी अन्य में प्रशिक्षण देने की पद्धति आरम्भ की गयी उन्हें भारतीय कानून, भारतीय भाषा, भारतीय राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता था। एक भारतीय भाषा का ज्ञान होना भी अनिवार्य था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं की प्रशिक्षण नीतियां बनाने और उनका समन्वय करने और राज्यत सरकार के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण का कार्य भी करता है। केंद्र एवं राज्य सरकारों ने कई प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं, जो लोक सेवकों को समय-समय पर उनके उनके सेवाकाल के दौरान भी सामान्य और व्यवसायिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या अधिक है। स्वाधीन भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु निम्नलिखित संस्थान हैं- लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी, सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली, एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद, रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा, राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्धन, संस्थान, राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर। कुछ महत्वपूर्ण संस्थानों का विवरण निम्न है-

##### 14.4.1 लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी

भारत में उच्च लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण केंद्र है। वर्ष 1959 में भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली को संयुक्त कर इस संस्थान की स्थापना की गई थी। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी नाम दिया गया। यह अकादमी भारतीय सिविल सेवाओं के सदस्यों को सामान्य बुनियादी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शुरुआती स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान करती है। अखिल भारतीय एवं केंद्रीय सेवाओं के नवनियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन संस्थान मसूरी में

चार माह के आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण दिया जाता है और तत्पश्चात वे अपनी-अपनी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। आधार पाठ्यक्रम का उद्देश्य सामान्य दृष्टिकोण का विकास है तथा मौलिक विषयों से शिक्षा देने के लिए सभी अखिल भारतीय सेवाओं के प्रथम वर्ग के लिए 5 महीने का पाठ्यक्रम आधारित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है।

वर्ष 1969 से भारत सरकार ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण के लिए नया प्रारूप प्रस्तुत किया है, जिसे 'सैंडविच पाठ्यक्रम' अर्थात् मिश्रित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है। अधिकारियों, जिनका सेवा का लाभ हो 15 साल हो चुका है, वह छोटे-छोटे पाठ्यक्रम गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में सम्मिलित होते हैं। इन पाठ्यक्रमों का संबंध सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय नीति, अंतर विभागीय नियोजन और समन्वय आदि से संबंधित होता है। इन पाठ्यक्रमों के लिए सामान्य और प्राविधिक दोनों प्रकार के अधिकारी आमंत्रित किए जाते हैं। वर्तमान में इस अकादमी में तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है- अखिल भारतीय परीक्षा अधीन अधिकारियों के अंतिम परीक्षा नियमों के अंतर्गत पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए 1 वर्ष पाठ्यक्रम तथा 10 साल तक के अधिकारियों के लिए सप्ताह का पाठ्यक्रम होता है।

#### 14.4.2 सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद

केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू, 1975 तक भारतीय पुलिस सेवा के नए नियुक्त अधिकारियों को प्रवेश के समय व्यवसायिक प्रशिक्षण देता था। अब इसका कार्य राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद करता है। केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू अब भारतीय पुलिस सेवा और राज्य पुलिस सेवा दोनों के मध्यवर्ती और वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को पुनःचर्या प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के नए अधिकारियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस अकादमी का उद्देश्य भारतीय पुलिस के लिए ऐसे अधिकारियों को प्रशिक्षण द्वारा तैयार करना था जो बल का नेतृत्व ईमानदारी समर्पण और जनसेवा की भावना के साथ कार्य करें। केंद्रीय सचिव की अध्यक्षता में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के रूप में लेकर एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाता है जो भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है। यह पुलिस अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए बुनियादी पाठ्यक्रम सेवाकालीन प्रबंधन पाठ्यक्रम आयोजित करती है। साथ ही पुलिस और अर्धसैनिक बलों के पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुशासन, चरित्र, अपराध शाखा, व्यवहारिक ज्ञान, विद्रोह और आतंकवाद, आपदा प्रबंधन, आम जनता-पुलिस संबंध पर विशेष बल देती है।

#### 14.4.3 प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद

प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना प्राविधिक शिक्षा संबंधी अखिल भारतीय परिषद की सिफारिश पर 1957 में हुई थी। इंग्लैंड में स्थापित हैनले एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज की तर्ज पर गठित की गई है। सामान्यतया 8 से 15 वर्ष की व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हर मनुष्य जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित व्यक्तियों के साथ रहने के कारण अपने कार्य के संबंध में एक अलग स्थिति में सोच कर उससे लाभ उठा सकता है तथा यह भी संभव है कि उसे उच्चतर उत्तरदायित्व के योग्य बनाने हेतु यह एक सर्वोत्तम सफल प्रमाणित शैक्षणिक चरण है। निजी क्षेत्र के प्रशासन सार्वजनिक क्षेत्र के सदस्य प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में 10-10 की संख्या में सिंडिकेट के रूप में बांट दिए जाते हैं। विभिन्न विषयों के अनुभवी सदस्यों को एक साथ अपने अनुभवों को साझा करने का एक मंच प्रदान किया जाता है। शासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में इस प्रकार के पाठ्यक्रम के मुख्य अंश संगठनों की संरचना, आंतरिक संबंध और प्रशासन तथा जीवन से संबंधित होते हैं। इन

विषयों में अर्थशास्त्र, आर्थिक क्रियाएं, आर्थिक संस्थाएं, नियोजन और विकास, व्यापारिक संबंध एवं सरकार, संविधान की कार्यप्रणाली, प्रबंधन, सार्वजनिक व्यापारिक लेखा तथा उद्योग जगत से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रशिक्षण प्रणाली सामूहिक चर्चा के आधार पर होती है। विभिन्न सुझावों के आधार पर एक विस्तारपूर्वक रिपोर्ट तैयार की जाती है और इन पर व्यापक चर्चा होती है।

#### 14.4.4 राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान, हैदराबाद

सन् 1956 में स्थापित संस्थान ग्राम विकास प्रशासन के क्षेत्र में नियुक्त उच्च और मध्यम स्तर के लोक सेवकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम में आयोजित करता है तथा ग्राम विकास से के क्षेत्र में यह अनुसंधान कार्य भी संपादित करता है। राष्ट्रीय विकास संस्थान हैदराबाद जून 1958 में इस उद्देश्य के साथ स्थापित किया गया था कि अधिकाधिक संख्या में ऐसे महत्वपूर्ण कर्मचारी तैयार किए जाएं, जो कार्यक्रम के प्रशासकीय एवं समाजशास्त्रीय पहलुओं से परिचित हों। ग्रामीण विकास में अध्ययन-अनुसंधान करना इस संस्था का प्रमुख अंग है। यह ग्रामीण विकास संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन करता है, जिसमें आधारभूत जानकारियां प्रदान की जाती है। पाठ्यक्रम में प्रतिभाग करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी अपने विचारों एवं अनुभवों के परस्पर आदान-प्रदान से सामुदायिक विकास कार्यक्रम और समग्र राष्ट्रीय योजना के बीच अंतर संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही सामुदायिक विकास के लक्ष्य तक पहुंचने में संतुलन और समन्वय के प्रयोग पर भी इस कार्यक्रम में बल दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम सामान्य प्रशासकीय नमूने जैसा संगठित प्रशिक्षण नहीं होता बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य कार्यक्रम में लगे प्रमुख कर्मचारियों में नए विचारों को जगाना और अनुभवों के आधार पर उन्हें बेहतर मंच प्रदान करना होता है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद में विकास आयुक्त विकास से जुड़े अन्य अधिकारी शासन के सचिव, उप सचिव, प्राविधिक विकास विभागों के प्रधान एवं क्षेत्रीय पदाधिकारी, आयुक्त, जिलाधीश, अतिरिक्त जिलाधीश, चयनित खंड विकास अधिकारी तथा विविध केंद्र सरकार के मनोनीत अधिकारी और कर्मचारी भी प्रतिभाग करते हैं। यह संस्थान जनप्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित करने का कार्य संपादित करता है। इसके अंतर्गत संसद और विधानमंडल के सदस्य, जिला पंचायत के अध्यक्ष एवं सदस्य, विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि एवं अन्य देशों से भाग लेने वाली व्यक्तियों को भी यह प्रशिक्षित करता है।

#### 14.5.5 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना पॉल एच0एपल्बी रिपोर्ट- 1953 की अनुशंसा के आधार पर 1954 में नई दिल्ली में की गई थी। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, लोक प्रशासन में अनुसंधान के अलावा केंद्रीय और राज्य सरकारों के वरिष्ठ और मध्य स्तर के कर्मचारियों के लिए अल्पकालिक अभिविन्यास और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है। यह पाठ्यक्रम बड़े स्तर के अधिकारियों के लिए नियमित रूप से संचालित किए जाते हैं जो विशेषीकृत व्यवसायिक पाठ्यक्रम संबंधी विषयों के वरिष्ठ अधिकारियों और विशेषज्ञों के व्याख्यान पर निर्भर करता है। यह संस्थान विविध पाठ्यक्रमों द्वारा लोक सेवकों को लोक प्रशासन के विविध पहलुओं से परिचित कराता है। सामान्यतः केंद्र और राज्य सरकारों की उप सचिव एवं अवर सचिवों की श्रेणी के कर्मचारी इन पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं। मध्य श्रेणी के अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम लगातार संचालित किए जाते हैं जिसमें विचार-विनिमय का अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त समस्याओं के संबंध में आधुनिकतम विचारों का आदान-प्रदान भी होता है। इसके साथ ही सामूहिक चर्चा, विचारों के आदान-प्रदान की आधार पर प्रशिक्षण कार्य संपादित किया जाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली 1975 से लगातार 9 माह का शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करता रहा है जो देश का एकमात्र अनूठा पाठ्यक्रम है।

### 14.5.6 रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा

यातायात परिवहन तथा वाणिज्य विभाग तथा रेलवे लेखा सेवा के लिए नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त बड़ोदरा का स्टाफ कॉलेज सी भारत पदाधिकारियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम का आयोजन भी करता है। भारतीय रेलवे लेखा सेवा के नवनियुक्त कर्मचारी भी आने में 2 माह का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व्यवहारिक होता है। इसका सीधा संबंध नवीनतम कार्यप्रणाली से होता है।

### 14.5.7 सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली

इस संस्थान का पुराना नाम केंद्रीय सचिवालय प्रशिक्षण है जिसकी स्थापना 1948 में की गई थी। केंद्रीय सचिवालय और क्षेत्रीय संगठन के पदाधिकारियों के पदों के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए संस्थान की स्थापना की गई थी। इसमें संगठन और नीतियां कार्यालय की कार्यप्रणाली वित्तीय नियम और विनियम इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है। शिक्षण पूर्ण करने के पश्चात व्यवहारिक प्रशिक्षण के लिए इन कर्मचारियों को विभिन्न मंत्रालय में नियुक्त किया जाता है। उच्च श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों के लिए यह विद्यालय पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

कई केंद्रीय सेवाओं के अलग-अलग शिक्षण संस्थान भी स्थापित हैं जो अपने लोक सेवकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पुलिस, आयकर, लेखा और लेखा परीक्षा, रेलवे, दूरसंचार, विदेश, व्यापार आदि सेवाओं के क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों द्वारा उनके संबंधित सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए भी नया पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था विगत कुछ वर्षों में देखने को मिली है। इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय लोक प्रशासन और सार्वजनिक उद्यम विभाग आदि भी उच्च और मध्यम स्तरीय लोक सेवकों के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। आयकर प्रशिक्षण विद्यालय, नागपुर; रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा; सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय वन अनुसंधान संस्थान देहरादून; केंद्रीय लेखा परीक्षा और लेखा प्रशिक्षण स्कूल शिमला; अखिल भारतीय स्थानीय स्वशासन संस्थान मुंबई; राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय नागरिक सेवा महाविद्यालय नागपुर एवं प्रशिक्षण संस्थान सहारनपुर; डाक स्टाफ कॉलेज गाजियाबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान हैदराबाद, बेंगलुरु, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर, कोजिकोंड, चेन्नई; केंद्रीय संस्थान मुंबई; भारतीय राजस्व सेवा प्रशिक्षण संस्थान नागपुर; राष्ट्रीय जन सहयोग और बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली; जयपुर लोक प्रशासन संस्थान; हिमालय पर्वतारोहण संस्थान पटियाला; पर्यावरण अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली; विविध क्षेत्रों में भारत के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान हैं।

### 14.5 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग में इस कारण लोक सेवकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत जैसे देश में लोक सेवकों को नवीनतम परिवर्तन एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए समय-समय पर यथा अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते रहे हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुई है लेकिन प्रशिक्षण प्रणाली पूरी तरह से आशाओं पर खरी नहीं उतरती है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं जो नीचे वर्णित की गई हैं-

1. प्रथम, भारत जैसे विशाल देश में जहां सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण के लिए किए गए प्रबंध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। वर्तमान प्रशिक्षण सुविधाओं से केवल थोड़े से ही लोक सेवकों को लाभान्वित किया जा सका है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या प्रकार की आवश्यकता

- से अधिक वृद्धि हुई है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन होने लगा है जो आकर्षक तो प्रतीत होते हैं, लेकिन आवश्यक नहीं होते हैं। इन कार्यक्रमों में प्रशासन की वास्तविक समस्याओं पर सही विचार नहीं होता। बढ़ते महत्व को ध्यान रखते हुए प्रशिक्षण एक व्यवसाय सा प्रतीत होने लगा है।
2. द्वितीय, अखिल भारतीय एवं प्रथम श्रेणी के केंद्रीय और राज्य सेवाओं जैसे उच्च लोक सेवाओं के प्रवेश बिंदु और सेवाकालीन प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। मध्य और निम्न स्तर के कार्मिकों के प्रशिक्षण आवश्यकता की पूर्ति इन कार्यक्रमों से नहीं होती है। निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए अद्यतन सेवाकालीन प्रशिक्षण की रूपरेखा तैयार नहीं की गई है। इसके परिणाम स्वरूप देश के लगभग 80 से 90 प्रतिशत कर्मचारी प्रशिक्षण से वंचित रह जाते हैं।
  3. तीसरा, देश में सिविल सेवा के प्रशिक्षण को गंभीरता से नहीं लिया गया है जो पद्धतियां प्रशिक्षण के दौरान अपनाई जाती हैं, वह दूसरे देशों से ली गई होती हैं और भारतीय परिदृश्य में वह उपयुक्त नहीं बैठती। प्रशिक्षणार्थियों का चयन भी सावधानीपूर्वक नहीं किया जाता है। अक्सर प्रशिक्षणार्थियों के चयन में अफसरशाही राजनीति और संरक्षण आदि को महत्व दिया जाता है। प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति सरकार एवं संगठन के लिए लाभदायक होगा, यह सर्वथा सिद्ध नहीं होता। सर्वप्रथम बहुधा ऐसे कर्मचारी प्रशिक्षण के लिए प्रेषित किए जाते हैं, जिनका चयन वैध नहीं होता।
  4. चौथा, प्रशिक्षण की विषय वस्तु अक्सर अधिकारी और कर्मचारियों के लिए प्रासंगिक और सार्थक नहीं होती। अधिकांश प्रशिक्षण एजेंसियां प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रणाली बंधन सेवा विकास की आवश्यकताओं के बीच में कोई समन्वय नहीं रखती। अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रम लोकतांत्रिक राजनीति तथा विकास प्रशासन की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ हैं। प्रशिक्षण अधिकतर औपचारिक होता है जिसमें व्यावहारिक ज्ञान बहुत कम होता है। प्रशिक्षण का कार्मिक प्रबंधन से कोई संबंध है अक्सर देखने को नहीं मिलता। प्रायः देखने में आता है कि एक व्यक्ति को जिस क्षेत्र में प्रशिक्षण मिलता है, उसमें उसकी नियुक्ति नहीं होती। प्रशिक्षण में तकनीकी अध्ययन वालों को मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की शिक्षा नहीं दी जाती है और सामान अध्ययन वाले को विज्ञान आदि की जानकारी दी जाती है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी का बहुमुखी विकास नहीं हो पाता।
  5. पांचवा, प्रशिक्षण कार्यक्रम लगभग व्याख्यान पद्धति पर ही बल देता रहा है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विशेषकर लोक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य और चुनौतियों की दृष्टि से व्यावहारिक और उद्देश्य पूर्ण नहीं होते।
  6. और अंत में, प्रशिक्षण प्रणाली का देश में शिक्षा और अनुसंधान तथा प्रशिक्षण निष्कर्षों और प्रशासन में दक्षता प्रशिक्षण के प्रभावों का प्रणाली के मूल्यांकन नहीं किया जाता है। आने वाले वर्षों में भारतीय प्रशिक्षण संस्था को सुधारने की काफी आवश्यकता है। लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम विगत कुछ वर्षों से आयोजित की जा रहे हैं उनमें कुछ कमियां प्रतीत होती है।
- बदलते परिदृश्य में जिसे उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण के कारण प्रशासन की महत्व अधिक बढ़ा है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, नैतिकता आदि जटिल एवं चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रशिक्षण को ज्ञान कौशल और अभिवृत्ति में विधि का कारक बनना होगा। साथी लोक सेवकों को नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, सूचना से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। प्रशिक्षण को क्षमता निर्माण का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। लोक सेवकों को दायित्व निर्वहन की योग्य बनाने जनसाधारण के प्रति संवेदनशील बनाने एवं परिवर्तन करने योग्य बनाने के लिए लोक सेवाओं में कार्यकुशलता, मितव्ययिता और प्रभावशीलता लाने के लिए शिक्षण पद्धति का सहारा लिया जाता है। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। भारतीय प्रशिक्षण पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम

के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। बौद्धिक गुणों के विकास के साथ ही भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों में वर्णित गुणों के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी में परस्पर सहयोग की भावना एवं नेतृत्व आदि गुणों का विकास हो सके। प्रशासकों को सेवा काल के दौरान ही अवकाश देकर प्रशिक्षण हेतु भेजा जाना चाहिए। और, निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

कहा जा सकता है कि उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता निर्भर है। अतः इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

#### अभ्यास प्रश्न-

8. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?
9. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की स्थापना कब की गई थी?
10. प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना कब हुई थी?
11. सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी कहाँ स्थापित है?

#### 14.6 सारांश

सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। निजी क्षेत्र व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। भारत के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परंपरा एक प्रथा थी, जिससे वो विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। लेकिन यह समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विकास हुआ है। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं। जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है।

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में एक भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया लंबी है। ब्रिटिश काल से ही उच्च लोक सेवकों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है।

#### 14.7 शब्दावली

उपबंध- प्रावधान, महत्ता- महत्व, कौशल- प्रतिभा या क्षमता, दुरुह- कठिन

#### 14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मसूरी, 2. 1954 में, 3. 1957 में, 4. हैदराबाद

---

**14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

---

5. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
6. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

---

**14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री**

---

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

---

**14.11 निबंधात्मक प्रश्न**

---

4. प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत में प्रशिक्षण एजेंसियों और संस्थाओं की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

## इकाई-15 निष्पादन मूल्यांकन

### इकाई संरचना

- 15.0 प्रस्तावना
- 15.1 उद्देश्य
- 15.2 निष्पादन मूल्यांकन अर्थ एवं परिभाषा
- 15.3 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताएं
- 15.4 निष्पादन मूल्यांकन का उद्देश्य
- 15.5 मूल्यांकन कौन कर सकता है?
- 15.6 निष्पादन मूल्यांकन की विधियां
  - 15.6.1 परंपरागत विधियाँ
    - 15.6.1.1 रैंकिंग विधि
    - 15.6.1.2 ग्राफिक स्केल
    - 15.6.1.3 महत्वपूर्ण घटना विधि
    - 15.6.1.4 फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन
    - 15.6.1.5 फोर्स चॉइस रेटिंग मेथड
    - 15.6.1.6 समूह मूल्यांकन
    - 15.6.1.7 वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट
  - 15.6.2 आधुनिक विधियाँ
    - 15.6.2.1 उद्देश्य आधारित प्रबंधन
    - 15.6.2.2 व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना
    - 15.6.2.3 360डिग्री फीडबैक
    - 15.6.2.4 मानव संसाधन लेखा विधि
- 15.7 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया
- 15.8 सारांश
- 15.9 शब्दावली
- 15.10 अभ्यास प्रश्न का उत्तर
- 15.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 15.12 निबंधात्मक प्रश्न

### 15.0 प्रस्तावना

जब कोई व्यक्ति किसी संगठन में प्रवेश लेता है तो उसे कार्य से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है। संगठन कार्मिक से अपेक्षा करता है कि कार्मिक दिए गए प्रशिक्षण के अनुरूप कार्य करेगा। प्रदर्शन मूल्यांकन मूलतः यह जानने के लिए किया जाता है कि कार्मिक उसको दिए प्रशिक्षण के अनुरूप कार्य कर रहा है कि नहीं। निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से कार्मिक की नियुक्ति का औचित्य सिद्ध करने में मदद मिलती है कि सच में नियुक्ति कारगर है कि नहीं। यदि कर्मचारी को कार्य निष्पादन में कोई समस्या आ रही है तो उसका पता लगाकर उस समस्या को दूर करने का भी प्रयास किया जाता है। सार्वजनिक सेवा में सरकार के उद्देश्यों को प्राप्त करने में कार्मिक की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्मिक ही सरकार की नीतियों को धरातल पर उतारते हैं। नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए

कार्य निष्पादन मूल्यांकन आवश्यक हैं जिससे कार्मिक के कार्य निष्पादन पर निगरानी रखी जा सकती है। कार्य मूल्यांकन से इस संगठन को यह ज्ञात होता है कि कौन सा कार्मिक संगठन और सरकार के लक्ष्यों के अनुरूप कार्य कर रहा है और कौन सा कार्मिक नहीं कर रहा है। ऐसे में जो कार्मिक लगातार संगठन के कार्य मापदंडों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं उनको पुरस्कृत करना आवश्यक है वही जो कार्मिक संगठन के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य नहीं करते उनके व्यवहार को सुधारने का प्रयास किया जाता है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि निष्पादन मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जो न केवल संगठन के लिए लाभप्रद है बल्कि कार्मिकों के लिए भी लाभप्रद है। इसके माध्यम से कार्मिकों के कार्य सम्बन्धी व्यवहार की समीक्षा की जाती है। संगठन के लिए उपयोगी व्यवहारों को प्रोत्साहित किया जाता है एवं उन व्यवहारों को हटाने का प्रयास किया जाता है जो संगठन के लिए उपयोगी नहीं है। इसके माध्यम से यह पता लगाया जा सकता है कि किस कार्मिक को पदोन्नत करने की आवश्यकता है और किस कार्मिक को उसकी योग्यतानुसार स्थानांतरित करने की।

### 15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ एवं परिभाषा को समझ सकेंगे।
- निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताओं एवं उद्देश्यों के संबंध में जान सकेंगे।
- निष्पादन मूल्यांकन की विधियों के संबंध में जान सकेंगे।
- केंद्रीय सिविल सेवा में निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

### 15.2 निष्पादन मूल्यांकन अर्थ एवं परिभाषा

निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ को अगर हम लोग सरल शब्दों में समझने का प्रयास करें तो कार्मिक के पद से अपेक्षित कार्यों का मूल्यांकन ही निष्पादन मूल्यांकन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारी के कार्य व्यवहार और प्रदर्शन का मूल्यांकन पूर्व निर्धारित मापदंडों के अनुरूप किया जाता है। यह वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ दोनों प्रकार से निष्पादित होता है अर्थात् इसके मापदंड मात्रात्मक होने के साथ-साथ गुणात्मक भी होते हैं। यह प्रक्रिया का मुख्य रूप से कार्मिक के प्रदर्शन में सुधार लाने का प्रयास करती है-

वेन्डेल फ्रेंच (Wendy French) के अनुसार, “यह एक औपचारिक और व्यवस्थित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कर्मचारियों के कार्य निष्पादन को निर्धारित मानकों के सापेक्ष मापा जाता है एवं कार्मिक को इसकी जानकारी दी जाती है।”

फ्लिप्पो (Flippo) के अनुसार, “निष्पादन मूल्यांकन किसी कर्मचारी की वर्तमान नौकरी से संबंधित मामलों में उसकी उत्कृष्टता और बेहतर नौकरी के लिए उसकी क्षमता का व्यवस्थित आवधिक और निष्पक्ष मूल्यांकन है।”

3.सी.डी. फिशर, एल.एफ. स्कोनफेल्ड और जे.बी. (C.D. Fisher, L.F. Schoenfeldt and J.B. Shaw और Shaw) के अनुसार, “निष्पादन मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी कर्मचारी द्वारा किसी निर्दिष्ट अवधि के दौरान संगठन में किए गए योगदान का मूल्यांकन किया जाता है।”

हेयल सी का मानना है “यह प्रशासन के प्रयोजनों के लिए उस नौकरी की आवश्यकताओं के संदर्भ में कर्मचारियों के प्रदर्शन और योग्यता का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया है, जिसके लिए उन्हें नियुक्त किया जाता है। इसमें नियुक्ति, पदोन्नति के लिए चयन, वित्तीय पुरस्कार प्रदान करना और अन्य कार्य शामिल हैं, जिनके लिए समूह के सदस्यों के बीच विभेदक व्यवहार की आवश्यकता होती है जो सभी सदस्यों को समान रूप से प्रभावित करने वाले कार्यों से अलग होता है।”

उपरोक्त विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर ये कहा जा सकता है कि निष्पादन मूल्यांकन योग्यता, दक्षता और क्षमता को आंकने की एक विधि है जिसके द्वारा न केवल पिछली घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है बल्कि भविष्य की योजनाओं का निर्धारण भी किया जाता है।

### 15.3 निष्पादन मूल्यांकन की विशेषताएं

मूल्य निष्पादन का अर्थ और परिभाषा को समझाने के उपरान्त आइये इसकी विशेषताओं का अध्ययन करते हैं-

1. यह एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। इसमें लक्ष्यों के निर्धारण से मापन तक और फिर सुधार तक की एक निश्चित प्रक्रिया होती है।
2. यह भविष्योन्मुखी है। इसमें न केवल वर्तमान कार्य की समीक्षा की जाती है बल्कि भविष्य के प्रदर्शन में भी सुधार करने का प्रयास किया जाता है।
3. यह विकासोन्मुखी है। इसमें कर्मचारियों की दक्षता और कौशल में सुधार करने का प्रयास किया जाता है।
4. यह एक नियमित प्रक्रिया है, इसमें कार्मिक के कार्यों की नियमित समीक्षा की जाती है।
5. यह सुधार केंद्रित है। इस प्रक्रिया में कार्मिक के कार्य में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।
6. इस प्रणाली में यह निश्चित होता है कि निष्पादन मूल्यांकन क्यों किया जाना है, जैसे- पदोन्नति, वेतन वृद्धि, प्रशिक्षण की आवश्यकता एवं स्थानांतरण आदि।
7. यह परिणामोन्मुखी प्रक्रिया है। इसमें कार्मिक की नकारात्मक और सकारात्मक दोनों परिणाम से उसे अवगत कराया जाता है।
8. यह एक संवाद आधारित प्रक्रिया है। इसमें प्रबंधन और कार्मिक अथवा वरिष्ठ और अधीनस्थ के मध्य निरंतर संवाद बना रहता है। परिणाम आने के बाद भी संवाद के माध्यम से परिस्थितियों को समझने का प्रयास किया जाता है।

### 15.4 निष्पादन मूल्यांकन का उद्देश्य

निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं, आइये इनकी विस्तार से चर्चा करते हैं-

1. **एकीकरण-** कार्य निष्पादन के द्वारा कार्मिकों के व्यक्तिगत उद्देश्यों का संगठन के उद्देश्यों के साथ एकीकरण करने का प्रयास किया जाता है। कर्मचारी के व्यक्तिगत उद्देश्य क्या होते हैं, जैसे- वेतन वृद्धि, पदोन्नति, पहचान आदि और संगठन के उद्देश्य हैं- उत्पादकता में वृद्धि, नीति का कुशल क्रियान्वयन, गुणवत्ता में वृद्धि आदि। कार्मिकों को यह विश्वास होना चाहिए कि निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से अगर संगठन को पता चलता है कि कार्मिक ने संगठन के उद्देश्यों (उत्पादकता में वृद्धि, नीति का कुशल क्रियान्वयन, गुणवत्ता में वृद्धि) को प्राप्त करने के लिए प्रयास कर रहा है तो संगठन अथवा नियोक्ता पुरस्कार के रूप में उनके व्यक्तिगत उद्देश्यों (वेतन वृद्धि, पदोन्नति, पहचान) की पूर्ति करने का प्रयास करेगा।
2. **पदोन्नति-** निष्पादन मूल्यांकन से यह जानने में मदद मिलती है कि कौन सा कार्मिक उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहा है और कौन निकृष्ट। जो कार्मिक लगातार उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं उनको पदोन्नत किया जाता है वही जो कार्मिक लगातार निकृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं अथवा संगठन द्वारा निर्धारित मानकों के तहत कार्य नहीं कर रहे हैं, तो ऐसे कार्मिकों को दंड के योग्य माना जा सकता है।
3. **पुरस्कार-** निष्पादन मूल्यांकन द्वारा बोनस एवं पुरस्कार पाने योग्य मापदंडों का निर्धारण किया जा सकता है। जो कार्मिक उन मापदंडों के अनुरूप कार्य करता है उनकी पुरस्कार के योग्य मन जाता है। पुरस्कृत होने पर कार्मिक का मनोबल हमेशा ऊँचा बना रहता है।

4. **प्रशिक्षण-** निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से कार्मिकों की कमियों को जानकर उसका निदान प्रशिक्षण के द्वारा किया जा सकता है। कार्मिक को भर्ती के बाद एवं समय-समय प्रशिक्षण दिया जाता है, लेकिन कुछ कार्मिक प्रशिक्षण के बाद भी कार्य के कुछ पहलू को समझ नहीं पाते हैं। ऐसे में अगर संगठन को यह महसूस होता है कि पुनः प्रशिक्षण के बाद कार्मिक के कार्यशैली में सुधार किया जा सकता है तो प्रशिक्षण के माध्यम से संगठन यह प्रयास करता है।
5. **स्थानांतरण-** निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से यह भी जाना जा सकता है कि कार्मिक किस क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं और किस क्षेत्र में उनकी रुचि है। अतः कार्मिक का स्थानांतरण उसके विशेषज्ञता और रुचि के पद पर किया जा सकता है।
6. **निगरानी-** इसका उद्देश्य कार्मिकों की कार्य प्रगति पर निगरानी भी रखना है कि कार्मिक निश्चित समय में कार्मिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में कार्य कर रहा है कि नहीं। इसके माध्यम से कार्य में सुधार लाया जा सकता है।
7. **विकास-** जब कोई कार्मिक किसी संगठन में प्रवेश करता है तो उसके लिए संगठन के उद्देश्यों को जानने के साथ-साथ उसके कार्य के लक्ष्यों एवं कार्य की गुणवत्ता के मापदंडों को जानना भी अत्यंत आवश्यक है जो कि निष्पादन मूल्यांकन प्रक्रिया के तहत उन्हें भली भांति से बताया जाता है। मापदंडों के अनुरूप कार्य करने पर उनके कार्यात्मक दक्षता और कुशलता के साथ मनोबल भी बढ़ता है।
8. **संवाद-** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संगठन और कार्मिक के मध्य एक बेहतर संवाद स्थापित किया जाता है। इसके द्वारा कर्मचारियों को अपना पक्ष रखने का मौका दिया जाता है। जिससे वह यह बता सके कि उसे संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति करने में अथवा अपने कार्य के निष्पादन में किन किन दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है।
9. किसी भी संगठन के लिए ये बहुत आवश्यक है कि वहाँ सारे कार्य समन्वय सहयोग और शांति से हो। इसलिए ये बहुत आवश्यक है शिकायतों की पहचान की जा सके एवं उसका निदान करने का प्रयास किया जा सके।

### 15.5 मूल्यांकन कौन कर सकता है?

मूल्यांकन कौन कर सकता है? आइये इसको निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

1. **पर्यवेक्षक द्वारा मूल्यांकन-** किसी कार्मिक के कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का सबसे उपयुक्त साधन यह है कि उसका मूल्यांकन उस व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो उसके कार्यों पर प्रत्यक्ष निगरानी रखता है। यह तरीका इसलिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा पर्यवेक्षक को कार्मिक के कार्यशैली, दक्षता, उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है। इसलिए वह कार्मिक के प्रदर्शन का निष्पक्ष और यथार्थ मूल्यांकन कर सकता है।
2. **अधीनस्थों द्वारा मूल्यांकन-** इस पद्धति में अधीनस्थ कर्मचारी अपने वरिष्ठ अधिकारी या पर्यवेक्षक के कामकाज का मूल्यांकन करते हैं। अधीनस्थों को वरिष्ठ अधिकारी के नेतृत्व क्षमता का ज्ञान होता है। यह तरीका इसलिए उपयोगी है क्योंकि संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह बहुत आवश्यक है कि अधीनस्थ कर्मचारी को सही निर्देशन मिले। सही निर्देशन मिलने पर अधीनस्थों द्वारा संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सुगमता होती है। साइमन ने भी कहा था कि सत्ता ऊपर से नीचे नहीं बल्कि नीचे से ऊपर चलती है। उन्होंने स्वीकार्यता के क्षेत्र (Zone of acceptance) के तहत यह बताया कि अधीनस्थों का आदेशों को स्वीकार्य करने का एक क्षेत्र होता है, अगर आदेश उस क्षेत्र से बाहर होता है तो अधीनस्थ वरिष्ठ अधिकारी के आदेशों को मानने से मना कर सकता है। किसी अधिकारी के लिए यह बहुत

महत्वपूर्ण है कि अधीनस्थ उसके आदेशों का पालन करे अन्यथा इससे संगठन के गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

3. **समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन-** जब किसी कार्मिक का मूल्यांकन उसके साथ कार्य करने वाले समान स्तर एवं समान वेतनमान वाले कार्मिक करते हैं तो इसे समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन कहा जाता है। यह तरीका तब कारगर होता है जब प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक के पास इतना समय या संसाधन न हो, जिससे वह प्रत्येक कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन कर सके। इस स्थिति में यह ज्यादा उपयोगी है कि समान पदधारी (Peer) खुद अपने साथी के कार्य का मूल्यांकन करे। समान पदधारी (Peer) किसी साथी कार्मिक के कार्य एवं कार्य के प्रति उसके व्यवहार को अच्छे तरह से समझता है। समान पदधारी (Peer) द्वारा मूल्यांकन का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि इससे संगठन में कार्मिकों के बीच आपसी द्वेष बढ़ सकता है।
4. **स्वयं मूल्यांकन-** इस तरीके में कार्मिक स्वयं का मूल्यांकन करता है। इस तरह के मूल्यांकन का सबसे ज्यादा फायदा यह है कि इससे कार्मिक अपनी कमियों को स्वयं खोजता है और भविष्य में उसमें सुधार कर सकता है। इस प्रक्रिया से उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता है।
5. **बाहरी व्यक्ति द्वारा मूल्यांकन-** इस मूल्यांकन में कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन उनके विभाग के बाहर के व्यक्ति द्वारा किया जाता है। यह मूल्यांकन किसी प्रकार के पक्षपात से रहित होते हैं क्योंकि बाहरी व्यक्ति से कार्मिक का कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता है। स्वतंत्र मूल्यांकन में ये तरीका अत्यंत कारगर है।
6. **360 डिग्री मूल्यांकन-** इस मूल्यांकन में कार्मिक के कार्य का मूल्यांकन ना केवल वह स्वयं करता है, बल्कि उसके वरीष्ठ अधिकारी, सहकर्मी, अधीनस्थ, जनता अथवा ग्राहक और अन्य निकाय के लोग भी करते हैं। इस तरह के मूल्यांकन में कार्मिक के बहुआयामी कार्यों का मूल्यांकन होता है जैसे-
  - कार्मिक सहकर्मी के साथ सहयोग और समन्वय के साथ कार्य कर रहा है कि नहीं ,
  - वरीष्ठ अधिकारी को रिपोर्ट कैसे कर रहा है कि नहीं,
  - कार्मिक द्वारा अधीनस्थ कर्मचारी को निर्देश सही तरीके से दिया जा रहा है कि नहीं, जिससे वह नीति का क्रियान्वयन सही ढंग से कर सके।

## 15.6 निष्पादन मूल्यांकन की विधियां

यहां निष्पादन मूल्यांकन की विधियों को दो प्रकारों में बांटा गया है- परंपरागत विधियां और आधुनिक विधियां। आइये इनका विस्तार से अध्ययन करते हैं-

### 15.6.1 परंपरागत विधियां

सर्वप्रथम परंपरागत विधि को निम्नांकित बिन्दुओं से समझने का प्रयास करते हैं-

#### 15.6.1.1 रैंकिंग विधि( Ranking Method)

रैंकिंग विधि कार्य निष्पादन का एक ऐसा तरीका है, जिसमें कर्मचारियों को उनके प्रदर्शन और कुशलता के आधार पर एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। जैसे- जो व्यक्ति सबसे अच्छे तरह से कार्य का निष्पादन करता है उसे सबसे ऊपर रखा जाता है, फिर उससे कम अच्छे को उसके नीचे। इस प्रकार उन्हें एक पदानुक्रम में स्थापित किया जाता है। इसमें शिक्षार्थियों को 1,2,3,4,5,6,.....के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है जो शिक्षार्थी सबसे अच्छा है वो नंबर एक पर आएगा, जो सबसे खराब है वह अंतिम पायदान पर आएगा।

### **15.6.1.2 ग्राफिक स्केल विधि(Graphic Scale Method)**

यह प्रदर्शन मूल्यांकन की वह विधि है जिसमें कार्मिकों की कुशलता एवं प्रदर्शन को विभिन्न स्केलों पर मापा जाता है। किसी संगठन में किसी कार्मिक का मूल्यांकन करना है तो उसका मूल्यांकन निम्नलिखित गुणों के आधार पर होगा- 1. कार्य की गुणवत्ता, 2. कार्य की मात्रा, 3. सहकर्मियों के व्यवहार, 4. सहकर्मियों के साथ संचार और 5. अनुशासन।

इन गुणों का मापन निम्नलिखित स्केल के आधार पर किया जाता है- 1. बहुत खराब, 2. खराब, 3. अच्छा, 4. बहुत अच्छा और 5. अत्यंत अच्छा।

उदाहरण के रूप में हम समझ सकते हैं जैसे कोई कार्मिक A है, उसके कार्य की गुणवत्ता की जाँच उपरोक्त स्केल के आधार पर की जाएगी कि उसका कार्य अत्यंत अच्छा था कि बहुत अच्छा कि अच्छा कि खराब कि बहुत खराब।

### **15.6.1.3 महत्वपूर्ण घटना विधि(Critical Incident Method)**

इस विधि के अंतर्गत कार्मिक के कार्य निष्पादन के दौरान के महत्वपूर्ण घटनाक्रम को नोट किया जाता है। यह सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है। इन विभिन्न घटनाक्रमों का जोड़ मूल्यांकन के दौरान प्रस्तुत किया जाता है।

### **15.6.1.4 फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन मैथड(Force Choice Distribution Method)**

इस प्रकार की विधि में कार्मिकों को निश्चित प्रतिशत के अनुसार बांटा जाता है। जैसे मान लेते हैं कि कोई कंपनी A है जिसमें 100 कार्मिक हैं। उसमें यह निर्धारित किया जाता है कि 10 प्रतिशत कार्मिकों को शीर्ष प्रदर्शनकर्ता में रखा जाएगा, जो कि प्रमोशन पात्र होंगे। वहीं उसके बाद 30 प्रतिशत कार्मिकों को अच्छे प्रदर्शनकर्ता में रखा जायेगा जो कि आर्थिक पुरस्कार के पात्र होंगे। वहीं उसके बाद 40 प्रतिशत कार्मिकों को संतोषजनक प्रदर्शनकर्ता में रखा जाता है। अंतिम 20 प्रतिशत को कमजोर प्रदर्शनकर्ता की श्रेणी में रखा जाएगा, जिनको प्रशिक्षण देकर उनके कार्य निष्पादन में सुधार किया जाएगा।

श्रेणी प्रतिशत विवरण- उत्कृष्ट 10 प्रतिशत प्रमोशन, अच्छा 30 प्रतिशत आर्थिक पुरस्कार, संतोषजनक 40 प्रतिशत और कमजोर 20 प्रतिशत, सुधार की आवश्यकता(प्रशिक्षण)

### **15.6.1.5 फोर्स चॉइस रेटिंग मैथड (Force Choice Rating Method)**

इस विधि में व्यक्तिगत पक्षपात को दूर करने का प्रयास किया जाता है, क्योंकि इसमें मूल्यांकनकर्ता को यह नहीं पता होता है कि किस गुण के चयन पर कार्मिक को कितने अंक प्राप्त होंगे।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए किसी कार्मिक का मूल्यांकन सकारात्मक और नकारात्मक गुणों के आधार पर करना है तो मूल्यांकनकर्ता को सकारात्मक और नकारात्मक गुणों में से किन्हीं दो का चुनाव करना है। गुणों के समक्ष मूल्य पहले से ही अंकित हैं, लेकिन इन अंकित मूल्यों का अंदाजा मूल्यांकनकर्ता को नहीं है। मूल्यांकनकर्ता जिन गुणों को चुनाव करता है, उसके समक्ष अंकित मूल्य जो कर्मचारियों को दिए गए हैं वे कार्मिकों को प्राप्त होते हैं। यह मैथड कहता है कि हम मूल्यांकन व्यवहार के दो आधारों पर करते हैं-

**पहला- सकारात्मक व्यवहार-** 1. समय पर कार्यपूर्ण करना, 2. ग्राहक/जनता से अच्छा व्यवहार और 3. नियमित उपस्थिति।

**दूसरा- नकारात्मक व्यवहार-** 1. कार्य की गुणवत्ता में कमी, 2. सीखने में रुचि नहीं और 3. केवल आदेश पर कार्य करना।

### **15.6.1.6 समूह मूल्यांकन(Group Appraisal)**

यह एक ऐसी निष्पादन मूल्यांकन विधि है जिसमें कर्मचारी के कार्य का मूल्यांकन एक अधिकारी नहीं करता बल्कि तीन चार लोगों का एक समूह करता है। इस समूह में तत्काल पर्यवेक्षक के साथ साथ अन्य वरीष्ठ अधिकारी, साथी कर्मचारी या अन्य अधीनस्थ भी शामिल होते हैं। कभी-कभी एक कर्मचारी उन पहलुओं तक नहीं पहुँच पाता जहाँ एक से ज्यादा कर्मचारी पहुँच जाते हैं। एक से ज्यादा लोगों की राय को ज्यादा प्रमाणिक माना जाता है।

### **15.6.1.7 वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट(Annual confidential Report)**

निष्पादन मूल्यांकन की इस विधि के अंतर्गत हर वर्ष कार्मिक के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है। इसमें कर्मचारियों के कार्य की कुशलता, योग्यता और क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य कार्मिकों को उनकी कमियाँ बताकर उनके व्यवहार को नियंत्रित करना है। कार्मिकों के नकारात्मक प्रविष्टियों से कार्मिकों को अवगत कराया जाता है। जिससे वो समय रहते अपने नकारात्मक कमियों को दूर कर सकें। यदि कार्मिक रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं हैं तो वह अपील भी कर सकता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में गोपनीयता देखने को मिलती है। गोपनीयता के कारण कार्मिकों को यह पता नहीं चल पाता है कि उसका मूल्यांकन किस आधार पर किया गया है, इसमें कार्मिकों को सिर्फ ग्रेड का पता चलता है कि उसका प्रदर्शन अच्छा है या संतोषजनक। पूरी प्रक्रिया का पारदर्शी होना अत्यंत आवश्यक जिससे कार्मिकों को यह ज्ञान हो सके की आखिर किन मापदंडों के आधार उसका मूल्यांकन किया जाना है।

### **15.6.2 निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियाँ**

निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियों को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझते हैं-

#### **15.6.2.1 उद्देश्य आधारित प्रबंधन(Management by Objective)**

उद्देश्य आधारित प्रबंधन वह प्रक्रिया है, जिसमें कर्मचारी के उद्देश्यों का एकीकरण संगठन के उद्देश्यों के साथ किया जाता है और उसे प्राप्त करने की योजना बनाई जाती है। योजना बनाने के बाद कार्मिकों को स्पष्ट कार्य एवं दायित्व का वितरण किया जाता है। दिए गए दायित्वों के आधार पर नियमित मूल्यांकन किया जाता है। जो कार्मिक अच्छा प्रदर्शन करता है उसे पुरस्कार दिया जाता है और जिसका प्रदर्शन खराब होता है, उसके व्यवहार एवं कार्यशैली में सुधार करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया से कार्मिकों को आत्म मूल्यांकन करने में मदद मिलती है, साथ ही वह कार्य में सुधार भी कर सकते हैं। इससे कार्मिकों का व्यक्तिगत विकास भी होता है। इस विधि से निचले स्तर के कार्मिक एवं प्रबंधन परस्पर सहयोग एवं समन्वय के साथ निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

उद्देश्य आधारित प्रबंधन की प्रक्रिया है (पीटर ड्रंकर के MBO प्रक्रिया चक्र के अनुसार) -

1. **संगठन के उद्देश्यों को तय करना-** इस चरण में संगठन के उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है या उनको पुनर्निर्धारित किया जाता है।
2. **संगठन के उद्देश्यों से कर्मचारियों को अवगत कराना-** जब संगठन अपने उद्देश्यों का निर्धारण कर देता है तो यह बहुत आवश्यक है कि उन उद्देश्यों से कर्मचारियों को अवगत कराया जाए। यह बहुत आवश्यक है कि कर्मचारियों को यह ज्ञान हो कि संगठन उनसे क्या चाहता है और उन उम्मीदों को पूरा करने के लिए उन्हें क्या करना है।
3. **लक्ष्यों का निर्धारण-** इस चरण में संगठन के प्रबंधक और कार्मिक मिलकर संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभागीय और व्यक्तिगत लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं। जब कर्मचारी स्वयं लक्ष्यों के निर्धारण में

सहयोग करते हैं तो उन्हें ज्यादा जिम्मेदारी और प्रेरणा महसूस होती है। वो जानते हैं कि क्यों यह लक्ष्य प्राप्त करना संगठन के लिए आवश्यक है।

4. **कार्य प्रगति की निगरानी करना-** किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य निष्पादन की निगरानी रखना अत्यंत आवश्यक है। यह देखना अत्यंत आवश्यक है कि कार्मिक निर्धारित मानको और गुणवत्ता के साथ कार्य कर रहे हैं कि नहीं। अगर कार्य-निष्पादन में उनको किसी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है तो उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है। इस चरण में यह देखने का प्रयास किया जाता है कि कार्मिक अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के दिशा में आगे बढ़ रहा है कि नहीं।
5. **इनाम या सुधार-** इस चरण में कार्मिकों के कार्य का मूल्यांकन किया जाता है और ये देखा जाता है कि कार्मिक ने तय किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कितना प्रयास किया है। यदि कार्मिक ने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अच्छा प्रदर्शन किया है तो उसे पुरस्कार दिया जाता है अगर उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं होता है तो उसके कार्य में सुधार करने का प्रयास किया जाता है।

### **15.6.2.2 व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना(Behaviorally Anchored Rating Scales)**

यह निष्पादन मूल्यांकन का ऐसा तरीका है जिसमें यह देखा जाता है कि कार्मिक ने उसको दिए गए दायित्व के मुताबिक कार्य किया है कि यहाँ पर मुख्य रूप से कार्मिक का व्यवहार देखा जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम किसी पद के कार्यों की पहचान की जाती है। फिर उन कार्यों के प्रति कार्मिकों के अच्छे इसे लेकर खराब व्यवहारों को नोट किया जाता है एवं उनके व्यवहार को स्केल में अंकित मूल्य की समक्ष रखा जाता है।

उदाहरण के लिए, लेखपाल का कार्य गांव में जमीन की माप करना और रिपोर्ट को सही तरीके से अपडेट करना। इस कार्य के लिए व्यावहारिक रूप से आधारित रेटिंग पैमाना(Behaviorally Anchored Rating Scales)-

स्कोर	लेखपाल का व्यवहार
5	लेखपाल भूमि की समय पर माप करता है और रिकॉर्ड अपडेट करके उसके नकल किसान को उपलब्ध कराता है।
4	लेखपाल माप समय पर करता है लेकिन अपडेट करने में देरी करता है और मांगने पर नकल उपलब्ध कराता है।
3	माप में देरी करता है और किसान को बार बार दफ्तर के चक्कर लगाना पड़ता है और रिकॉर्ड अपडेट करने में देरीकरता है।
2	शिकायत के बाद माप करता है लेकिन अपडेट करने में काफी देरी करता है, जैसे 4-5 सप्ताह
1	माप को करने के लिए रिश्तत की अपेक्षा करता है।माप में जानबूझकर त्रुटि करता है।

इस प्रणाली के द्वारा नायब तहसीलदार और तहसीलदार के लिए ये जानना आसान हो जाता है कि किस लेखपाल का प्रदर्शन किस प्रकार का है।

### **15.6.2.3 -360 डिग्री फीडबैक**

इस प्रकार के मूल्यांकन में कार्मिक का समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन की शुरुआत 1940 के दशक में जर्मन सेना द्वारा की गई थी। उस समय सैनिकों का मूल्यांकन इस विधि से किया जाता था। इस विधि में मूल्यांकन निम्नलिखित लोगों द्वारा किया जाता है- 1. स्वयं मूल्यांकन, 2. उच्चाधिकारियों द्वारा, 3. समान पदधारी (Peer) द्वारा, 4. अधीनस्थ द्वारा, 5. ग्राहक या जनता द्वारा फीडबैक, 6. अन्य संबंधित पक्षों द्वारा फीडबैक।

समग्र मूल्यांकन का लाभ ये है कि- 1. समग्र मूल्यांकन द्वारा कर्मचारियों को प्रदर्शन के बारे में बहुआयामी समझ विकसित होती है। 2. इसमें व्यक्तिगत पक्षपात की संभावना कम होती है। 3. इस प्रकार की मूल्यांकन से

प्रमाणिकता पारदर्शिता पढ़ती है। 4. इसके माध्यम से कर्मचारी को प्रदर्शन में होने वाली कमी का एक बहुआयामी दृष्टिकोण मिलता है।

समग्र मूल्यांकन की सीमायें भी हैं-1. इस प्रकार के मूल्यांकनमें समय की खपत होती है। और 2. प्रशासनिक रूप से जटिल प्रक्रिया है।

#### **15.6.2.4 मानव संसाधन लेखा विधि (Human Resource Accounting Method)**

इस प्रकार के मूल्यांकन का विचार 1691 में सर विलियम पेटी (Sir William Petty) ने प्रस्तुत किया था। परंतु इसका वास्तविक विकास 1960 के दशक में 'रेंसिस लिंकर्ट' द्वारा प्रारंभ हुआ। इस प्रकार के मूल्यांकन में मानव को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार के मूल्यांकन में कर्मचारियों के प्रदर्शन का मूल्यांकन लागत और योगदान के रूप में किया जाता है। अर्थात् मनुष्य को एक संसाधन के रूप में देखा जाता है। लागत से तात्पर्य यह के कार्मिक के ऊपर संगठन ने कितना खर्चा किया गया है, जैसे- वेतन, भत्ते, प्रशिक्षण एवं अन्य लाभा योगदान से तात्पर्य हैं कि कार्मिक ने संगठन के लिए मौद्रिक रूप से क्या योगदान दिया है। प्रदर्शन का मापन योगदान से लागत को घटाकर किया जाता है। यहाँ यह देखने का प्रयास किया जाता है कि योगदान का मूल्य लागत से कितना अधिक है। प्रदर्शन=योगदान- लागत।

यह विधि पारदर्शी होती है और इसके द्वारा प्रदर्शन आसानी से मापा जा सकता है। इस विधि का एक नुकसान यह होता है कार्मिक के ऊपर निरंतर प्रदर्शन का दबाव बना रहता है।

#### **15.7 निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया (Performance Appraisal Process)**

निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को निम्नांकित बिन्दुओं से समझते हैं

- 1. लक्ष्य निर्धारण-** मूल्यांकन प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह निर्धारित करना आवश्यक है कि संगठन कार्मिक से क्या उम्मीद करता है अर्थात् किसी निश्चित समयकाल में जिसमें कार्मिक का मूल्यांकन होना है। उस समय काल में संगठन कार्मिक से क्या उम्मीद करता है। संगठन की यही उम्मीद ही लक्ष्य है। लक्ष्यों का निर्धारण मुख्यतः संगठन के उद्देश्यों, कार्मिक के कुशलता और क्षमता को ध्यान में रखकर किया जाता है।
- 2. मापदंड निर्धारण-** प्रशासन में किसी भी कार्मिक के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए उन बिंदुओं का निर्धारण अत्यंत आवश्यक है जिनके द्वारा कार्मिक अपना कार्य निष्पादन कुशलता एवं दक्षता के साथ करता है और उनके अभाव में कार्य निष्पादन की कुशलता एवं दक्षता में गिरावट आती है। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित बिंदुओं के तहत मापदंडों को समझा जा सकता है।  
कार्मिक समय पर आता है या नहीं
  - कार्मिक फाइलों का निपटारा समय परकरता है या नहीं।
  - कार्मिक द्वारा नियमों का पालन किया जाता है कि नहीं।
  - कार्मिक सहकर्मियों के साथ सहयोग एवं समन्वय के साथ कार्य करता है कि नहीं।
  - कार्मिक अपने अधीनस्थों को सही तरीके से निर्देशित करता है कि नहीं।
- 3. मानको का संप्रेषण-** इस चरण में कार्मिकों को यह बताया जाता है कि संगठन आपका मूल्यांकन किन-किन मापदंडों के आधार पर करेगा। यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि कार्मिकों को कार्य के उन व्यवहारों का ज्ञान हो जिसके आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाना है। मापदंडों का संप्रेषण बहुत ही स्पष्टता के साथ होना चाहिए, जिसमें किसी भी प्रकार की विरोधाभास न हो।
- 4. वास्तविक प्रदर्शन का मापन-** इस चरण में तय मानकों के अनुरूप कार्मिकों के कार्य का मापन किया जाता है। मापन मुख्यतः निरीक्षण, सांख्यिकी रिपोर्ट, मौखिक रिपोर्ट, लिखित रिपोर्ट जैसे तथ्यों आधार पर

- किया जाता है। क्लर्क ग्रेड के स्तर के कार्मिकों के लिए वस्तुनिष्ठ मापन किया जाता है। वही मैनेजर और प्रशासनिक अधिकारियों के लिए व्यक्तिपरक मापन का प्रयोग किया जाता है।
5. **तुलना एवं विश्लेषण-** इस चरण में कार्मिकों के प्रदर्शन की तुलना निर्धारित मानकों के साथ की जाती है और देखा जाता है कि कार्मिकों का प्रदर्शन निर्धारित मानकों के अनुरूप है अथवा नहीं। अगर प्रदर्शन निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं होता है तो यह जानने का प्रयास किया जाता है कि कार्मिक का व्यवहार निर्धारित मानकों से कितना दूर है और इसके पीछे कौन-कौन से कारण विद्यमान हैं। मापन का परिणाम जो हो उसको कार्मिकों के साथ साझा करके उनके अनुभवों को जानने का प्रयास किया जाता है। अगर परिणाम नकारात्मक हैं तो कमियों को जानने का प्रयास करना चाहिए।
  6. **सुधारात्मक कदम-** कार्मिक के द्वारा अपना पक्ष रखने के बाद सुधारों का निर्धारण किया जाता है कि कार्मिक के कार्य निष्पादन के किस क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए दो प्रकार के कदम उठाए जा सकते हैं-तत्कालिक सुधार जिसमें निर्देश देना ,व्यवहार सुधरना और दूसरा मूलभूत सुधार जिसमें प्रशिक्षण देना और भूमिका में बदलाव करना।

### अभ्यास प्रश्न-

1. निष्पादन मूल्यांकन के परंपरागत विधि के प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।
2. निष्पादन मूल्यांकन के आधुनिक विधि के प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।
3. निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को बताइए।

### 15.8 सारांश

निष्पादन मूल्यांकन के माध्यम से संगठन और कार्मिक का विकास करने का प्रयास किया जाता है। प्रदर्शन मूल्यांकन में लक्ष्यों का निर्धारित किया जाता है जिससे कार्मिक द्वारा किए जाने वाले कार्य में स्पष्टता आती है कि वास्तव में कर्मचारी को क्या करना है। कार्य के दौरान नियमित समीक्षा से संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में निरंतरता बनी रहती है एवं वर्ष के अंत में संपूर्ण मूल्यांकन होता है। निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया में अनेक समस्याएं भी देखने को मिलती हैं। अमूमन यह देखा जाता है कि मूल्यांकनकर्ता अनिच्छुक रूप से मूल्यांकन कार्य को संपन्न करता है , अंतिम तिथि से पूर्व जल्दबाजी में निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया पूर्ण करता है एवं अपने व्यक्तिगत पसंद न पसंद के हिसाब मूल्यांकन करता है। सरकारी विभागों में होने वाले मूल्यांकन में अमूमन गोपनीयता के साथ साथ अपारदर्शिता देखने को मिलती है। निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया यदि अपारदर्शी एवं निष्पक्ष हो तो ये कार्मिकों के अंदर विश्वास और मनोबल को जन्म देती है। निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक से अधिक विकासोन्मुखी बनाना चाहिए इससे संगठन की उत्पादकता में वृद्धि होती है। मूल्यांकन प्रक्रिया औपचारिक एवं नियंत्रणकारी होने से कार्मिकों के अंदर रोष उत्पन्न होता है।

### 15.9 शब्दावली

निष्पादन- किसी कार्य को पूर्ण करने की क्रिया को निष्पादन कहते हैं।

मूल्यांकन- किसी कार्य को जांचने की प्रक्रिया को मूल्यांकन कहते हैं। इसके द्वारा यह देखा जाता है कि वास्तव में कार्य कैसा हुआ है अच्छा कि बुरा।

कार्मिक- वह व्यक्ति जो किसी संस्थाया संगठन में कार्य करता हो, उसे कार्मिक बोलते हैं।

एकीकरण- एक जैसे गुणों वाले चीजों को मिलाकर एक करना, एकीकरण कहलाता है।

फीडबैक- जब कोई हमें यह बताता है कि हमने कोई कार्य या व्यवहार कैसा किया है, अच्छा या बुरा तो उसे फीडबैक कहते हैं।

### 15.10 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. रैंकिंग विधि, ग्राफिक स्केल, महत्वपूर्ण घटना विधि, फोर्स डिस्ट्रीब्यूशन, फोर्स चॉइस रेटिंग मेथड, समूह मूल्यांकन
2. उद्देश्य आधारित प्रबंधन, बिहेवरियल एंकर ऑड रेटिंग स्केल, 360 डिग्री फीडबैक, मानव संसाधन लेखा विधि
3. निष्पादन मूल्यांकन की प्रक्रिया  
लक्ष्य निर्धारण-मापदंड निर्धारण-मानको का संप्रेषण-वास्तविक प्रदर्शन का मापन-तुलना एवं विश्लेषण-सुधारात्मक कदम

### 15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Goel, S. L., & Rajneesh, S. (2002). Public personnel administration: Theory and practice. Deep & Deep Publications Pvt. Ltd.
2. Mathis, R. L., & Jackson, J. H. (2008). Human resource management (12th ed.). Thomson South-Western.
3. Rao, V. S. P. (2008). Personnel management concepts (MBA 2nd Year, Human Resources). Bharathiar University, School of Distance Education.
4. Kataria, S. (2012). प्रशासनिक चिन्तक [Administrative thinkers] (7th rev. & enl. ed.). National Publishing House.
5. Sharma, Y. (Ed.). (n.d.). Personnel management and industrial psychology (Course: PGDLL-04). Vardhaman Mahaveer Open University.
6. Durai, P. (2012). Human resource management. Dorling Kindersley (India) Pvt.Ltd., Pearson
7. Ibrahim, S. A. S. (n.d.). Principles of personnel management (M.Com III Semester, Course Code: 31033). Alagappa University, Directorate of Distance Education.
8. Jaiswal, B. (2020, April 1). Traditional and modern methods of performance appraisal. Department of Library and Information Science, Lucknow University.

### 15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निष्पादन मूल्यांकन की परंपरागत विधियों की व्याख्या कीजिए।
2. निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिक विधियों की व्याख्या कीजिए।
3. निष्पादन मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए, इसके उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिए।
4. निष्पादन मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए, इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. किसी संगठन में मूल्यांकन किसके द्वारा किया जा सकता है? विश्लेषण कीजिए।

